कविवर क्षेमेन्द्र के उपदेश एवं हास्यापदेश-परक काव्यों
का
आलोचनात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

पर्यवेक्षक
डॉ० हरिदत्त शर्मा
रीडर—संस्कृत विभाग
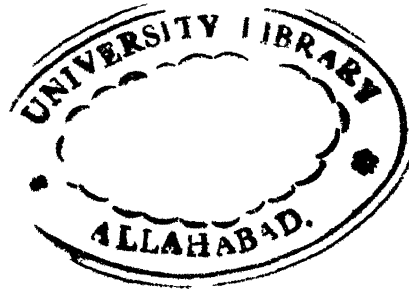
शोधकर्ता
शिव कुमार

संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

1992 ई०

मङ्गलाचरण

देवो जयति हेरम्ब: स्वदन्तबिसखेलनै: ।
यस्योच्चैस्तत्प्रभा: शुभ्रा हसन्तीव दिशो दश ॥ — देशोपदेश, श्लोक १.

श्रीलाभसुभग: सत्यासक्त: स्वर्गापवर्गद: ।
जयतात् त्रिजगत्पूज्य: सदाचार इवाच्युत: ॥ — चारुचर्या, श्लोक १.

प्रशान्तशेषविघ्नाय दर्पसर्पापसारणात् ।
सत्यामृतनिधानाय स्वप्रकाशविकासिने ॥

संसारव्यतिरेकाय हृतोत्सेकाय चेतस. ।
प्रशमामृतसेकाय विवेकाय नमो नम: ॥ — दर्पदलन, श्लोक १-२.

विभूषणाय महते तृष्णातिमिरहारिणे ।
नम: सन्तोषरत्नाय सेवाविषविनाशिने॥ — सेव्यसेवकोपदेश, श्लोक १.

येनेदं स्वेच्छया सर्वं मायया मोहितं जगत् ।
स जयत्यजित: श्रीमान् कायस्थ:परमेश्वर: ॥ — नर्ममाला, श्लोक १.

अनङ्गवार्तास्त्रेण जिता येन जगत्त्रयी ।
विचित्रशक्तये तस्मै नम: कुसुमधन्वने ॥ — समयमातृका, श्लोक १.

सत्यस्कन्धस्तरुणकरुणापूतपीयूषसिक्त:
क्षान्तिच्छाय: शुभमतिलतालंकृत: शीलमूल. ।
भूयात् सत्त्वप्रसवविलसत्पल्लव: पुण्यभाजां
धर्म: प्रोद्यतकुशलकुसुम: श्रीफलो मङ्गलाय ॥ — चतुर्वर्गसंग्रह, श्लोक १.

अस्ति विशालं कमलाललितपरिष्वङ्गमङ्गलायतनम् ।
श्रीपतिवक्ष:स्थलमिव रत्नोज्ज्वलमुज्ज्वलं नगरम् ॥ — कलाविलास, श्लोक १.

ॐ

पुरोवाक्

जीवात्मा का परम साध्य आत्मब्रह्मैक्य ही है तथा आत्मब्रह्मैक्य ज्ञान के लिए देववाणी संस्कृत भाषा का ज्ञान होना अपरिहार्य है । संस्कृत भाषा मानव को सुसंस्कृत कर जीवन को सार्थक बनाने वाली, मानव को कर्त्तव्याकर्त्तव्य का बोध कराने वाली, तथा लौकिक अनुभूति भी कराने वाली है । ऐसी सुधास्यन्दिनी सुरभारती के प्रति अनुराग होना मनुष्य के लिए स्वाभाविक ही है ।

स्वभावत: अनुरक्त होने के कारण इसी भाषा में एम०ए० करने के पश्चात् मेरा शोध-कार्य की ओर झुकाव हुआ । परिणामत: मैंने इसमें प्रवेश लिया । पूर्व में मैंने श्रीमद्भगवद्गीता या बाल्मीकि-रामायण पर शोध कार्य करने का विचार बनाया था, किन्तु गुरुवर्य द्वारा निर्धारित शीर्षक को कविवर क्षेमेन्द्र, जो नाम्ना ही ज्ञात थे, से सम्बन्धित जानकर प्रसन्नता तो नहीं हुई, किन्तु शोध शब्द की सार्थकता को ध्यान में रखते हुए तथा इनके काव्यों के उपदेश एवं अपदेशप्रधान, जो जीवनोपयोगी एवं मनोरञ्जक भावो से युक्त होते हैं, होने के कारण मैं कविवर से सर्वाधिक परिचित होने के लिए उनके काव्यों को प्राप्त करने के लिए तत्पर हुआ ।

पहले तो कई प्रयासों के बाद भी प्रतिपाद्य विषय से सम्बन्धित पुस्तकें नहीं मिलीं, जिसके कारण निराशा हुई, किन्तु कुछ समयान्तराल पर एक दिन भगवत्कृपा से संयोगवश पुस्तकों के ही विषय में विश्वविद्यालय पुस्तकालय गया, जहाँ 'क्षेमेन्द्र लघुकाव्य संग्रह', जो बहुत ही उपादेय सिद्ध हुआ प्रथमदृष्ट्यावलोकन से दिखाई दी । इससे मन में प्रसन्नता हुई । तत्पश्चात् राजकीय पुस्तकालय एवं गंगानाथ झा अनुसन्धान संस्थान, इलाहाबाद जाकर तथा बनारस एवं आगरा के प्रमुख प्रकाशकों से पत्र-व्यवहार के माध्यम से पुस्तकों से अवगत होने के बाद उन्हें मँगाकर मैं शोध-कार्य में तत्पर हुआ । वैसे इनके

सम्बन्धित अन्य सहायक ग्रन्थों को न पाकर मैं मूल ग्रन्थों पर ही आश्रित रहा, जिससे समय एवं श्रम अधिक लगने के साथ ही पूज्य गुरुवर्य डॉ० हरिदत्त शर्मा के कुशल निर्देशन मे आज 'कविवर क्षेमेन्द्र के उपदेश एवं हास्यापदेशपरक काव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन' नामक शीर्षक प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का रूप धारण कर सका है ।
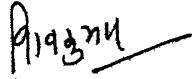
परमादरणीय गुरुवर्य डॉ० हरिदत्त शर्मा, रीडर, संस्कृत विभाग, जो अपनी विद्वत्ता के लिए तथा सरस भाषा, यथार्थ चित्रण एवं दार्शनिक चिन्तनयुक्त कवित्व के लिए देश एवं विदेशों में जाने जाते हैं, ने विभिन्न कार्यों में व्यस्त होने पर भी अपना अमूल्य समय देकर मुझे निर्दिष्ट किया है । उनके प्रति भला शब्दों में कैसे आभार व्यक्त किया जा सकता है ? अत: इन पंक्तियों में श्रद्धापूर्वक उनका अभिनन्दन करना ही उचि होगा । इस सन्दर्भ में परम सम्माननीय डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी, रीडर, संस्कृत विभाग का भी मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिनकी प्रेरणा से मैं इस कार्य में प्रवृत्त हुआ और अध्ययन-काल से ही कुछ न कुछ प्रेरणा प्राप्त करता रहा हूँ । मैं मनीषिमूर्धन्य प्रोफेसर सुरेश चन्द्र पाण्डेय, संस्कृत विभाग, जिनके मृदु एवं मित भाषायुक्त वाणी द्वारा प्रति-पाद्य विषय के प्रति रुचि एवं रुझान बढ़ा है, के प्रति विनम्र भाव से अनुग्रहीत हूँ । तत्पश्चात् मैं सभी पूज्य गुरुजनों को, जिनसे किञ्चिदपि ज्ञान प्राप्त हुआ है, साञ्जलि नमन करता हूँ । साथ ही मैं उन विद्वान् लेखकों का भी आभारी हूँ, जिनके ग्रन्थों से इस शोध-प्रबन्ध में सहायता मिली है ।

अपनी वात्सल्यमयी माँ एवं पूज्य पिताश्री, जिनके स्नेहिल भावों की प्रति-च्छाया में मैं पालित-पोषित हुआ तथा यथोचित सर्वविध सहयोग पाकर इसे पूरा कर सका, के प्रति आभार क्या ? इनसे तो उऋण होने का प्रश्न ही नहीं उठता । अपने

अन्य पूज्यजनों, मित्रों एवं सहयोगियों का, जिनसे यथासमय किसी न किसी प्रकार का सहयोग मिला है, मैं हृदय से आभारी हूँ। परिवार के अन्य सदस्य जिनसे सदैव शोध-प्रबन्ध को शीघ्र पूरा करने की प्रेरणा मिलती रही है, साधुवाद के पात्र हैं। टङ्कक श्री राम बरन यादव को भी मैं धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने टङ्कण-कार्य में शीघ्रता तो नहीं की, किन्तु शुद्ध एवं स्पष्ट टङ्कण-कार्य की।

अन्त में मानवीय स्वभाव होने के कारण यत्र-तत्र हुई बाल-सदृश भूलों के लिए विद्वज्जनों से ध्यान न देने की अपेक्षा है।

शिवकुमार
(शिव कुमार)

प्रयाग,
विजय दशमी,
वि0स0 2049,
6.10.1992.

<u>विषयानुक्रमणी</u>

अध्याय	विषय		पृष्ठ संख्या

अध्याय - प्रथम

प्रस्तावना

मानव समाज का विश्लेषण करते हुए तत्त्वदर्शी लोगों ने जिस सिद्धान्त 'समानशीलव्यसनेषु सख्यम्' अर्थात् मित्रता या सहभाव समानशील व समान स्वभाव वालों में विद्यमान रहता है, का प्रतिपादन किया है उसी सिद्धान्त की पुष्टि प्राकृतिक वस्तुओं द्वारा होती है। उद्यानों में वृक्षों पर आश्रित लतायें भी वृक्षोद्भूत सौरभ के साथ अपना सौरभ बिखेरती हैं। कोयल, शुक, भ्रमरादि भी उस सौरभ व सुषमा से तादात्म्य स्थापित करते हुए सहभाव का समर्थन करते हैं। प्राकृतिक कुंकुम व केसर के पराग से सुरभित, पर्वतराज हिमालय की विस्तृत श्रृंखलाओं से सुशोभित, सिन्धु द्वारा आवृत एवं चैत्ररथ व नन्दन को भी सौन्दर्य में चुनौती देने वाली तथा सम्पूर्ण धरातल पर स्वर्ग-रूपा शारदा घाटी यदि रसिकों के मन को आकृष्ट कर उन्हें सौन्दर्याभिभूत कर मन:सागर में हिलोरें उत्पन्न कर दें, तो आश्चर्य ही क्या ?

नि:सन्देह कश्मीर-प्रदेश में सर्वाधिक महाकवियों के उद्भव का हेतु प्रकृति और मानव का सहभाव ही है। महाकवि बिल्हण ने भी यह स्वीकार करते हुए समर्थन किया है कि 'केसर के अंकुर व काव्यांकुरों में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि केसर के अंकुरों की भाँति कविता के अंकुर भी कश्मीर के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं उगते हैं।[1]

---

1. सहोदरा: कुंकुम-केसराणां, भवन्ति नूनं कविताविलासा: ।
   न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोह: ॥ वि०च० 1/21.

इसी भूमि पर अनेक अमूल्य ग्रन्थों का निर्माण हुआ। संस्कृत कविता तथा काव्यशास्त्र की विभिन्न विधाओं के प्रणयन में कश्मीर के कवियों तथा काव्यशास्त्रियों का महान् योगदान रहा है।

भामह, वामन, उद्भट, आनन्दवर्द्धन, अभिनवगुप्त, महिमभट्ट व कुन्तक आदि प्रमुख काव्यशास्त्रप्रणेता व भल्लट, चन्दक, दामोदरगुप्त, गङ्गाक, मातृगुप्त मुक्तपीड, रत्नाकर, शिवस्वामी व रामादित्य आदि काव्य-प्रणेताओं की एक लम्बी श्रृंखला कश्मीर का काव्योचित उर्वरा भूमि होना प्रमाणित करती है। सहज प्रतिभा के धनी इन महाकवियों ने मुक्तक काव्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, ऐतिहासिक काव्य, धार्मिक काव्य व नीतिकाव्यादि सभी प्रकार के काव्यों की रचना की है। काश्मीरी कवियों के काव्य में वर्णित उदात्त भावनायें, उच्च कल्पनायें, भक्ति स्रोत एवं कोमलकान्तपदावली वस्तुतः श्लाघ्य है। वितस्ता नदी तथा डल झील के इस हरित प्रदेश में पुरातन काल से ही दर्शन, काव्य व समालोचना सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे जाते रहे हैं जिनसे कश्मीर की गरिमा भारत की सीमाओं को भी लाँघकर दूर-दूर तक जा पहुँची है।

इस गरिमा के सीमा-क्षेत्र को आशातीत विस्तार देने वाले ग्यारहवीं सदी के असाधारण ग्रन्थकार कविवर क्षेमेन्द्र हुये जिन्होंने छन्दःशास्त्र, काव्यशास्त्र, रसपूर्ण लघुकाव्य, नीत्युपदेशपरक काव्य, हास्यापदेशपरक काव्य व कोशादि अनेक रचनाओं से युक्त साहित्य सम्पदा के द्वारा संस्कृत वाङ्मय को विभूषित किया।

यद्यपि उन्हें नैसर्गिक व उज्ज्वल प्रतिभा की देन प्राप्त नहीं थी, तथापि उन्होंने दिव्य तथा पौरुष उपायों के द्वारा[1] श्रीशारदा की उपासना करके योग्यता[2] प्राप्त की थी जिसके माध्यम से उन्होंने तत्कालीन कश्मीर में प्रसृत कुरीतियों, कुप्रवृत्तियों व समाज के सभी दूषित पक्षों पर हास्यापदेशपरक अधिक्षेप किया तथा साथ ही साथ सहृदयों के लिए नीति एवं उपदेशपरक काव्यों को प्रदान किया। इनकी ग्रन्थसम्पदा केवल संख्याबहुल ही नहीं, अपितु गुणबहुल भी है। इसीलिए कविवर क्षेमेन्द्र को संस्कृत साहित्य के व्यंग्यपूर्ण उपदेशपरक ग्रन्थों की रचना के क्षेत्र में उल्लेखनीय एवं वैशिष्ट्यपूर्ण ग्रन्थकार मानना समुचित होगा। इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। भारतीय वाङ्मय का कोई भी कोना इनसे अस्पृष्ट नहीं बचा है। ये महाकवि, नाटककार, अलङ्कारशास्त्री, शब्दकोषकार, कवि-शिक्षापरक ग्रन्थकार व इतिहासकार आदि विविध रूपों में सहृदय पाठकों के समक्ष उपस्थित होते हैं। सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्य में विस्तार के अतिरिक्त काव्योत्कर्ष की दृष्टि से भी हम कह सकते हैं कि कविप्रवर क्षेमेन्द्र काश्मीरी आत्मा के प्रतीक हैं।

---

1. कृत्वा निश्चलदैवपौरुषमयोपायं प्रसूत्यै गिरां।
   क्षेमेन्द्रेण यदर्जितं शुभफलं तेनास्तु काव्यार्थिनाम्॥ - कविकण्ठाभरण 5/3.

2. क्षेमेन्द्रनामा तनयस्तस्य विद्वत्सपर्यया।
   प्रयातः कविगोष्ठीषु नामग्रहणयोग्यताम्॥
   - भारतमञ्जरी, हरिवंशोपसंहार-श्लोकांक 7.

कवित्वशक्ति एवं विलक्षणबुद्धि के अनुपम समन्वय से समुत्पन्न बहुमुखी प्रतिभा के धनी कविवर क्षेमेन्द्र ने प्रत्येक स्थल पर भिन्न-भिन्न काव्यात्मक दृष्टिकोणों से विश्व का दर्शन करते हुए शिष्योपदेश, मनीषियों के सन्तोष, सज्जनों के मानसानन्द, श्रीमानों की धनरक्षा, अहङ्काराभिभूत प्राणियों के हित व दुष्कर्म में लिप्त दुर्जनों के सुधार हेतु घटना-चित्र से सहृदय पाठक का अनायास तादात्म्य स्थापित कर चिरस्थायी प्रभाव डालने वाले काव्यों की रचना की ।

कविवर के लघु काव्यों में उपदेशप्रधान लघुकाव्य 'चारुचर्या' में जहाँ नित्य क्रियात्मक, लोकव्यवहारपरक, भक्तिज्ञानत्यागादि व भारतीय संस्कृति सम्बन्धी नीतियों व उपदेशों का सम्पादन है वहीं 'दर्पदलन' में मनुष्य के सात मदहेतुओं कुल, वित्त, विद्या, रूप, शौर्य, दान व तप के दोषों को उजागर कर इनसे दूर रहने का उपदेश व चतुर्वर्ग संग्रह में पुरुषार्थचतुष्टय धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष सम्बन्धी उत्कृष्ट अनुभूति का प्रतिपादन और 'सेव्यसेवकोपदेश' में स्वामी और सेवक के बीच होने वाले आवश्यक आदर्श व्यवहारों का समुचित प्रतिपादन है ।

हास्य व व्यंग्यप्रधान लघु काव्य 'कलाविलास', 'देशोपदेश' व 'नर्ममाला' तथा श्रृंगारप्रधान हास्य काव्य 'समयमातृका' में कविवर क्षेमेन्द्र ने हास्य कथा के क्षेत्र में चक्रवर्तित्व लाभ किया है, इसमें कोई सन्देह नहीं । आलोचना के क्षेत्र में अपनी सिद्धहस्त लेखनी से उन्होंने बहुधा इतिहासकारों को भ्रमित कर यह सोचने के लिए बाध्य कर दिया कि वे कवि की अपेक्षा सफल आलोचक थे । इन्होंने हास्य व व्यंग्यप्रधान लघु काव्यों में कायस्थ, वेश्या, वैद्य, ज्योतिषी,

व्यवसायी, दुर्जन, नट, विट, चेट व कदर्य आदि सामाजिक वर्गों के दूषित पक्षों पर खिल्ली उड़ाते हुए हास्योत्पादक एवं मर्मस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत की है ।

कविवर क्षेमेन्द्र की भाषा में न कहीं पाण्डित्य का प्रदर्शन है और न शब्दों में अनावश्यक चमत्कार उत्पन्न करने का व्यर्थ प्रयास । इन्होंने यथार्थ चित्रण कर कृत्रिमता से दूर रहते हुए अपनी मौलिकता सिद्ध कर दी है । महाकवि वाल्मीकि व वेदव्यास की भाँति वे भी परवर्ती कवियों के लिए प्रेरणा के स्रोत हैं । वस्तुत: वे ऐसे सूर्य रूपी कवि थे जिनकी सूक्ति-रश्मियाँ सर्वत्र व्याप्त होकर समस्त लोगों की भावनाओं, अनुभवों, चित्तवृत्तियों व विचारों को नवीन रूप से आलोकित करती हैं ।

अपनी विशुद्ध सरस शैली में स्पष्टता, ग्राह्य व रोचक वर्णन, यथार्थ-चित्रण एवं व्यंग्यात्मक उपदेश तथा समालोचनापूर्ण सूक्ष्म निरीक्षण इत्यादि विशेषताओं के कारण ही कविवर क्षेमेन्द्र आचार्यत्व लाभ के साथ ही साथ महाकवित्व लाभ के भी सफल अधिकारी हैं ।

क्षेमेन्द्र - जीवन परिचय

संस्कृत के अनेक कवियों ने अपने सम्बन्ध में कोई भी उल्लेख नहीं किया है, किन्तु क्षेमेन्द्र अपने सम्बन्ध में मौन नहीं हैं । उन्होंने कविगत जानकारी में आत्मकथा की महत्त्वपूर्ण भूमिका का अनुभव किया । यद्यपि उन्होंने आत्मकथा-सम्बन्धी कोई ग्रन्थ नहीं दिया है किन्तु उनके सभी ग्रन्थों के परिशिष्टांश से उनके सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी मिल जाती है । इसके अतिरिक्त 'बौद्धावदानकल्प-

लता' में उनके पुत्र सोमेन्द्र द्वारा रचित भूमिका तथा कल्हण की राजतरंगिणी भी इनके सम्बन्ध में पर्याप्त परिचय देने में समर्थ है ।

काल

बृहत्कथामञ्जरी[1], समयमातृका[2], बोधिसत्त्वावदानकल्पलता[3] एवं दशावतारचरित[4] नामक ग्रन्थों के अन्तर्वर्ती उल्लेखों से उन-उन ग्रन्थों के रचना संवत् क्रमशः 12, 25, 27 एवं 41 दिये हुए हैं । औचित्यविचारचर्चा, कविकण्ठाभरण,

---

1. कदाचिदेव विप्रेण स द्वादशग्रामुपोषितः ।
   प्रार्थितो रामयशसा सरसः स्वच्छचेतसा ॥

   - बृहत्कथामञ्जरी, उपसंहार, श्लोक 39.

2. संवत्सरे पंचविंशे पौषशुक्लादिवासरे ।
   श्रीमतां भूतिरक्षायै रचितोऽयं स्मितोत्सवः ॥

   - समयमातृका, उपसंहार, श्लोक 2.

3. संवत्सरे सप्तविंशे वैशाखस्य सितोदये ।
   कृतेयं कल्पलतिका जिनजन्ममहोत्सवे ॥ - बोधिसत्त्वावदानकल्पलता, प्रस्तावना, श्लोक 16.

4. एकाधिकेऽब्दे विहितश्चत्वारिंशे सकार्तिके ।
   राज्ये कलशभूभर्तुः कश्मीरेष्वच्युतस्तवः ॥

   - दशावतारचरित, उपसंहार, श्लोक 5.

समयमातृका तथा सुवृत्ततिलक इत्यादि ग्रन्थों द्वारा इनकी रचना काश्मीर नरेश अनन्त के समय में होने का ज्ञान होता है ।[1] दशावतारचरित सम्राट् अनन्त के उत्तराधिकारी राजा कलश के समय लिखा गया ।

डॉ० व्हूलर के मतानुसार क्षेमेन्द्र की कृतियों में दिये गये संवत् सप्तर्षि संवत् से सम्बन्धित हैं तथा राजा अनन्त ने सप्तर्षि संवत् 4 से 39 तक राज्य किया ।[2] सप्तर्षि संवत् का आरम्भ 1025 ई० से हुआ था । इस प्रकार राजा अनन्त का शासन-काल 1029 ई० से 1064 ई० तक का है तथा बृहत्कथा मञ्जरी, समयमातृका, बोधिसत्त्वावदानकल्पलता एवं दशावचरित का रचना-काल क्रमशः 1037, 1050, 1052 व 1066 ई० है । परन्तु डॉ० सूर्यकान्त के अनुसार क्षेमेन्द्र के ग्रन्थों की रचना तिथियाँ लौकिक संवत् से सम्बन्धित हैं, जिसका आरम्भ ई० पू० 3076 से हुआ, यह कल्हण की राजतरंगिणी से ज्ञात होता है ।[3] क्योंकि

---

1. क. तस्य श्रीमदनन्तराजनृपतेः काले किलायं कृतः । औचित्यविचारचर्चा, उपसंहार श्लोक 5.

   ख. राज्ये श्रीमदनन्तराजनृपतेः काव्योदयोऽयं कृतः । कविकण्ठाभरण, अन्तिम श्लोक

   ग. तस्यानन्त महीपतेर्विरजसः प्राज्याधिराज्योदये ।
   क्षेमेन्द्रेण सुभाषितं कृतमिदं सत्पक्षरक्षाक्षमम् ॥ समय मातृका, परिशिष्ट 1.

2. डॉ० व्हूलर, काश्मीर रिपोर्ट, पृष्ठ संख्या 46.

3. लौकिकेऽब्दे चतुर्विंशे शककालस्य साम्प्रतम् ।
   सप्तत्याभ्यधिकं यातं सहस्रं परिवत्सराः ॥

   – राजतरंगिणी, 1/52.

राजतरंगिणी का रचना-काल 4224 वाँ लौकिक वर्ष या 1070 शक संवत्सर है तथा शक संवत्सर का प्रारम्भ 78 ई० सन् है अत: राजतरंगिणी का रचनाकाल ईसा संवत् के अनुसार (1070 + 78) = 1148 ई० है । अत: लौकिक संवत्सर का प्रारम्भ ई०पू० 3076 सिद्ध है । (4224-1148) । इसी प्रकार भी बृहत् कथामञ्जरी समयमातृका, बोधिसत्त्वावदानकल्पलता एवं दशावतारचरित का रचना-काल 1037, 1050 व 1066 ई० ही है ।

बृहत्कथामञ्जरी क्षेमेन्द्र की प्रारम्भिक रचनाओं में से एक है तथा दशावतारचरित के पश्चात् की कोई रचना उपलब्ध नहीं है । अत: क्षेमेन्द्रकृत ग्रन्थों का रचनाकाल 1037 ई० से 1066 तक निश्चित होता है । क्षेमेन्द्र ने विद्याविवृत्ति के रचयिता अलङ्कार शिरोमणि आचार्य अभिनवगुप्त की शिष्यता ग्रहण कर उनसे साहित्यशास्त्र की शिक्षा पाई थी[1] जिनका रचना-काल 990 ई० से 1020 ई० तक माना जाता है ।[2] औचित्यविचार चर्चा तथा सुवृत्ततिलक[3] में क्षेमेन्द्र ने

---

1) क. आचार्यशेखरमणेर्विद्या विवृत्तिकारिण: ।
श्रुत्वाभिनवगुप्ताख्यात्साहित्यं बोधिवारिधे: ॥ भारतमञ्जरी, परिशिष्ट 8.

ख. श्रुत्वाभिनवगुप्ताख्यात्साहित्यं बोधवारिधे: ।
आचार्यशेखरमणेर्विद्या विवृत्तिकारिण: ॥ - बृहत्कथामञ्जरी, 18.37

2. Kane, History of Poetics, p. 7 1.

3. क. सुवृत्ततिलक 2.29

ख. औचित्यविचारचर्चा, 11/1 तथा 16/8.

परिमल के श्लोक उद्धृत किये हैं, जिनका रचना काल 974 ई0 से 1010 ई0 ठहरता है । अतः क्षेमेन्द्र का रचनाकाल 1037 ई0 से 1066 ई0 ही रहा होगा ।

अभिनवगुप्त ने विद्याविवृत्ति 1014 ई0 में लिखी थी । अतः क्षेमेन्द्र के 1014 ई0 के बाद भी शिक्षा प्राप्त करने का पता चलता है । इस प्रकार उनके अध्ययन की उचित प्रौढ़ावस्था के अधिगम के लिए उसके अध्ययन-काल में क्षेमेन्द्र की अवस्था यदि 25 वर्ष के आस-पास मानें तो जन्म समय 1010 ई0 सन् के पास होगा । उनके मृत्यु के विषय में यह कहा जाता है कि उन्होंने 'दशावतारचरित' की रचना 1066 ई0 में की जो उनकी सम्भवतः अन्तिम कृति है । अतः उनका मृत्यु-काल 1070 के निकट का ही है ।

इस प्रकार क्षेमेन्द्र का जीवन-काल 11वीं शती के प्रथम तीन चरणों में से निश्चित होता है और रचना-काल द्वितीय चरण के अन्तर्गत है ।[1]

<u>स्थान-वंश</u>

क्षेमेन्द्र के स्थान व पूर्वजों के बारे में भी उनके ही द्वारा दिये गये ग्रन्थों

---

1. क. डॉ0 व्हूलर, काश्मीर रिपोर्ट, पृष्ठ संख्या 46.
   ख. श्रीमधुसूदन कौल, आमुख, दे0न0
   ग. Dr. Suryakant, Ksemendra Studies, p. 8.
   घ. Dr. Dasagupta, History of Sanskrit Lit. p. 144.
   ङ. Kane, Introduction, p. 99.

के अन्त में दिये विवरणों से ही सुनिश्चित है । रामायणमञ्जरी[1], भारतमञ्जरी[2], बृहत्कथामञ्जरी[3] तथा दशावतारचरित[4] से ज्ञात होता है कि क्षेमेन्द्र के पितामह सिन्धु तथा पिता प्रकाशेन्द्र थे ।

---

1. कश्मीरेष्वभवत् सिन्धुजन्मा चन्द्र इवापर: ।
   प्रकाशेन्द्र: स्थिरा यस्य पृथिव्यां कीर्तिकौमुदी ॥

   विद्वज्जनसपर्याप्तपर्याप्तस्वजनोत्सव: ।
   कथासार सुधासारं क्षेमेन्द्रस्तत्सुतो व्यधात् ॥ रामायणमञ्जरी, उपसंहार, श्लोक 1 व 3.

2. काश्मीरको गुणाधार: प्रकाशेन्द्राभिधोऽभवत् ।
   नानार्थिसार्थसंकल्पपूरणे कल्पपादप: ॥ भारत मञ्जरी, उपसंहार, श्लोक 1.

3. काश्मीरको गुणाधारप्रचण्डश्चाभिधोभवत् ।
   नानार्थिजनसंकल्पपूरेणकल्पपादप: ॥ बृहत्कथामञ्जरी, उपसंहार, श्लोक 31.
   प्रकाशेन्द्र की जगह चण्डका पाठान्तर पाकर डॉ0 व्हूलर ने क्षेमेन्द्र के पिता का नाम चण्ड बताया है ।
   परन्तु यह मत ठीक नहीं क्योंकि अन्यत्र सभी जगह प्रकाशेन्द्र ही मिलता है ।

4. कश्मीरेषु बभूवसिन्धुरधिकः सिन्धोश्च निम्नाशय: ।
   प्राप्तस्तस्य गुणप्रकर्षयशसा पुत्र: प्रकाशेन्द्रताम् ।
   विप्रेन्द्रप्रतिपादितान्नधनभूगोसंघकृष्णाजिनै:
   प्रख्यातातिशयस्य तस्य तनय: क्षेमेन्द्रनामाभवत् ॥

   – दशावतारचरित, उपसंहार, श्लोक 2.

क्षेमेन्द्र के पुत्र सोमेन्द्र ने 'बौद्धावदानकल्पलता' की भूमिका में अपने वंश पर अधिक प्रकाश डाला है ।[1] इससे ज्ञात होता है कि काश्मीर-नरेश जयापीड के अमात्य नरेन्द्र के वंश में भोगीन्द्र पैदा हुए । भोगीन्द्र के पुत्र सिन्धु और सिन्धु के पुत्र प्रकाशेन्द्र हुए । प्रकाशेन्द्र क्षेमेन्द्र के पिता थे तथा सोमेन्द्र इनके पुत्र थे । इसके साथ ही साथ यह भी स्पष्ट है कि इनके सभी पूर्वज भोग्य सम्पद् समन्वित, गुणग्राही, दानी, विद्वान्, सज्जन तथा प्रख्यात थे किन्तु कल्हण की ऐतिहासिक ग्रन्थ राजतरंगिणी में क्षेमेन्द्र के पूर्वजों का उल्लेख नहीं मिलता । इसी आधार पर डा० सूर्यकान्त महोदय यह अनुमान करते हैं कि सम्भवत: इनके पूर्वज राजनीतिक इतिहास में इतना अधिक प्रख्यात नहीं थे जिससे उनका उल्लेख राज-तरंगिणीकार ने नहीं किया है ।[2]

---

1. नरेन्द्र नाम्न: सुमते: श्री जयापीडमंत्रिण: ।
   वंशे बभूव भोगीन्द्रो भोगीन्द्र इव भोगवान्॥

   तस्य सत्वनिधो श्रीमान् गुणरत्न गुणाश्रय: ।
   सूनुर्वाणी सुधासूति: सिंधु: सिन्धुरिवाभवत्॥

   तस्य पुत्र: प्रकाशेन्द्र: प्रकाशेन्द्रनिभोभुवि ।
   बभूव दानपुण्येन बोधिसत्त्वगुणोचित: ॥

   क्षेमेन्द्रस्तनयस्तस्य कवीन्द्र: कीर्तिचन्द्रिका ।
   चन्द्रस्येवोदिता यस्य मानसोल्लासिनी सताम् ॥ बौद्धा०, प्रस्तावना, श्लोक1-4.

2. We may conclude from all this that neither Ksemendra nor any of his fore fathers played any important role in political affair of Kashmir - Ksemendra Studies - Dr. Surya Kant

विस्तृत पारिवारिक दृष्टिकोण से कविवर क्षेमेन्द्र ने कविकण्ठाभरण में चक्रपाल को उन्होंने अपना भाई बताया है ।[1]

प्रो0 सुरेन्द्र नाथ दास गुप्ता ने सुभाषितरत्नसन्दोह व धर्मपरीक्षा के लेखक अमितमति को भी इनका भाई बताया है ।[2] लेकिन क्षेमेन्द्र ने कहीं इनकी चर्चा नहीं की है । क्षेमेन्द्र ने अपने पिता की दानशीलता का वर्णन करते हुए उन्हें परम शैव बताया है । इनके पिता प्रकाशेन्द्र ने स्वयम्भू नामक स्थान में शिवमूर्ति की प्रतिष्ठापना करायी तथा 15 लाख मुद्रायें लोकोपयोगी कार्यों में व्यय किया ।[3] उन्होंने अनेक मठों के निर्माण के साथ सूर्यग्रहण के समय एक-एक लाख मुद्राओं से युक्त तीन 'कृष्णाजिन' दान में दिये ।[4] अत्यधिक दानशीलता के कारण ही

---

1. कविकण्ठाभरण, द्वितीय सन्धि, शिक्षाकथने उदाहरण -

   यथा चैतद्भ्रातुश्चक्रपालस्य ।

2. Dr. S.N. Dasgupta History of Sanskrit Lit. p. 676

3. यस्य मेरोरिवोदारकल्याणः पूर्णसम्पदा ।
   अगण्यमभूद्गेहे यस्य भोज्यं द्विजन्मनाम् ॥

   स्वयम्भूशिवालये श्रीमान् यः प्रतिष्ठाप्य देवताः ।
   दत्वा कोटिचतुर्भागं देवद्विजमठादिषु ॥ बृहत्कथामञ्जरी, उपसंहार, श्लोक 32 व 34.

4. अल्पप्रदो स्मीत्यभवत् स लज्जानतकन्धरः ।
   सूर्यग्रहे त्रिभिर्लक्षैः दत्त्वा कृष्णाजिनत्रयम् ॥ बृहत्कथामञ्जरी, उपसंहार श्लोक 33.

उन्हें 'इन्द्र' की उपाधि से विभूषित किया गया था ।[1] शिव की प्रतिमा के आलिङ्गन के समय ही इनकी मृत्यु हुई थी ।[2] यह निस्सन्देह स्पष्ट है कि इनके पिता प्रचुर सम्पत्तिशाली एवं उदार प्रकृति के दानशील व्यक्ति थे । अतः क्षेमेंद्र का पालन पोषण राजकुमारों की भाँति ही हुआ होगा और उनका बाल्यकाल सुखमय रहा होगा । इनका निवास-स्थान भी इनकी धर्मशीलता व शैव सम्प्रदाय से ही सम्बन्धित है । दशावतारचरित में क्षेमेन्द्र ने अपना निवास-स्थान 'त्रिपुरेश-शैल' बताया है ।[3]

शिक्षा-दीक्षा

क्षेमेन्द्र के विद्यार्थी-जीवन का कोई विशेष उल्लेख नहीं प्राप्त होता है । उन्होंने अपने काव्यग्रन्थों में तीन गुरुओं का उल्लेख किया है, जो विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित थे । उन्होंने बृहत्कथामंजरी में आचार्य अभिनवगुप्त को अपना गुरु माना है जिनसे उन्हें साहित्य-शास्त्र की शिक्षा मिली थी ।[4] इसी ही ग्रन्थ

---

1. सम्पूर्णदानसंतुष्टाः प्राहुर्यम्ब्राह्मणाः सदा ।
   इन्द्र एवासि किन्त्वेकः प्रकाशस्ते गुणाधिकः ॥ भारतमञ्जरी, परिशिष्ट

2. पूजयित्वास्वयमशम्भुं प्रसरद्बाष्पनिर्भरः ।
   पादं दोर्भ्याम् समालिंग्य प्रस्तत्रैव न्यपद्यत् ॥ बृहत्कथामञ्जरी, उपसंहार, श्लोक 35.

3. तेन श्री त्रिपुरेशशैलशिखरे विश्रान्ति संतोषिणा । दर्पदलन, परिशिष्ट 2, 3.

4. श्रुत्वाभिनवगुप्ताख्याद् साहित्यं बोधवारिधेः ।
   आचार्यशेखरमणेर्विद्याविवृतिकारिणः ॥ बृहत्कथामञ्जरी, उपसंहार, श्लोक 37.

में उन्होंने आचार्य सोम भागवत से आध्यात्मिक विषयों की शिक्षा प्राप्त करने का उल्लेख किया है ।[1] औचित्यविचारचर्चा में उन्होंने भट्ट गङ्गकको भी गुरु के रूप में उल्लेख किया है ।[2] आचार्य गङ्गक के बारे में और विस्तृत रूप से सुनिश्चित ज्ञान नहीं मिलता । इसी ग्रन्थ औचित्यविचारचर्चा में ही कविवर ने अपने को "सर्व-मनीषिशिष्य:" बताया है ।[3]

कविकण्ठाभरण में भी उन्होंने 'व्युत्पत्त्यै सर्वशिष्यता' का शिक्षोपदेश दिया है । ऐसा भी अनुमान किया जा सकता है कि उन्होंने विनयवश ऐसा कहा हो, परन्तु उन्होंने स्वयं अपने तीन गुरुओं का नामोल्लेख कर यह सिद्ध कर दिया है कि वे गुणग्रहण में चूकते नहीं थे । वे सम्पत्तिशाली परिवार से भी सम्बन्धित थे । अत: विभिन्न विषयों में विभिन्न आचार्यों से शिक्षा प्राप्त की हो । क्षेमेन्द्र का ज्ञान विस्तृत था । उन्होंने गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, राजनीति, इतिहास, अलङ्कारशास्त्र, बौद्धदर्शन व मन्त्रशास्त्र आदि तत्कालीन काश्मीर में प्रचलित सभी विषयों का अध्ययन किया । कालिदास के साहित्यामृत का उन्होंने भूयश: पान

---

1. श्रीमद्भागवाचार्यसोमपादाब्जरेणुभि: ।
   धन्यतां य: परं यात: नारायणपरायण: ॥ बृ०क०म० उपसंहार, श्लोक 38.

2. औ०का० 39 - उदाहरण रूप में -
   यथा अस्मदुपाध्यायगङ्गकस्य ।

3. तस्यात्मज: सर्वमनीषिशिष्य: श्रीव्याससदासापरपुण्यनामा ।
   - औचित्यविचारचर्चा, उपसंहार, श्लोक 3.

किया था ।[1] कोश, गीत, गाथा तथा देशी भाषाओं के काव्यों का उन्होंने भलीभाँति अध्ययन किया था ।[2] यात्रा सम्बन्धी साहित्य का भी उन्होंने अध्ययन किया था या यह हो सकता है कि उन्होंने विदेशों का भ्रमण भी किया हो क्योंकि समय मातृका में वेश्या 'कङ्कालो' के जीवन-वर्णन के समय अपने इस वैशिष्ट्य का पर्याप्त परिचय देते हुए काबुल, तुर्किस्तान, चीन, जालन्धर, गौड देश तथा अफगान निवासियों का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है ।

क्षेमेन्द्र का अधिक समय सभ्य समाज में व्यतीत हुआ । उन्होंने कवियों से विशेष सम्बन्ध बनाया किन्तु नीरस, तार्किक और वैयाकरण का अधिक साथ उन्होंने नहीं किया था । इन्हें कवि ने कविता के विकास का विघ्न कहा है ।[3] वे वाद-विवाद से सदा दूर रहना ही अपनी मित्र-मण्डली से उचित समझते थे । उनका मानना

---

1. पठेत् समस्तान् किल कालिदासकृतप्रबन्धानितिहासदर्शी । कविकण्ठाभरण 1/22

2. गीतेषु गाथास्वथ देशभाषाकाव्येषु दद्यात् सरसेषु कर्णम् । वही, 1/17.

3. अ. न तार्किकं केवलशाब्दिकं वा कुर्याद् गुरुं सूक्तिविकासविघ्नम् ।
- वही, 1/15.

ब. यस्तु प्रकृत्यश्मसमान एव कष्टेन वा व्याकरणेन नष्टः ।
तर्केण दग्धोऽनलधूमिना वाऽप्यविद्धकर्णः सुकविप्रबन्धैः ॥ वही, 1/22

स. रक्षेत् पुनस्तार्किकगन्धमुग्रम् । - वही 1/19.

था कि जो व्यक्ति सभाओं में विवाद करते हैं, जिन्हें दूसरों का यश शल्य के शूल की तरह आकुल करता है तथा जो अपने गुणों की स्तुति से गुणीजनों के गुणों को यत्नपूर्वक आच्छादित करते हैं, क्रोध से मलिन नेत्रों वाले, द्वेष से उष्ण निःश्वास छोड़ने वाले, उन लोगों की विद्या काले नाग की प्रदीप मणि की भाँति लोगों के उद्वेग का कारण भी होती है ।[1] उनकी मित्र-मण्डली उज्ज्वल चरित्र की थी । उनका अवशिष्ट समय सामयिक नाटक व अभिनय देखने एवं संगीत-श्रवण में व्यतीत होता था । वे अच्छे कवियों व लेखकों का आदर-सम्मान तथा आर्थिक सहायता करते थे ।[2]

क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थों में बहुत से मित्रों का उल्लेख किया है, उनमें से रामयशस, नबक, सज्जनानन्द, सूर्यश्री, वीर्यभद्र ,लक्ष्मणादित्य, रत्नसिंह, देवधर व उदयसिंह प्रमुख हैं । बृहत्कथामञ्जरी व भारतमञ्जरी के उल्लेखों से स्पष्ट है कि उन्होंने रामयशस की प्रार्थना पर बहुत से ग्रन्थों की रचना की[3] तथा सज्जनानन्द

---

1. ये संसत्सु विवादिनः परयशः शूल्येन शूलाकुलाः,
   कुर्वन्ति स्वगुणस्तवेन गुणिनां यत्नाद् गुणाच्छादनम् ।
   तेषां रोषकषायितोदरदृशां द्वेषोष्णनिःश्वासिनाम्
   दीप्ता रत्नशिखेव कृष्णफणिनां विद्या जनोद्वेगभूः ॥ द०द० 3/14.

2. नाटकाभिनयप्रेक्षा शृंगारालिङ्गिता मतिः ।
   कवीनां सम्भवे दानं गीतेनात्माधिवासनम् ॥ - कविकण्ठाभरण 2/5.

3. स श्री देवधराह्वयस्य द्विजराज्यपदस्थितेः ।
   सर्वज्ञस्याज्ञया चक्रे कथामेतां विनोदिनीम् ॥ बृ०क०मं०, उपसंहार, श्लोक 41.

उन्होंने रामयशस की प्रार्थना पर बहुत से ग्रन्थों की रचना की[1] तथा सज्जनानन्द की प्रार्थना से बौद्धावदान कल्पलता की रचना की ।[2] सोमेन्द्र ने सूर्यश्री को क्षेमेन्द्र का लेखक बताया है । औचित्यविचारचर्चा में कवि ने अपने शिष्य उदयसिंह के पिता रत्नसिंह को अपना मित्र बताया है ।[3] उन्होंने आचार्य देवधर को सर्वज्ञ बताते हुए बृहत्कथामञ्जरी की रचना का आदेश इन्हीं से प्राप्त करने का उल्लेख किया है ।[4]

---

1. अ. कदाचिद् ब्राह्मणैनैत्य स रामयशसार्थित: ।
   संक्षिप्तां भारतकथां कुरुष्वेत्यार्यचेतसा ॥ भारतमञ्जरी, उपसंहार, श्लोक 3

   ब. कदाचिदेव विप्रेण स द्वादश्यामुपोषित: ।
   प्रार्थितो रामयशसा सरस: स्वच्छचेतसा ॥ बृ०क०मं०, उपसंहार, श्लोक 39.

   स. आमोदयन्ति ----------- तानि ॥ रा०मं०, उपसंहार, श्लोक 6.

2. यस्यश्री रामयशस: सर्वप्रबन्धप्रेरको द्विज: ।
   प्रयात: सज्जनानन्द पुण्यप्रथमदूतताम् ॥ बौद्धावदानकल्पलता, भूमिका ।

3. श्रीरत्नसिंहे सुहृदि प्रयाते शार्व पुरं श्रीविजयेशराज्ञि ।
   तदात्मजस्योदयसिंहनाम्न: कृते कृतस्तेन गिरां विचार: ॥ औ०वि०च०, उपसंहार श्लोक 4.

4. स श्री देवधराख्यस्य द्विजराज्यपदस्थिते: ।
   सर्वज्ञस्याज्ञया चक्रे कथामेतां विनोदिनीम् ॥

   - बृहत्कथामञ्जरी, उपसंहार, श्लोक 41.

धर्म

शैवदर्शन एवं धर्म की केन्द्रस्थली काश्मीर की पावन-भूमि में बसने वाले शैव पिता के संरक्षण में रहने के कारण क्षेमेन्द्र अपने जन्म से शैव थे । पिता के संरक्षण से इनमें शैवमत का जो बीज अंकुरित हुआ, निश्चय ही वह शैव आचार्य अभिनवगुप्त की शिक्षा एवं सम्पर्क से पल्लवित हुआ होगा । किन्तु कालान्तर में भागवत आचार्य सोमपाद के दृढ़तर प्रभाव से आकृष्ट होकर वैष्णव सम्प्रदाय को ही अङ्गीकार कर आजीवन इसी के अनुयायी बने रहे । भागवत् धर्म को स्वीकार करने के पश्चात् भी वे उसके कट्टर व अंन्धानुयायी न थे । वे धर्म-सहिष्णु थे तथा अन्य मतों का भी अध्ययन तथा आदर करते थे । बौद्ध धर्म में भी उनकी श्रद्धा थी तथा उन्होंने बौद्ध साहित्य का अध्ययन कर बौद्धावदानकल्पलता की रचना भी किया । व्यासजी को अपना अनुकरणीय मानने वाले कविवर क्षेमेन्द्र की दृष्टि में सभी देवों को समान स्थान प्राप्त था ।[1] उन्होंने चारुचर्याशतक के प्रारम्भ में भगवान् शंकर[2] की पूजा किये बिना कोई कार्य न करने का उपदेश देते हुए ग्रन्थ के अन्त में सन्तोष देने वाले भगवान् विष्णु[3] का ध्यान करने का उपदेश दिया है ।

---

1. नूतनोत्पादने यत्न: साम्यं सर्वसुरस्तुतौ । कवि० 2/18.

2. न कुर्वीत क्रियां कांचिदनभ्यर्च्य महेश्वरम् । चारुचर्या, श्लोक 4.

3. अन्ते सन्तोषदं विष्णुं स्मरेद्धन्तारमापदाम् । वही, श्लोक 99.

सुवृत्ततिलक में भी कवि ने एक साथ भगवान् शंकर[1] व भगवान् विष्णु[2] के साथ ही साथ व्यास जी की स्तुति की है । कविकण्ठाभरण में इन्होंने गणपति-पूजन की भी चर्चा की है ।[3] समय-मातृका के प्रारम्भ में तो कवि ने कामदेव की स्तुति की है ।[4] दशावतारचरित में तो विष्णु की भक्ति को उन्होंने सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य तथा भगवान् विष्णु के कार्यों को प्रशंसा के योग्य बताते हुए इसी को मोक्ष का साधन बताया है ।[5] अत: स्पष्ट है कि वे सभी देवों में समान दृष्टि रखते हुए भागवत-धर्म के प्रतिष्ठित देव भगवान् विष्णु के परमभक्त थे तथा जीवन के अन्तिम समय तक वैष्णव ही रहे । बृहत्कथामञ्जरी में कविवर क्षेमेन्द्र अपने को 'नारायण-परायण'[6] कहते हैं । क्षेमेन्द्र की यह नारायणभक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई और दशावतारचरित के रचना समय के आसपास वे पूर्णरूप से निष्ठावान् वैष्णव बने

---

1. गणपतिगुरो ----------- सुखानि व: । सुवृत्ततिलक 1/1.
2. स्वच्छन्दलघुरूपाय ------- चक्रिणे । वही, 1/2.
3. व्रतं सारस्वतो याग: पूर्वविघ्नेशपूजनम् । कवि0 2/2.
4. अनङ्गवात्सास्त्रेणे जितायेन जगत्त्रयी । समय-मातृका 1/1.
5. एतानि तानि भवबन्धविमोचनानि ।
   अर्चोचितानि चरितानि च चक्रपाणे: ।। दशावतारचरित 1/17
6. बृहत्कथामञ्जरी, उपसंहार, श्लोक 38.

हुए दिखाई पड़ते हैं ।[1] इसीलिए क्षेमेन्द्र आमरण वैष्णव रहे यह डा० सूर्यकान्त[2] का कहना ठीक मालूम पड़ता है ।

ग्रन्थों में प्रतिपाद्य विषयों को देखकर यह कहा जा सकता है कि क्षेमेन्द्र शान्ति मार्ग के निःस्पृह पथिक थे । व्यक्तिगत साधना की अपेक्षा सामाजिक उत्थान उन्हें अधिक प्रिय था । उनका स्वभाव अत्यन्त निस्पृह था । उन्होंने सम्भवतः धन की तृष्णा या कृपणता को कभी श्रेष्ठ नहीं माना है ।[3] भर्तृहरि की भाँति उन्हें भी शील के प्रति अधिक स्नेह था । उसके समक्ष उन्होंने धन, यौवन, विद्या आदि सभी को हेय माना है ।[4] विनय को उन्होंने समस्त गुणों का मूल माना है ।[5] स्वभाव के वे अत्यन्त उदार थे । दशावतारचरित में उल्लिखित एक

---

1. सन्तोषो यदि किं धनैः सुखशतैः किं यद्यनायत्तता ।
   वैराग्यं यदि किं व्रतैः किमखिलैस्त्यागैर्विवेको यदि॥
   सत्संगो यदि किं दिगन्तगमनप्रस्थानतीर्थश्रमैः । दशावतारचरित,
   श्रीकान्ते यदि भक्तिरप्रतिहता तत्किं समाधिक्रमैः ॥ मत्स्यावतार, श्लोक 15.
2. Kshemendra Studies, 1954, p.15, Dr. Surya Kant
3. दत्तं न वित्तं करुणानिमित्तं लोभप्रवृत्तंकृतमेव चित्तम् ।
   यैः संचयोत्साहरसैः प्रवृत्तं शोचन्ति ते पातकमात्मवृत्तम्॥ दर्पदलनम् 2/111.
4. शीलं परहितासक्तिरनुत्सेकः क्षमाधृतिः ।
   आलोभश्चेति विद्यायाः परिपाकोज्ज्वलं फलम् ॥ वही, 3/24.
5. वही, 1/29.

ही श्लोक इस बात की पुष्टि में पूर्णतः समर्थ है ।[1] उनका सिद्धान्त था कि सभी उनके मित्र हैं, मन से वैर का त्याग करके ही हम समस्त दिशाओं को शत्रुओं से रहित बना सकते हैं । दूसरों के यश के प्रति ईर्ष्या एवं दूसरों के गुणों पर आवरण डालना उन्होंने जीवन में कभी भी उपयुक्त नहीं समझा ।

कृतित्व-परिचय

कविवर क्षेमेन्द्र अपनी कृतियों से महाकवि, आचार्य व उपदेशक आदि रूपों में दिखायी देते हैं ।। ये बहुमुखी विकास के कवि थे । एक ओर ये रामायण, बृहत्कथा व विशालतम ग्रन्थ महाभारत के आधार पर क्रमशः 'रामायणमञ्जरी', 'बृहत्कथामञ्जरी' व 'भारतमञ्जरी' जैसे बृहद् ग्रन्थ प्रदान करते हैं वहीं अलङ्कार-शास्त्र व छन्दःशास्त्र सम्बन्धी 'औचित्य-विचार-चर्चा' व 'सुवृत्ततिलक' तथा कवि-शिक्षा का ग्रन्थ 'कविकण्ठाभरण' देते हैं । इसी तरह एक ओर जहाँ वे 'चारुचर्या', 'चतुर्वर्गसंग्रह', 'सेव्यसेवकोपदेश' एवं ''दर्पदलनम्' आदि नीत्युपदेशपरक ग्रन्थ प्रदान करते हैं, वहीं हास्य व व्यङ्ग्यप्रधान 'देशोपदेश', 'नर्ममाला', एवं 'कलाविलास' एवं 'समयमातृका' आदि कृतियाँ प्रदान करते हैं । 'दशावतारचरित' में उन्होंने भगवान् के दस अवतारों का तथा 'बुद्धावदानकल्पलता' में भगवान् बुद्ध की पूर्णता का वर्णन करते हुए अनेक अनुपलब्ध रचनाओं की भी रचना की है जो विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित रचनायें प्रतीत होती हैं ।

---

1. हिंसा विरहिता चेष्टा वाणी विनयकोमला ।
   यस्यावैरं मनस्तस्य शत्रुशून्याः दिशो दश ॥ दशावतारचरित 4/4.

अनेक क्षेमेन्द्र नामों में से प्रकृत क्षेमेन्द्र का निर्धारण

संस्कृत-साहित्य में क्षेमेन्द्र संज्ञा से साम्य रखते हुए अनेक नाम मिलते हैं। थियोडोर औफ्रेक्ट महोदय के ग्रन्थ में अनेक क्षेमेन्द्र नामों का उल्लेख मिलता है।[1] प्रस्तुत शोध से सम्बन्धित क्षेमेन्द्र के अतिरिक्त मदनमहार्णवकार क्षेमेन्द्र, लिपिविवेक तथा मातृकाविवेक के रचयिता क्षेमेन्द्र, सारस्वत प्रक्रिया के टीकाकार भूधर के पुत्र क्षेमेन्द्र, हस्तिजनप्रकाशकार क्षेमेन्द्र तथा नरेन्द्रविरचित धातुपाठ के टीकाकार क्षेमेन्द्र के विवरण मिलते हैं। इसके अतिरिक्त एकशृंग[2] के रचयिता क्षेमेन्द्र, स्पन्दसन्दोह व स्पन्दनिर्णय के रचयिता क्षेमेन्द्र सम्बपञ्चाशिकाकार क्षेमेन्द्र एवं विख्यात नाटक छन्दकौशिक के रचनाकार क्षेमेश्वर के भी उल्लेख मिलते हैं। एक लोकप्रकाशकार क्षेमेन्द्र का भी लेख प्राप्त होता है जो प्रस्तुत शोध विषयक क्षेमेन्द्र से अभिन्न हैं अथवा नहीं इस विषय में सन्देह है।[3] लोक प्रकाश में प्रयुक्त शब्द सलामबन्दगीमें ख्वाजा, मीर आदि से स्पष्ट है कि यह मुगलकालीन किक्षिमेन्द्र द्वारा रचित है।

---

1. Catalogue Catalogorum - The odor Aurocht, Vol. I & II
2. Printed in 1801 at Leipzig, edited by H. Franeke.
3. (a) Ksemendra Studies, p. 25 by Dr. Surya Kant.
   (b) Forward Lokprakesh - The Kashmir Series of Text & Studies;
   (c) As a matter of fact, it (Lokprakash) seems to have been written by a number of persons including Ksemendra - Cultural Heritage of Kashmir, p. 14, by Suresh Chandra Banerjee.

हस्तिजनप्रकाशकार क्षेमेन्द्र को भी प्रस्तुत क्षेमेन्द्र से अभिन्न माना है[1] किन्तु ओफ्रेक्ट महोदय उन्हें यदुशर्मन् का पुत्र बताते हैं ।[2] इस आधार पर हस्तिजनप्रकाश कार क्षेमेन्द्र भिन्न ही हैं क्योंकि कविवर क्षेमेन्द्र के पिता का नाम प्रकाशेन्द्र था, यह निस्सन्देह निश्चित है । एकश्रृंगकार क्षेमेन्द्र भी सम्भवत: भिन्न ही हैं, किन्तु अभिन्नता का भी शक बना है । क्षेमेन्द्र के समकालीन हुए स्पन्दनिर्णय तथा स्पन्द सन्दोह के रचयिता क्षेमराज का भी अभिन्न होने का प्रश्न उठता है । डॉ० व्हूलर महोदय ने इन दो रचनाओं को क्षेमेन्द्रकृत माना है, परन्तु क्षेमेन्द्र तथा क्षेमराज अभिनवगुप्त के शिष्य होते हुए दोनों भिन्न हैं । डॉ० कान्तिचन्द्र पाण्डेय ने तर्क-सिद्ध विवेचना द्वारा यह स्पष्ट किया है कि क्षेमेन्द्र तथा क्षेमराज भिन्न व्यक्ति ही थे ।[3] उन्होंने तर्क देते हुए कहा है कि क्षेमेन्द्र अपना उपनाम 'व्यासदास' लिखते हैं जबकि क्षेमराज 'क्षेमराज' ही लिखते हैं । क्षेमराज वाराहगुप्त के पौत्र थे जबकि कविवर क्षेमेन्द्र सिन्धु के पौत्र थे । क्षेमराज ाश्मीर के ही प्रकाण्ड विद्वान् थे जिन्होंने शिवसूत्रों और अभिनवगुप्त के परमार्थसार पर आलोचना लिखी । इसीलिए डॉ० पीटर्सन और उनके पश्चात् महाशय ए स्टीन ने क्षेमराज को अपने क्षेमेन्द्र से अभिन्न माना था, किन्तु बाद में भिन्नता को सिद्ध करने वाले तर्कों के आधार पर डॉ० पीटर्सन ने भिन्न मानकर अपर विचारों को सही किया ।

---------::0::---------

---

1. आचार्य क्षेमेन्द्र - मनोहर लाल गौड़, पृष्ठ 9.
2. Catalogue Catalogorum - Thooder Aurocht, Vol. I & II.
3. Abhinavagupta : A Historical & Philosophical Study, Banaras, 1935, p. 153.

अध्याय - द्वितीय

आचार्य के रूप में क्षेमेन्द्र की कृतियाँ

सर्वतोमुखी कवित्व प्रतिभासम्पन्न कविवर क्षेमेन्द्र ने संस्कृत-साहित्य-कोष में कुछ ऐसी भी कृतियाँ दी हैं जिनसे उनका आचार्यत्व स्पष्ट होता है । उनकी सार्वभौम आचार्य बनने की बलवती इच्छा का ही परिणाम है कि उन्होंने छन्द:शास्त्र, अलङ्कार शास्त्र एवं कविशिक्षाशास्त्र विषयों पर ग्रन्थ लिखे हैं तथा औचित्य को काव्यतत्त्व के रूप में सर्वोच्च स्थान देकर अपने आचार्यत्व को स्थापित किया है ।

कविवर क्षेमेन्द्र को आचार्य के रूप में सिद्ध करने वाली निम्नलिखित कृतियाँ हैं -

1. <u>सुवृत्ततिलक</u>

यह आचार्य क्षेमेन्द्र की तीन विन्यासों (अध्यायों) में विभाजित छन्द:शास्त्र सम्बन्धी काव्य है । प्रथम विन्यास 'वृत्तावचय' में वृत्तों (छन्दों) का चयन, द्वितीय विन्यास 'गुणदोषवर्णन' में छन्दों के गुण-दोष का विवेचन तथा तृतीय व अन्तिम विन्यास 'वृत्तविनियोग' में कवि ने छन्दों के प्रयोग सम्बन्धी नियमों का विवेचन किया है । यद्यपि कवि ने यह स्वीकार किया है कि प्रत्येक कवि का एक ही प्रिय छन्द हुआ करता है[1] जैसे पाणिनि ने उपजाति[2], भारवि ने वंशस्थ[3] रत्नाकर

---

1. वृत्ते यस्य भवेद् यस्मिन्नभ्यासेन प्रगल्भता ।
   स तेनैव विशेषेण स्वसंदर्भं प्रदर्शयेत् ॥
   एक वृत्तादर: प्राय: पूर्वेषामपि दृश्यते ।
   तत्रैवातिचमत्कारादन्यत्रारब्ध पूरणात् ॥ सुवृत्ततिलक 3/27-28.
2. स्पृहणीयत्वचरितं पाणिनेरुपजातिभि: । वही, 3/30.
3. वृत्तच्छत्रस्य सा कापि वंशस्थस्य विचित्रता । वही, 3/31.

ने वसन्ततिलका[1], भवभूति ने शिखरिणी[2], कालिदास ने मन्दाक्रान्ता[3] तथा राजशेखर ने शार्दूलविक्रीडित[4] को प्रधानता दी है, परन्तु महाकवि होने के लिए यह आवश्यक है कि बहुत से छन्दों का दक्षतापूर्ण प्रयोग किया जाय । क्षेमेन्द्र ने स्वयं भी इसी सिद्धान्त को अपनाया । उपर्युक्त कवियों द्वारा भी अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है जिसे कविवर ने उल्लेख किया है ।[5] इस प्रकार कवि ने छन्द-विषयक गुण-दोष विवेचन के साथ ही प्रयोग सम्बन्धी नियमों का भी विस्तृत वर्णन किया है जिसके अभ्यास से कोई भी व्यक्ति छन्द.शास्त्र का मर्मज्ञ हो सकता है । विद्वानों ने इस ग्रन्थ को छन्दःशास्त्र की उत्कृष्ट रचनाओं में स्थान दिया है ।

2. औचित्यविचारचर्चा

आचार्य क्षेमेन्द्र का यह ग्रन्थ अलङ्कारशास्त्र पर एक उच्च कोटि का प्रबन्ध है । इसमें क्षेमेन्द्र ने एक नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, जिसके अनुसार काव्य में औचित्य का विचार ही प्रधान वस्तु है । यद्यपि आनन्दवर्धन ने भी काव्य में औचित्य का महत्त्व स्वीकार किया है परन्तु क्षेमेन्द्र ने ध्वनि जैसे व्यापक सिद्धान्त

---

1. सुवृत्ततिलक 3/32
2. वही, 3/33
3. सुवृत्ततिलक 3/34
4. वही, 3/35

5. इत्येवं पूर्वकवयः सर्ववृत्तकरा अपि ।
अस्मिन् हार इवैकस्मिन् प्रायेणाभ्यधिकादशः ॥

वही, 3/36.

के विद्यमान होने पर भी औचित्य का सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादन किया है जो कि स्वतः में मौलिक है । उन्होंने औचित्य को काव्य का प्राण बताया है ।[1] जो जिसके सदृश हो, जिससे मेल मिले उसे उचित कहते हैं और उचित का ही भाव औचित्य है ।[2]

इस तरह क्षेमेन्द्र ने केवल गुण अथवा अलङ्कार को ही नहीं, अपितु काव्य के अन्य अवयवों जैसे शब्द, वाक्य, क्रिया, कारक, लिङ्ग व वचन इत्यादि को भी इसकी परिधि के अन्तर्गत बताया है । परन्तु यह तो आचार्य आनन्दवर्धन द्वारा कहे गये साहित्य के रहस्य स्वरूप उसी औचित्य का महत्त्व प्रतिपादित था, जिसे ध्वनिकार ने ध्वनि सिद्धान्त के अन्तर्गत समाहित कर लिया था । अतः यह कहा जा सकता है कि अलङ्कारशास्त्र पर इनके सिद्धान्त का अधिक व्यापक प्रभाव पड़ सका जिसे काणे महोदय ने भी कहा है ।[3]

---

1. औचित्यस्य चमत्कारकारिणश्चारुचर्वणे ।
   रसजीवितभूतस्य विचारं कुरुतेऽधुना ॥ औचित्यविचारचर्चा 3.

2. उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत् ।
   उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते ॥ वही, 7.

3. History of Sanskrit Poetics, P.V. Kane, p. 252.

औचित्य की चर्चा आचार्य भरत[1] व आनन्दवर्धन[2] आदि आचार्यों ने भी की है और 'अनौचित्य' को रसभङ्ग का कारण माना है। फिर भी आचार्य क्षेमेन्द्र अपने को 'औचित्य' के नवीन उद्भावक के रूप में ही इङ्गित करते हैं।[3] वैसे औचित्य के सर्वथा नवीन उद्भावक के रूप में क्षेमेन्द्र को नहीं माना जा सकता, किन्तु औचित्य को काव्य तत्त्व के रूप में सर्वोच्च स्थान देने में क्षेमेन्द्र अवश्य ही नवीन हैं।

3. <u>कविकण्ठाभरण</u>

कवि द्वारा प्रतिपादित यह कविशिक्षा का प्रबन्ध है। यह प्रबन्ध पाँच सन्धियों में विभाजित है। प्रथम सन्धि 'कवित्वप्राप्ति' में कवि होने के लिए वांछित प्रयत्नों का चित्रण, द्वितीय सन्धि 'शिक्षाकथन' में कवियों को शिक्षा का निर्देश किया है। तृतीय सन्धि 'चमत्कारकथन' में कवि ने यह बताया है कि कोई भी कवि किस प्रकार उत्कृष्ट काव्य का प्रणयन कर सकता है। चतुर्थ सन्धि 'गुणदोषविभाग' में काव्य के गुण-दोष का ज्ञान तथा पंचम सन्धि 'परिचयप्राप्ति' में कवि के जानने योग्य विभिन्न दोषों का ज्ञान है। यह ग्रन्थ औचित्यविचारचर्चा की ही

---

1. आदेशजो हि वेषस्तु न शोभां जनयिष्यति।
   मेखलोरसि बन्धे च हास्यायैवोपजायते ॥ नाट्यशास्त्र 23/69.

2. अनौचित्यादृते नान्यद्रसभङ्गस्य कारणम्।
   औचित्योपनिबन्धस्तु रसस्योपनिषत् परा॥ - ध्वन्यालोक

3. क्षेमेन्द्र इत्यक्षयकाव्यकीर्तिश्चक्रे नवौचित्यविचारचर्चाम् ॥ औचित्यविचारचर्चा

भाँति विषय के अतिरिक्त साहित्यिक सौन्दर्य की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है । इसकी शैली उच्चकोटि की तथा विषयानुकूल है । यद्यपि दण्डी, वामन, वाग्भट्ट, राजशेखर, भोज, उद्भट तथा हेमचन्द्र ने भी इस विषय पर निबन्ध लिखे हैं, परन्तु क्षेमेन्द्र की मौलिकता स्पष्ट है । उन्होंने स्वयं भी कविकण्ठाभरण में प्रतिपादित नियमों का अनुसरण किया है । उदाहरणार्थ समयमातृका, दर्पदलन, सेव्यसेवकोपदेश व चारुचर्या इत्यादि कृतियों में कवि ने लोकाचार ज्ञान[1] व उपदेशविशेषोक्ति[2] का अनुकरण किया है ।

दशावतारचरित में 'साम्यं सर्वसुरस्तुतौ'[3], पद्यकादम्बरी में विवृताख्यायिकारस[4] तथा चित्रभरत नाटक में 'नाटकाभिनयप्रेक्षा'[5] इत्यादि कविकण्ठाभरण में प्रतिपादित नियमों का अनुशीलन किया है । कविकण्ठाभरण से तत्कालीन कश्मीर की कवि-परम्परा का भी ज्ञान होता है ।

कविवर क्षेमेन्द्र की कृति-सम्पत्ति

कविवर क्षेमेन्द्र बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न थे । परिणामतः उनकी कृतियाँ भी विविध क्षेत्रों व विषयों से सम्बन्धित हैं । ये लेखन-कार्य में बहुत ही दक्ष एवं

---

1. कविकण्ठाभरण 2/6.
2. वही, 2/16.
3. वही, 2/19.
4. वही, 2/6.
5. वही, 2/15.

स्वभाव के महत्त्वाकांक्षी भी थे । इन्होंने अपनी कृतियों के ही माध्यम से संस्कृत साहित्य में अपना अमूल्य स्थान बनाया है । इन्हीं रचना-क्षमता के आधार पर डॉ० सूर्यकान्त शास्त्री ने इन्हें व्यास एवं वाल्मीकि की भाँति स्फूर्तिदाता बताया है[1] किन्तु यह कथन अत्युक्तिपूर्ण लगता है । परन्तु इनका स्थान संस्कृत साहित्य में असाधारण है,[2] यह डॉ० शास्त्री का कहना उचित एवं सिद्ध है, क्योंकि कविवर ने संस्कृत-साहित्य की अनेक शाखाओं में स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण किया है । वे कभी कवि, नाटककार, कोशकार, इतिहास पण्डित एवं रसिक तो कभी भक्त, तत्त्वज्ञ व साहित्य-विमर्शक के रूप में सहृदय पाठकों के समक्ष उपस्थित होते हैं ।

उन्होंने कितने ग्रन्थों की रचना की यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता क्योंकि सभी कृतियाँ उपलब्ध भी नहीं हैं और इस विषय पर विद्वानों में मतैक्य भी नहीं हैं । डॉ० सूर्यकान्त तो स्वतः अनिश्चय में हैं । वे एक जगह[2] इनकी रचनाओं की संख्या बत्तीस देते हैं तो दूसरी जगह[3] क्षेमेन्द्ररचित ग्रन्थों की संख्या चौंतीस बताते हैं । इनकी चौंतीस संख्या की पुष्टि 'सुभाषितरत्नभाण्डागारः' के सम्पादक द्वारा भी है ।[4] डॉ० डे[5] क्षेमेन्द्ररचित सैंतीस ग्रन्थों की सूची देते हैं तो

---

1. Kshemendra Studies, 1954, p. 5.
2. Ibid, p. 1.
3. Ibid, p. 28.
4. सुभाषितरत्नभाण्डागारम्, 1952, Abbreviation & Sources, p. 2.
5. History of Sanskrit Poetics, 1960, Vol. I, pp. 132-133.

डॉ0 काणे का कहना है कि क्षेमेन्द्र ने 'भारतमञ्जरी' एवं 'बृहत्कथामञ्जरी' के अतिरिक्त चालीस ग्रन्थों का प्रणयन किया ।[1] क्षेमेन्द्रलघुकाव्यसङ्ग्रह के सम्पादकों के भी मतानुसार क्षेमेन्द्र ने लगभग चालीस ग्रन्थों की रचना की ।[2]

इस प्रकार क्षेमेन्द्ररचित ग्रन्थों की संख्या की निश्चितता न हो पाने के कारण इतना ही कहा जा सकता है कि इनकी रचनाओं की संख्या बत्तीस से लेकर चालीस के सन्निकट है ।

डॉ0 डे द्वारा दत्त ग्रन्थ सूची के आधार पर क्षेमेन्द्र के ग्रन्थों का परिचय इस प्रकार है -

1. <u>अमृततरङ्ग</u>

यह देव-पूर्वदेवकृत क्षीरसागर के मंथन पर आधृत लघु काव्य है ।[3] इसमें से एक पद्य कविकण्ठाभरण की पंचम सन्धि में उद्धृत है ।[4]

---

1. History of Sanskrit Poetics, 1961, Part I, p. 264.

2. 'Ksemendra wrote some forty works. Of these eighteen are available and already published. Seventeen works are yet to be recovered.'

   - Minor Works of Kshemendra, 1961, Introduction p, 8.

3. Minor Works of Kshemendra, 1961, Introduction, p. 10.

4. कविकण्ठाभरण 5/उदाहरण श्लोक 49.

2. औचित्यविचारचर्चा

क्षेमेन्द्र का यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है । इस ग्रन्थ में कुल उन्तालीस कारिकायें हैं । इन्होंने कारिकागत विचारों के स्पष्टीकरणार्थ कुल एक सौ छः उदाहरण श्लोक उद्धृत किये हैं जिनमें उनके निजी पैंतीस पद्य हैं । यह रससिद्ध काव्य का जीवित-सर्वस्व औचित्य सिद्धान्त का प्रतिपादनपूर्वक लिखा हुआ स्वतन्त्र एवं मौलिक ग्रन्थ है ।[1]

3. अवसरसार

यह अनन्तराजस्तुतिपरक एक लघुकाव्य है ।[2] क्षेमेन्द्र लघु काव्य सङ्ग्रह में इस ग्रन्थ का नाम 'अवतारसार'[3] दिया है, वेश्या प्रमादवश ही हो सकता है, क्योंकि इसमें का एक पद्य क्षेमेन्द्र ने अपनी औचित्यविचारचर्चा में कर्मपदौचित्यप्रकरण में 'न तु यथा ममैवावसरसारे' इस तरह दिया है ।

4. कनक जानकी

यह प्रभु रामचन्द्र के वनवासोत्तर जीवन पर आधृत नाटक होगा ।[4] इसके पाँच श्लोक[5] कविकण्ठाभरण में उद्धृत हैं ।

---

1. 'क्षेमेन्द्र इत्यक्षयकाव्यकीर्तिश्चक्रे नवौचित्यविचारचर्चाम् ।'
   – औचित्यविचारचर्चा, उपसंहार श्लोक 2.

2 & 3. Minor Works of Kshemendra, 1961, Introduction, p. 2.

4. Ibid.

5. कविकण्ठाभरण, उदाहरण श्लोक 22, 47, 48, 56 व 57.

5. कलाविलास

यह क्षेमेन्द्र का उत्कृष्ट काव्य है । उपहासप्रधान यह काव्य दस सर्गों 'दम्भाख्यान', 'लोभवर्णन', 'कामवर्णन', 'वेश्यावृत्त', 'कायस्थचरित', 'मदवर्णन', 'गायनवर्णन', 'सुवर्णकारोत्पत्ति', 'नानाधूर्तवर्णन' एवं 'सकलकलानिरूपण' में विभक्त है । इसमें 551 श्लोक हैं । मूलदेव नामक पुरुष इस काव्य का नायक है । यह पुरुष बड़ा कुटिल तथा चालाक है । इस काव्य में क्षेमेन्द्र ने संन्यासी, वैद्य, गायक, स्वर्णकार, नट आदि का हास्यपूर्ण व रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है । यह काव्य प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध से भी सम्बन्धित काव्य है ।

6. कविकण्ठाभरण

यह ग्रन्थ आचार्य कवि की परिपक्व बुद्धि की उपज है । क्षेमेन्द्र ने शिष्यों के उपदेश तथा विज्ञों की विशेष जानकारी के लिए[1] पाँच सन्धियों में विभक्त इस ग्रन्थरत्न का अनन्तराज के काल में प्रणयन किया । ग्रन्थ में कुल पचपन कारिकाएँ और बासठ उदाहरण श्लोक हैं । कविशिक्षा के क्षेत्र में यह एक अमूल्य ग्रन्थरत्न है ।

7. कविकर्णिका

क्षेमेन्द्र ने औचित्यविचारचर्चा में इस ग्रन्थ का नामनिर्देश किया है । उससे

---

1. शिष्याणामुपदेशाय विशेषाय विपश्चिताम् ।
   अयं सरस्वतीसारः क्षेमेन्द्रेण प्रदर्श्यते ॥ कविकण्ठाभरण 1/2.

कथासरित्सागर की अनेक कथाओं के निदर्शन हैं । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की विषय-वस्तु से सम्बन्धित यह काव्य है ।

11. चित्रभारतनाटक

यह महाभारत पर आधारित नाटक होगा ।[1] इसके दो श्लोक कविकण्ठाभरण में और एक श्लोक औचित्यविचारचर्चा में उद्धृत हैं ।

12. दर्पदलन

कविवर की सूक्ष्म एवं व्यापक निरीक्षणशक्ति का द्योतक यह काव्य कुल, धन, विद्या, रूप, शौर्य, दान एवं तप, जो मद के सात हेतु हैं, नामक सात अध्यायों में तथा 596 श्लोकों में निबद्ध उपदेशपरक है । प्रत्येक अध्याय में विभिन्न मद हेतुओं से सम्बन्धित कल्पित कथा भी दी गयी है । क्षेमेन्द्र ने मंगलाचरण में विवेक[2] को नमस्कार किया है । इस काव्य का भी सम्बन्ध प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध से है ।

---

1. "Citrabharata - A play based on the Mahabharata" - - Minor Works of Kshemendra, 1961, Introduction, p.11.

2. प्रशान्ताशेषविघ्नाय दर्पसर्पापसर्पणात् ।
सत्यामृतनिधानाय स्वप्रकाशविकासिने ॥

संसारव्यतिरेकाय हृतोत्सेकाय चेतसः ।
प्रशमामृतसेकाय विवेकाय नमो नमः ॥

— दर्पदलनम् 1/1-2.

16. नर्ममाला

देशोपदेशसदृश हास्यापदेशपरक यह काव्य तीन परिहासों एवं 407 श्लोकों में विभक्त है । इसमें कायस्थों पर कटु उपहास है । कायस्थों के अतिरिक्त श्रमणिका, मठदैशिक, सभर्तृका, वैद्य, गणक एवं गुर्वादि की भी कड़ी आलोचना की गयी है । नर्ममाला भी प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध से सम्बन्धित काव्य है ।

17. नीतिकल्पतरु

डा० सूर्यकान्त के कथनानुसार यह व्यासरचित राजनीतिपरक ग्रन्थ की व्याख्या है । औचित्यविचारचर्चा में उल्लिखित 'नीतिकल्पलता' भिन्न ग्रन्थ है अथवा अभिन्न यह कहना दुष्कर है । क्षेमेन्द्र लघु काव्यसङ्ग्रह में यह वर्णित है कि 'नीतिकल्पलता का सम्भवत: प्रथम बार सम्पादन 1956 में ही डा० वी०पी० महाजन द्वारा हुआ । यह 138 अध्याय जो 'कुसुम' के नाम से अभिहित है, में विभक्त है।[1]

18. पद्यकादम्बरी

यह बाणभट्ट की कादम्बरी का पद्यात्मक सारांश है । इस काव्य के 8 श्लोक[2] कविकण्ठाभरण में उद्धृत हैं ।

19. पवन पंचाशिका

यह केवल पचास श्लोकों का वायुवर्णन सम्बन्धी लघुकाव्य है ।[3] इसके पद्य

---

1. Minor Works of Kshemendra, 1961, Introduction, p. 12.
2. कविकण्ठाभरण, उदाहरण श्लोक संख्या 15, 17, 20, 24, 26, 34, 37 एवं 45.
3. Minor Works of Kshemendra, 1961, Introduction, p. 12.

सुवृत्ततिलक में उद्धृत हैं ।

20. बृहत्कथामञ्जरी

पंचम सदी के गुणाढ्य द्वारा पैशाची प्राकृत भाषा में 'बृहत्कथा' नामक एक सप्तलक्षात्मक कथाग्रन्थ के आधार पर सारांश रूप में 639 पद्यों का यह 18 लम्भकों (उपसंहार और परिशिष्ट सहित) में विभाजित सारसङ्ग्रह है । क्षेमेन्द्र द्वारा कथा को अतिसंक्षिप्त रूप देने से इसकी शैली दुर्बोध एवं अस्पष्ट हो गयी है - ऐसा डॉ० ह्वूलर मानते हैं ।[1] अतिसंक्षेप के कारण अनेक जगह दुर्बोधता उत्पन्न हुई है । काव्य अनाकर्षक एवं निर्जीव है, ऐसा डॉ० कीथ[2] तथा डॉ० सूर्यकान्त[3] दोनों लोगों का मत है ।

21. बौद्धावदानकल्पलता

यह ग्रन्थ 'बोधिसत्त्वावदानकल्पलता' के भी नाम से जाना जाता है । यह 108 पल्लवों में विभक्त है किन्तु अन्तिम पल्लव की रचना पिता की मृत्यु के बाद क्षेमेन्द्र के पुत्र सोमेन्द्र ने मंगलमयी संख्या की पूर्ति की दृष्टि से की । यह ग्रन्थ काव्यदृष्ट्या रसपूर्ण एवं धर्मदृष्ट्या बौद्धों का प्रिय है । इसमें जातक कथाओं का सङ्ग्रह है । इस ग्रन्थ की रचना में क्षेमेन्द्र ने वीर्यभद्र नामक बौद्ध आचार्य की सहायता

---

1. डॉ० ह्वूलर : इण्डियन एन्टीक्वेरी, भाग 1, पृष्ठ 304.
2. Dr. A.B. Keith - A History of Sanskrit Literature, 1953, p. 276.
3. Dr. Suryakanta - Kshemendra Studies, pp. 17-19.

23. <u>मुक्तावली-काव्य</u>

यह काव्य तपस्वीवर्णनपरक[1] है जिसमें का एक पद्य कविकण्ठाभरण में पाया जाता है ।[2]

24. <u>मुनिमतमीमांसा</u>

इस काव्य में महर्षिव्यास के उपदेश का तात्पर्य वर्णित है । इसके पन्द्रह श्लोक औचित्यविचारचर्चा में उदाहृत है ।

25. <u>नृपावली या राजावली</u>

इस ग्रन्थ का उल्लेख कल्हण की राजतरंगिणी में है । इसमें काश्मीरी राजाओं की वंशावली पद्यबद्ध लिखी गयी थी, किन्तु यह उपलब्ध नहीं है । इस ग्रन्थ की अनुपलब्धि संस्कृत साहित्य की बहुत हानि है - ऐसा डा॰ कीथ[3] मानते हैं।

26. <u>रामायणमञ्जरी</u>

आदिकवि वाल्मीकिकृत कथा का यह सार सात काण्डों में विभक्त तथा 6186 पद्यों का ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ की भाषा प्रवाहशालिनी एवं सुगम है, फिर भी डा॰ कीथ[4] इसे ऐतिहासिक दृष्टि से ही _त्त्वपूर्ण बताते हुए काव्यदृष्ट्या महत्त्व-

---

1. Minor Works of Kshemendra, 1961, Introduction, p. 11.

2. कविकण्ठाभरण, उदाहरण श्लोकांक 41.

3. Dr. A.B. Keith - A History of Sanskrit Literature, 1953

4. *Ibid*, p. 136.

में उद्धृत हैं । लावण्यवती सम्भवत: इस ग्रन्थ की नायिका थी, जिसके आधार पर ग्रन्थ का नामकरण हुआ ।

30. <u>वात्स्यायनसूत्रसार</u>

इसमें क्षेमेन्द्र ने वात्स्यायन के कामसूत्रों का सारांश प्रस्तुत किया है ।

31. <u>विनयवल्ली</u>

यह 'क्षेमेन्द्रलघुकाव्यसङ्ग्रह' में 'विनयवती' नाम से अंकित है तथा यह भी बताया गया है कि यह महाभारत के कुछ कहानियों पर आधारित काव्य है ।[1] 'विनयवती' नाम तो प्रमादवश ही हो सकता है क्योंकि 'विनयवल्ली' शब्द की पुष्टि औचित्यविचारचर्चा द्वारा भी होती है जिसमें 'यथा मम विनयवल्ल्याम्' इस तरह उद्धृत है ।

32. <u>वेतालपंचविंशति</u>

इस ग्रन्थ के बारे में कुछ भी जानकारी नहीं प्राप्त होती है ।

33. <u>व्यासाष्टक</u>

इसमें 'भुवनोपजीव्य' व्यास की स्तुति से सम्बन्धित आठ श्लोक हैं । क्षेमेन्द्र की व्यासजी विषयक प्रगाढ़ आदर-भावना का द्योतक यह अष्टक है ।

---

1. Minor Works of Kshemendra, 1961, Introduction, p. 12.

34. <u>शशिवंश काव्य</u>

यह शशिवंश के राजाओं की कथाओं का वर्णन करने वाला महाकाव्य है । इसके पाँच श्लोक कविकण्ठाभरण में उदाहृत हैं ।[1]

35. <u>समयमातृका</u>

यह 1050 ई0 में दामोदरगुप्त की पद्धति का वेश्याव्यवसायविषयक 635 श्लोकों का (उपसंहारपरक श्लोकचतुष्टय अतिरिक्त) श्रृंगारविषयक उपदेशपरक काव्य है । इस ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में कामदेव को नमन किया गया है । एक वणिक्पुत्र की कलावतीकृत वंचना ही इस काव्य का विषय है । यह काव्य भी प्रस्तुत शोध से सम्बन्धित है ।

36. <u>सुवृत्ततिलक</u>

यह क्षेमेन्द्ररचित एक असाधारण शास्त्रीय ग्रन्थ है । कविवर ने छन्दों का सौन्दर्य ध्यान में रखकर इस ग्रन्थ में प्रसिद्ध वृत्तों का शिष्योपदेशार्थ सङ्ग्रह किया है । इसमें सत्ताईस वृत्तों के लक्षणोदाहरण हैं । ग्रन्थ 'वृत्तावचय', 'गुणदोषदर्शन' एवं 'वृत्तविनियोग' नामक तीन विन्यासों के अन्तर्गत 124 कारिकाओं में निर्मित हुआ है । डॉ0 कीथ, डॉ0 डे, तथा डॉ0 काणे आदि विद्वानों की दृष्टि से क्षेमेन्द्र का यह लघुकाय ग्रन्थ वैशिष्ट्यपूर्ण है । 'क्षेमेन्द्रलघुकाव्यसङ्ग्रह' में इसे छन्दों पर लिखा

---

1. कविकण्ठाभरण, उदाहरण श्लोकांक 15, 17, 24, 26 व 56.

गया सर्वोत्तम कृति बताया गया है साथ ही इसे आज भी सर्वोत्तमत्व प्रदान किया गया है ।[1]

37. <u>सेव्यसेवकोपदेश</u>

यह कविवर क्षेमेन्द्रकृत एक विशेषतासम्पन्न लघुकाव्य 61 श्लोकों का काव्य है । सेव्यसेवकों के बीच के सम्बन्ध अच्छे हो जायँ इस सद्धेतु से इस काव्य में स्वामी एवं सेवकों के कर्त्तव्य एवं उनके कर्त्तव्यों का बोध कराया गया है । सेव्यसेवकों के सम्बन्ध बिगड़ने का कारण सेव्य का दर्प एवं सेवक का लोभ है, यह क्षेमेन्द्र की धारणा है । क्षेमेन्द्र द्वारा इस ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में सन्तोषरूप रत्न को नमन करके औचित्य का बढ़िया प्रयोग है ।[2]

---

1. 'सुवृत्ततिलक occupies an unique place among works on metres. In this work he has discussed for the first time the merits, flows and proper usages of several metres. This difficult task has been very well accomplished by him. He was a pioneer in this type of work without any follower till to-day."

   - Minor Works of Kshemendra, 1961, Introduction, p. 14.

2. 'विभूषणाय महते तृष्णातिमिरहारिणे ।
   नमः सन्तोषरत्नाय सेवाविषविनाशिने ॥ - सेव्यसेवकोपदेश, श्लोकांक 1.

<u>वर्गीकरण</u>

कविवर क्षेमेन्द्र की कृतियों के विवरण से पूर्णतः स्पष्ट है कि वे एक उच्च कोटि के बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न ग्रन्थकार थे । कविवर क्षेमेन्द्रकृत अमृततरङ्ग, अवसरसार, कनकजानकी, कविकर्णिका, क्षेमेन्द्रप्रकाश, चित्रभारत नाटक, दानपरिजात, नीतिकल्पतरु, पद्यकादम्बरी, पवनपंचाशिका, मुक्तावली, मुनिमतमीमांसा, राजावली, ललितरत्नमाला, लावण्यवती, वात्स्यायनसूत्रसार, विनयवल्ली, वेतालपंचविंशति और शशिवंश इतने उन्नीस ग्रन्थरत्न तो अनुपलब्ध या अप्रकाशित हैं । लोकप्रकाश काव्य के कर्तृत्व के ही बारे में सन्देह है । व्यासाष्टकस्तोत्र तो भारतमञ्जरी के ही अन्तर्गत माना जा सकता है क्योंकि यह उसी ग्रन्थ में है तथा उससे सम्बन्धित भी है । यह तो स्वतन्त्र काव्य माना ही नहीं जा सकता है । यह काव्य तो भारतमञ्जरी का ही अंश है । जिस प्रकार 'दशावतारस्तुति' 'दशावतारचरित' का तथा 'वाल्मीकि-प्रशंसा' 'रामायणमञ्जरी' का अंश है, उसी तरह 'व्यासाष्टक' भी 'भारतमञ्जरी' का ही अंश है । यह कोई स्वतन्त्र काव्य नहीं है । यह केवल आठ पद्यों का ही अष्टक है, जिसे इस दृष्टि से भी काव्य नहीं माना जा सकता है । अब सोलह काव्यग्रन्थ अवशिष्ट हैं जो उपलब्ध एवं प्रकाशित हैं । इनका वर्गीकरण निम्नलिखित विषयानुसार किया जा सकता है -

1. सारांशकाव्य मञ्जरीत्रय - 1. बृहत्कथामञ्जरी
   2. भारतमञ्जरी एवं
   3. रामायणमञ्जरी

2. शास्त्रीय ग्रन्थ - 1. औचित्यविचारचर्चा
2. सुवृत्ततिलक एवं
3. कविकण्ठाभरण

3. नीत्युपदेशपरक काव्य - 1. चारुचर्या
2. चतुर्वर्गसङ्ग्रह
3. सेव्यसेवकोपदेश एवं
4. दर्पदलन

4. हास्यापदेशपरक व्यङ्ग्यप्रधान काव्य - 1. कलाविलास
2. देशोपदेश
3. नर्ममाला एवं
4. समयमातृका

5. अवतारचरितपरक काव्य - 1. दशावतारचरित एवं
2. बौद्धावदानकल्पलता

रचना-विवरण एवं वर्गीकरण से कविवर क्षेमेन्द्र की वाणी बहुविषयसमावेशिका एवं सर्वरसमयता का बोध होता है। क्षेमेन्द्र ने भामहोक्ति को सिद्ध कर दिया है कि 'कोई शब्द, अर्थ, न्याय व कला इत्यादि नहीं है जो इस महान् कवि के काव्यों में न हो'[1] तथा कालिदासोक्ति[2] भी चरितार्थ सी मालूम पड़ती है। इन्हीं विशेषताओं

---

1. न स शब्दो न तद्वाच्यं न स न्यायो न सा कला।
जायते यन्न काव्याङ्गमहो भारो महान् कवेः॥ - भामहकृत काव्यालङ्कार 5/4.

2. न खलु धीमतां कश्चित् अविषयो नाम। - अभिज्ञानशाकुन्तलम्, चतुर्थोऽङ्कः।

से ही आकृष्ट होकर क्षेमेन्द्रलघुकाव्यसङ्ग्रहकार ने क्षेमेन्द्र को बहुमुखी प्रतिभा का बताते हुए प्रशंसा किया है ।[1] डॉ० सूर्यकान्त भी कविवर क्षेमेन्द्र को बहु-आयामी दृष्टिकोण वाला देखकर प्रशंसात्मक तथ्य कहने के लिए बाध्य हो जाते हैं ।[2]

---

1. "Ksemendra was a polymath and prolitic writer. He was a versatile genius, an accomplished servant; a methodical writer and a importial critic. He thus occupies a unique place in Sanskrit Literature on account of his varied writings and his vast literary output."

   - Minor Works of Ksemendra, Introduction, p. 5.

2. "Ksemendra holds a unique position in the history of Sanskrit Literature. He appears as poet, dramatist, rhetorician, 1 lexicographer and historian. He has written numerous works which from important landmarks in several fields of Sanskrit Literature. ... Almost every important branch of Sanskrit Literature has been enriched by the facile pen of this versatile genides. Indeed, in the whole range of Sanskrit Literature, only Bhoja and Hemchandra have tried their hand on such a variety of subject, but Ksemendra displays a depth and originality peculiarilly his own."

   - Ksemendra Studies, 1954, p. 33.

डा॰ कौल महोदय के अनुसार इनकी रचनाओं का कालक्रम की दृष्टि से विभाजन इस प्रकार है -

1. बृहत्कथामञ्जरी, भारतमञ्जरी, रामायणमञ्जरी

2. पवनपञ्चाशिका, सुवृत्ततिलक

3. विनयवल्ली, लावण्यवती, मुनिमतमीमांसा, नीतिलता, अवदानकल्पलता, अवसरसार, ललितरत्नमाला, मुक्तावलीकाव्यम्, वात्स्यायनसूत्रसार और औचित्यविचारचर्चा

4. पद्यकादम्बरी, शशिवंश महाकाव्यम् , देशोपदेश, नर्ममाला, चित्रभारत, कनकजानकी, अमृततरङ्ग, चतुर्वर्गसङ्ग्रह तथा कविकण्ठाभरण ।

5. दर्पदलन, कलाविलास, समयमातृका, सेव्यसेवकोपदेश, चारुचर्याशतक तथा दशावतारचरितम् ।

किन्तु डा॰ कौल द्वारा रचनाओं का कालक्रम की दृष्टि निर्धारित उपयुक्त नहीं मालूम होता क्योंकि -

1. कौल महोदय ने अवदानकल्पलता को समयमातृका से पूर्व का दिखाया है जबकि इन ग्रन्थों में उल्लिखित परिशिष्टांकों से विदित है कि समयमातृका व अवदानकल्पलता का रचनाकाल क्रमशः 1050 ई॰ व 1052 ई॰ है ।

2. इन्होंने तीन सारसङ्ग्रहों के ठीक बाद ही सुवृत्ततिलक की रचना बताया है परन्तु इसकी शैली व भाषा कालान्तर की अर्थात् परिपक्वावस्था की आभासित होती है ।

3. पद्यकादम्बरी व वात्स्यायन सूत्रसार जो कि सारसङ्ग्रह ही हैं इन्हें पूर्वरचित तीन सारसङ्ग्रहों से काफी बाद स्थान दिया है जो उचित नहीं मालूम होता ।

वैसे आचार्य क्षेमेन्द्र के ग्रन्थों के बारे में पर्याप्त ज्ञान हमें इनके द्वारा ही रचित तीन रीति ग्रन्थों द्वारा ही प्रमुख रूप से प्राप्त होता है -

1. औचित्यविचारचर्चा,
2. सुवृत्ततिलक एवं
3. कविकण्ठाभरण ।

औचित्यविचारचर्चा की रचना के हेतु रत्नसिंह के पुत्र उदयसिंह हैं जिन्हें शिक्षा देने के लिए क्षेमेन्द्र ने इसकी रचना की ।[1] कविकण्ठाभरण में उदयसिंह को 'महाश्री'[2] कहा गया है और उसकी 'ललित'[3] एवं 'भक्तिभाव' नामक दो रचनाओं

---

1. श्रीरत्नसिंहे ------- विचार: । औचित्यविचारचर्चा, उपसंहार, श्लोक 4.
2. कविकण्ठाभरण, 5-1-60.
3. वही ।

कलाविलास तथा बौद्धावदानकल्पलता औचित्यविचारचर्या से पूर्व की रचनायें हैं क्योंकि इनके उल्लेख इस ग्रन्थ में हैं। चूँकि समयमातृका अवदानकल्पलता के दो वर्ष पूर्व की रचना है अत. कलाविलास व बौद्धावदान के मध्य स्थान निश्चित है। इसके बाद शशिवंश महाकाव्य, चित्रभारतनाटक, कनकजानकी, अमृततरंग व चतुर्वर्गसंग्रह है चूँकि इन ग्रन्थों का उल्लेख कविकण्ठाभरण में है अत: कविकण्ठाभरण इनके बाद की रचना है। तत्पश्चात् क्षेमेन्द्र ने लोकप्रकाश न नृपावली[1] या राजावली की रचना किया होगा और.दर्पदलन, सेव्यसेवकोपदेश, चारुचर्याशतक तथा दशावतारचरित क्षेमेन्द्र की अन्तिम कालीन रचनायें हैं। दशावतारचरित [1066 ई0] के बाद की कोई भी रचना उपलब्ध नहीं है।

वैसे इनकी रचनाओं का विभाजन विभिन्न भागों में इस प्रकार है -

1. पद्यात्मक सूक्ष्म रूपान्तर - रामायणमञ्जरी, भारतमञ्जरी, बृहत्कथामञ्जरी, दशावतारचरित व बौद्धावदानकल्पलता।

2. उपदेशात्मक रचनायें - चारुचर्या, सेव्यसेवकोपदेश, दर्पदलन, चतुर्वर्गसङ्ग्रह, कलाविलास, देशोपदेश व नर्ममाला।

3. रीतिग्रन्थ - कविकण्ठाभरण, औचित्यविचारचर्या, सुवृत्ततिलक।

---

1. डॉ0 व्हूलर इसका नाम 'राजावली' बताते हुए इस ग्रन्थ की काश्मीर में प्राप्ति भी बताते हैं। - **Kashmir Report, p. 56.**

4. फुटकर रचनायें - लोकप्रकाश कोष[1], नीतिकल्पतरु, व्यासाष्टक ।

5. कविकण्ठाभरण में उल्लिखित कृतियाँ - शशिवंश महाकाव्य, पद्यकादम्बरी, चित्रभारतनाटक, लावण्यमञ्जरी, कनकजानकी, मुक्तावली तथा अमृततरंग महाकाव्य ।

6. औचित्यविचारचर्चा में उल्लिखित कृतियाँ - विनयवल्ली, मुनिमतमीमांसा, नीतिलता, अवसरसार, ललितरत्नमाला और कविकर्णिका ।

7. सुवृत्ततिलक की उल्लिखित रचना - पवनपञ्चाशिका ।

8. राजतरंगिणी की उल्लिखित रचना - नृपावली ।

<u>बृहद् काव्य</u>

क्षेमेन्द्र की सात बृहद् रचनायें हैं जो इस प्रकार हैं -

1. <u>बुद्धावदानकल्पलता</u>

यह ग्रन्थ जातक कहानियों व बोधिसत्त्व या गौतमबुद्ध अथवा शाक्यसिंह की कथाओं का सङ्ग्रह है । इसमें 108 पल्लव हैं । 107 पल्लव या अध्याय क्षेमेन्द्र द्वारा रचित हैं और कालान्तर में संख्या को महत्त्वपूर्ण बनाने के उद्देश्य से इनके पुत्र सोमेन्द्र ने एक अध्याय और जोड़ा ।

---

1. यह क्षेमेन्द्र की संदिग्ध रचना है । वेबर ने इसे इनकी रचना नहीं माना है, जबकि डॉ० व्हूलर ने इन्हीं की रचना माना है ।

2. भारतमञ्जरी - यह विशाल महाकाव्य पुराण के आधार पर रचित है। इसमें 10692 पद्य हैं।

3. बृहत्कथामञ्जरी - यह उपसंहार व परिशिष्ट के अतिरिक्त 18 भागों में विभक्त है। इसमें 7639 पद्य हैं। यह गुणाढ्यकृत बृहत्कथा, सोमदेवकृत कथासरित्सागर व बुद्धस्वामीकृत बृहत्कथा श्लोकसङ्ग्रह पर आधारित ग्रन्थ है।

4. दशावतारचरित - यह दस अध्यायों में विभक्त ग्रन्थ है। इसमें 1764 पद्य हैं।

5. नीतिकल्पतरु - यह 138 अध्यायों में विभक्त है जिसे कुसुम कहा गया है। यह राजनीति पर आधारित ग्रन्थ है।

6. रामायणमञ्जरी - यह वाल्मीकि रामायण पर आधारित महाकाव्य है जो सात काण्डों में विभक्त है। इसमें 6186 पद्य हैं।

7. लोकप्रकाश - डॉ० ब्हूलर के अनुसार यह ग्रन्थ हिन्दुओं के दैनिक जीवन व कश्मीरी अधिकारियों के विवरण के साथ ही साथ कश्मीर के परगनों का ज्ञान कराता है।

<u>संस्कृत एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र में अपदेश, व्यङ्ग्य व अधिक्षेपादि का अर्थ</u>

हास्य, व्यङ्ग्य, अधिक्षेप एवं अपदेश आदि शब्द वस्तुत: मुख्य रूप से व्यंग्य एव अधिक्षेप के ही परिचायक हैं । इन शब्दों का प्रयोग व्यङ्ग्यप्रधान काव्यों में होता है । इन शब्दों की व्याख्या विभिन्न भारतीय एवं पाश्चात्त्य विद्वानों द्वारा की गयी है । अधिक्षेप, व्यङ्ग्य एवं अपदेश वस्तुत: समान अर्थ के शब्द हैं जबकि हास्य की सर्जना ऐसे काव्यों में होती है । इन शब्दों की विभिन्न विद्वानों द्वारा की गयी व्याख्यायें इस प्रकार हैं -

व्यङ्ग्य, जिसे अंग्रेजी में (Irony)कहते हैं, के अर्थ को विभिन्न विद्वानों द्वारा स्पष्ट किया गया है -

चैम्बर्स के अनुसार व्यङ्ग्य(Irony)का अर्थ है -

'A mode of speech which enables the speaker to convey his meaning with greater force by means of contrast between the thought which he evidently designs to express and that which his words properly signify.'

'Meaning the opposite of what is expressed' अर्थात् विरुद्धार्थयुक्त कथन ही आयरनी (Irony) है ।

डब्ल्यू0एच0 हडसन ने विरोध के नैतिक प्रयोग (Ethical use of contrast

के सम्बन्ध में अपना मत देते हुए विरोधाङ्ग या विरोध-प्रकार (Kind of contract) के रूप में आयरनी को स्वीकार किया है ।[1] उनके अनुसार यह वैपरीत्य (Irony) दो प्रकार का होता है -

1. वचन सम्बन्धी (Verbal Irony) तथा
2. घटना सम्बन्धी (Irony of Situation).

कभी-कभी मनुष्य अकारण ही कोई बात कह बैठता है और दैवयोग से वही बात या घटना निकट भविष्य में घटित भी हो जाती है तो हम उसे मत या घटना का वैपरीत्य अथवा 'नियति का व्यङ्ग्य' कहते हैं । साहित्य क्षेत्र में वही तत्त्व आयरनी कहा जाता है ।

हडसन ने इसे प्रोफैटिक आॅयरनी (Prophetic Irony) की संज्ञा दी है ।

संस्कृत नाट्य साहित्य में भी 'पताकास्थानक' के रूप में यह नाटकीय व्यङ्ग्य प्राय: प्राप्त होता है । शायद ही कोई ऐसा नाटक हो जिसमें एकाध पताकास्थानक न हों। भरतोक्त चार भेदों वाला पताकास्थानक पाश्चात्य नाटकों की द्विविध आयरनी (Irony) को अपने में अन्तर्भूत कर लेता है ।[2]

---

1. The Study of Literature, p. 297.

2. द्रष्टव्य, साहित्य-दर्पण, षष्ठ परिच्छेद, पृष्ठ 305-08, कलकत्ता संस्करण, सन् 1950 ई० ।

एक उदाहरण से यह तथ्य स्पष्ट हो जायेगा -

महाकवि शूद्रकप्रणीत मृच्छकटिकम् के तृतीय अङ्क में सङ्गीत सुनकर चारुदत्त एवं मैत्रेय (विदूषक) के लौटने पर, चेट वसन्तसेना द्वारा न्यास रूप में रखा गया सुवर्णभाण्ड उसे देते हुए कहता है -

चेट: - आर्य मैत्रेय । एतत्सुवर्णभाण्डकं मम दिवा, तव रात्रौ च । तद् गृहाण ।

मैत्रेय:- अद्याप्येतत्तिष्ठति ? किमत्रोज्जयिन्यां चौरोऽपि नास्ति, य एतं दास्या: पुत्रं निद्राचौरं नापहरति आदि ।

और ठीक उसी रात शर्विलक चारुदत्त के घर में सेंध लगाकर उसे चुरा ले जाता है । इसी प्रकार के अन्य उदाहरण प्रतिज्ञायौगन्धरायण (श्लोक 2/8 से सम्बद्ध), अभिषेकनाटक (श्लोक 5/10 से सम्बद्ध), उत्तररामचरित (श्लोक 1/38 से सम्बद्ध), मुद्राराक्षस (प्रथम व चतुर्थाङ्क) तथा वेणीसंहार (श्लोक 2/23 से सम्बद्ध) अवधेय है कि ये पताकास्थानक धनंजय प्रोक्त पताकास्थानक से पूर्णत: भिन्न हैं ।

Satire अथवा अधिक्षेप

अंग्रेजी साहित्य में ड्राइडेन तथा पोप आदि महान् विद्रूपवादी कवि (Satirist Poets) हो चुके हैं । इस शब्द की उत्पत्ति फ्रेंच Satira अथवा लैटिन Satura से हुई है ।

इसका अर्थ चैम्बर्स के अनुसार - 'A literary composition originally in verse essentially a criticism of a man and his work whom it

holds up, either to ridicule or scorn - its chief instruments. Irony, sarcasm, inventive wit and humour, an inventive poem, severity of remark, denunciation, ridacule.

अर्थात् सेटायर का मुख्य अर्थ है किसी पर विद्रूप कसना, खिल्ली उड़ाना, आक्षेप या अधिक्षेप । सत्रहवीं शती में इंग्लैण्ड में विद्रूपात्मक साहित्य अपनी चरम पराकाष्ठा पर था । सेमुएल बटलर की प्रख्यात कृति Hundibaras 1663 ई० की आलोचना में श्री कैजामियाँ ने जो सामग्री प्रस्तुत की है, वह कृति विशेष के साथ Satire की समस्त विशेषताओं को स्पष्ट कर देती है -

The substance of the poem is composed of an interrupted series of epigraphic sayings as short as they are pointed, bilingly sarcastid, flung off as if from rebounding spring. The poem becomes a general criticism of society, of thought and of man.

अतः स्पष्ट है कि (Satire) अधिक्षेप का मुख्य उद्देश्य समाज और व्यक्ति में मिथ्या तौर तरीकों, दोषों एवं कुरीतियों पर छींटाकसी करना ही है ।

बटलर के पश्चात् इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध विद्रूपवादियों में जान ओल्डहेम ॥1653-83॥ तथा ड्राइडेन ॥1660-1702॥ आदि आते हैं । ओल्डहेम ने 'A Satyre Against

virtue', व 'A Satyre upon A Woman' आदि अनेक अधिक्षेपात्मक कृतियाँ प्रणीत की हैं । ड्राइडेन की प्रख्यात रचनाओं में 'Avalom And Achitophel (1680-82)' तथा 'The Medal And Mac Fleckloe (1680)' आदि कृतियाँ हैं ।

अब यदि अधिक्षेप साहित्य की इन मान्यताओं के साथ हम संस्कृत भाण-साहित्य पर दृष्टि डालें तो प्रतीत होगा कि भारतवर्ष का एतद्विषयक साहित्य किसी भी अर्थ में पाश्चात्त्य से कम नहीं है । चतुर्भाणी (उभयाभिसारिका प्रभृति चार भाण) जिसका समय मौर्य एवं गुप्त-युग (ई०पू० शती से लेकर ईस्वी चतुर्थ शती तक) है, का अध्ययन इस प्रामाण्य के लिए पर्याप्त है ।

उदाहरण -

कोई व्यक्ति विशेष है तो सर्वथा गुणहीन, न रूप है न विद्या, न कण्ठ है और न कोई अन्य ही कला कि वह जन समुदाय के बीच आदर पा सके । पड़ोस में रहने वाले सभी गुणों से सम्पन्न व्यक्ति का नकल करने की वह कोशिश करे और यदि वह धनी पिता की सन्तान हो तो सम्पूर्ण कमी होने के बावजूद भी ठाठ में तनिक भी कमी न लायेगा । इसी तरह के ही व्यक्ति पर उपहासमयी शैली में छींटाकसी प्रस्तुत है जो पूर्णत: अंग्रेजी सेटायर का रूप हैं -

हंसः प्रयाति शनकैर्यदि यातु तस्य नैसर्गिकी गतिरियं न हि तत्र चित्रम् ।
गत्या तया जिगमिषुर्बक एष मूढचेतो दुनोति सकलस्य जनस्य नूनम् ॥

'अपदेश' शब्द पर 'बृहत् संस्कृताभिधानम्' में इस प्रकार टिप्पणी है -

वाचस्पति द्वारा

अपदेश पु० अप + दिश् - घञ् । लक्ष्ये, स्वरूपाच्छादनरूपे, छले, निमित्ते स्थाने च । "रक्षापदेशान्मुनिहोमधेनोरिति" रघु. । 'न धर्म्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा व्रतं चरेदिति ।' 'भक्ष्यभोज्यापदेशैश्च ब्राह्मणानां च दर्शनै: ।' 'शौर्य्यकर्म्मापदेशेनेति' 'साक्ष्यभावे प्रणिधिभिर्वयोरूपसमन्वितै: अपदेशैश्च संन्यस्य हिरण्यं तस्य तत्वत इति' । च मनु: । उपदेशे च । 'दीक्षाया अपदेशात्' कात्या० 22, ।22 । अपदेश उपदेश इत्यर्थ: । अपकृष्टोपदेश: प्रा०ब० वा कृष्टपदलोप: । अपकृष्टदेशे, अनुचितस्थाने च ।[1]

वामन शिवराम आप्टे द्वारा

अपदेश: । Statement, adducing [उपदेश] pointing out, mentioning the name of नैष न्यायोपदातुरपदेश:, हेत्वपदेशात् प्रतिज्ञाया: पुनर्वचनं निगमनं Nyayas , दीक्षाया अपदेशात् Katy - 2(a) A pretext, pretence, plea, excuse, contrivance. केनापदेशेन पुनराश्रमं गच्छाम: 3/2, रक्षापदेशान्मुनिहोमधेनो: R. 2.8 , व्रतापदेशोज्झितगर्ववृत्तिना - V. 3.12(b) Guise, disguise, form विकटदुष्टश्वापदापदेशकालगोचरगता Mal. 7 मन्त्रि-पदादेशं यौवराज्यं DK 101, 3- Statement of the reason, adducing a

---

1. वाचस्पत्यम् [बृहत् संस्कृताभिधानम्] प्रथमो भाग:, पृष्ठ 228.

cause, the second (हेतु) of the five members of an Indian syllogism (according to the Vaiseshikas).

4. A butt, mark (लक्ष्य)

5. A place, quarter

6. Refusal, rejection

7. Fame, reputaion

8. Deceit

9. (अपकृष्टो देश:) A bad or wrong place.[1]

अपदेश: ।अप् + दिश् + घञ्। 1. वक्तव्य, उपदेश, नाम का उल्लेख करते हुए सङ्केत करना - नैष न्यायो यद्दातुरपदेश: - दश० 60, हेत्वपदेशात् प्रतिज्ञाया: पुनर्वचनं निगमनम् - न्या०सू० 2, बहाना, छल, कारण, ब्याज - केनापदेशेन पुनराश्रमं गच्छाम: - श० 2, रक्षापदेशान्मुनिहोमधेनो: - रघु० 2/8, 3, कारणों का वर्णन, तर्क प्रस्तुत करना, भारतीय न्यायवाद के पाँच अङ्गों में से दूसरा हेतु ।वैशे० के अनुसार। 4. निशाना, चिह्न 5. स्थान-दिशा, 6. अस्वीकृति, 7. प्रसिद्धि, यश, 8. छल[2]

---

1. Sanskrit English Dictionary on Page 97.
by Vaman Shivram Apte.

2. Hindi Sanskrit Dictionary on Page 56, by V.S. Apte.

अधिक्षेप

अधि + क्षिप् + घञ् , 1. गाली, दोषारोपण, अपमान, भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम् - कि0 1/28, 2. पदच्युत करना ।

आक्षेप

आ + क्षिप् + घञ्, 1. दूर फेंकना, उछालना, खींचकर दूर करना, छीन लेना - अंशुकाक्षेपविलज्जितानाम् कु0 1/14 पीछे हटना 2. भर्त्सना, झिड़कना, कलङ्क लगाना, अपशब्द कहना, अवज्ञापूर्ण निन्दा, प्रचण्डतया - उत्तर0 5/29, विरुद्धमाक्षेपवचस्तितिक्षितम् - कि0 14/25. 3. मन की उचाट, मन का खिंचाव विषयाक्षेपपर्यस्तबुद्धेः - भर्तृ0 3/47, 23. 4. प्रयुक्त करना, लगाना, भरना ।जैसे कि रंग। - गोरोचनाक्षेप नितान्त गौरै. - कु0 7/17, 5. सङ्केत करना, ।किसी दूसरे शब्दार्थ को। मान लेना, समझ लेना, स्वसिद्धये पराक्षेपः काव्य 2,7, अनुमान, धरोहर, 8. आपत्तिया सदेह 9. ।सा0शा0 में। एक अलंकार जिसमें विवक्षित वस्तु को एक विशेष अर्थ जताने के लिए प्रकटतः दबा दिया जाय या निषिद्ध काव्य 17 सा0 द0 714 और रसगंगाधर का आक्षेप प्रकरण ।

कविवर क्षेमेन्द्र के काव्य प्रबन्धात्मक या मुक्तक

कविवर क्षेमेन्द्र की प्राय. रचनायें उपदेश व हास्यापदेश प्रधान हैं। उपदेश-परक ग्रन्थ प्राय: मुक्तक होते ही हैं। मुक्तक को मुक्त भी कहा जाता है। दोनों के अर्थ बाल व बालक की भाँति समान हैं। मुक्तक काव्य ऐसा काव्य है जिसका अर्थ पूर्वापर के सम्बन्ध के बिना भी स्वतन्त्र रूप में पूर्ण होता है जबकि प्रबन्धात्मक काव्य में ऐसा नहीं होता। इसमें काव्य पूर्वापर कथाओं व कहानियों से सम्बन्धित होता है। कोई पद्य स्वतन्त्र निर्भर न होकर पूर्वापर कथानकों से सम्बन्धित होता है।

एक मुक्तक का दूसरे से सम्बन्ध नहीं होता है। अग्निपुराण में इस मुक्तक का प्रमुख वैशिष्ट्य चमत्कार उत्पन्न करना बताया है। सहृदयों के लिए चमत्कार उत्पन्न करने में समर्थ एक ही श्लोक मुक्तक होता है।[1] इस प्रकार मुक्तक को अनन्यापेक्षी स्वीकार किया गया है।

काव्यादर्श में आचार्य दण्डी ने भी मुक्तक को अन्य पद्य से मुक्त अर्थात् निर-पेक्ष या स्वतन्त्र बताया है।[2]

---

1. मुक्तकं श्लोक एव एवैकश्चमत्कारक्षम: सताम्।

   - अग्निपुराण 337; 23-24.

2. 'मुक्तकं पद्यान्तरमुक्तं श्लोकान्तरनिरपेक्षम् एकमेव पद्यम्'

   - काव्यादर्श 1/13 वृत्तिभाग

साहित्यदर्पण के अनुसार भी मुक्तक छन्दोबद्ध स्वतन्त्र पद्य होता है ।[1] छन्द से निबद्ध एकाकी और दूसरे श्लोक की अपेक्षा न रखने वाले पद्य को मुक्तक कहा जाता है ।

इस प्रकार मुक्तक पद्य स्वतः में चमत्कारपूर्ण व अर्थपूर्ण होता है । उसके भाव को समझने के लिए पूर्वापर अंशों की अपेक्षा नहीं रहती जबकि प्रबन्धकाव्य के रसास्वादन में कथावस्तु की गति तथा पात्रों के चरित्र का विकास भी सहायक होता है साथ ही इसके पद्य पूर्वापर के पद्यों से सम्बन्धित होते हैं । इनके पद्य स्वतन्त्र भावसम्पन्न नहीं होते हैं बल्कि कथानक व प्रबन्ध काव्य के पद्यों का सम्बन्ध एक दूसरे पद्यों से बराबर बना रहता है । प्रत्येक पद्य के भावों व अर्थों को समझने के लिए पूर्वापर प्रसङ्ग अपेक्षित है ।

कविवर क्षेमेन्द्र के काव्य वस्तुतः मुक्तक प्रधान हैं किन्तु वे कथा गढ़ने में भी निपुण हैं । जहाँ एक ओर वे नैतिक भावों एवं विचारों पर मुक्तक काव्य करते हैं वहीं उन भावों की पुष्टि में कथा भी गढ़ते हैं । परिणामस्वरूप इस प्रकार के काव्य मुक्तक होने के साथ ही प्रबन्धात्मक भी हो जाते हैं । इनके प्रमुख आठ लघु काव्यों के विवेचन निम्नलिखित हैं -

कवि की चारुचर्या नामक रचना सौ श्लोकों का उपदेशपरक लघुकाव्य है जो पूर्णतः मुक्तक की श्रेणी में आता है । इसमें प्रत्येक पद्य आदर्श व्यवहार का निर्देश

---

1. 'छन्दोबद्धपदं पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम् ।' - साहित्यदर्पण 6, 314.

करता है । इस ग्रन्थ के अनुष्टुप् छन्द में रचित प्रत्येक पद्य की प्रथम पंक्ति में किसी एक नैतिक उक्ति का प्रतिपादन है और द्वितीय पंक्ति में पुराणों और महाकाव्यों से उदाहरण देकर उसका समर्थन किया गया है । इन पद्यों का अर्थ स्वयं में पूर्ण होकर स्वतन्त्र भाव सम्पन्न है । इनके अर्थों को समझने के लिए पूर्वापर पद्यों की अपेक्षा नहीं रहती ।

चतुर्वर्गसङ्ग्रह भी चार वर्गों में विभाजित एक सौ छः पद्यों का उपदेशपरक ग्रन्थ है । यह भी मुक्तक की ही श्रेणी की रचना है । इसमें न तो कोई कथोपकथन है और न ही किसी कथा व कहानी का विस्तार है, अपितु धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष से सम्बन्धित विषयों पर कवि के उपदेशपरक विचार हैं जिसका प्रत्येक पद्य स्वयं में पूर्ण अर्थ रखता है । पाठक को पूर्वापर के पद्यों की सहायता अपेक्षित नहीं होती है । इसमें काम का वर्णन अत्यन्त उत्कृष्ट व पूर्ण है ।

इन्हीं ग्रन्थों की परम्परा की भाँति 61 श्लोकमय सेव्यसेवकोपदेश ग्रन्थ द्वारा कविप्रवर क्षेमेन्द्र ने स्वामी और सेवक के बीच होने वाले आवश्यक आदर्श व्यवहारों का संक्षेप में वर्णन किया है । इसके भी श्लोक स्वतः में पूर्णार्थ सम्पन्न हैं अर्थात् यह भी मुक्तक काव्य है ।

दर्पदलनम् भी सात विचारों में विभक्त उपदेशात्मक काव्य है । इसमें कुल, वित्त, श्रुत, रूप, दान व तप इत्यादि मद के हेतुओं की कठोर समालोचना की गयी है । इसमें सूक्तियों व लोकोक्तियों का प्रचुर भण्डार है साथ ही साथ यत्र तत्र निन्दोपाख्यान भी उपलब्ध हैं । कवि पहले मदहेतुओं पर सूक्तियों के माध्यम से

समालोचना करता है फिर उसकी पुष्टि में कथानक का भी आश्रय लेता है । इस प्रकार यह काव्य मुक्तक होते हुए प्रबन्धात्मक भी है । कथा वाला अंश प्रबनधात्मक है तथा पूर्व के सभी अंश मुक्तक हैं । इस प्रकार यह काव्य कौल महोदय के शब्दों में व्यङ्ग्यपूर्ण उपदेशात्मक काव्य को दृष्टि में रखते हुए संस्कृत साहित्य की सर्वोत्तम कृति है ।[1]

कवि का अन्य ग्रन्थ देशोपदेश मौलिक रचनाओं में प्रथम है । यह आठ उपदेशों में विभक्त है । इसमें तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों व दम्भी पुरुषों की मूर्खता व मिथ्याहंकार पर कटु उपहास है । इस काव्य में कवि ने दुर्जन, कंजूस, वेश्या, कुट्टनी, छात्र, विट, वृद्ध भार्या व दिविर, कवि तथा वणिक् आदि पर तीखा व्यङ्ग्य किया है । इस प्रकार सभी उपदेश स्वत: में स्वतन्त्र हैं । यह कथोपकथन व कथानकों से परे होते हुए मुक्तक काव्य परम्परा का निर्वाह करता है । किन्तु आंशिक रूप से यत्र-तत्र प्रबन्धात्मकता भी विद्यमान है ।

विषय की दृष्टि से नर्ममाला भी देशोपदेश से साम्य रखता है । यह तीन परिहासों में विभाजित है । यद्यपि परिहास का मुख्य विषय तत्कालीन कायस्थ वर्ग ही है, परन्तु वैद्य, ज्योतिषी तथा गुरु इत्यादि वर्गों पर भी उन्होंने व्यङ्ग्य कसे हैं । इसमें कवि ने लगभग सम्पूर्ण सरकार का उपहास किया है और इस दुर्व्यवस्था को दूर करने वाले काश्मीर नरेश राजा अनन्त की प्रशंसा की है । यह काव्य भी

---

1. श्री मधुसूदन कौल, देशोपदेश व नर्ममाला, आमुख, पृष्ठ 21.

विषय-वस्तु की दृष्टि से मुक्तक की ही कोटि का है । इसकी प्रत्येक पद्य सामाजिक शीर्षकों पर अधिक्षेप से सम्बन्धित है । प्रत्येक पद्य स्वतन्त्रभावसम्पन्न होकर विभिन्न वर्गों के दोषों को प्रकट करने में सक्षम है ।

कलाविलास

यह काव्य भी लोभ, वेश्या, काम, कायस्थ, मद, सुवर्णकार, नाना धूर्त व सकल कला सम्बन्धी वर्णन से युक्त है । इसके पद्य हास्यापदेशपूर्ण उपदेशपरक हैं । इसमें भी मुक्तक परम्परा के पद्य हैं । मूलदेव इस काव्य का नायक है जिसके माध्यम से कथानक के द्वारा काव्य को विस्तार भी दिया गया है । इस प्रकार यह काव्य अंशतः मुक्तक होते हुए प्रबन्धात्मक है ।

समयमातृका

समयमातृका वेश्या कलावती से सम्बन्धित एक उपदेशपूर्ण व्यङ्ग्यात्मक यथार्थ चित्रण काव्य है । एक वणिक् पुत्र की कलावतीकृत वंचना, यह इस काव्य का विषय है । इसमें इसी विषय को लेकर क्षेमेन्द्र ने कथानक का विस्तार किया है जो चिन्ता-परिप्रश्न, 'चरितोपन्यास', 'प्रदोषवेश्यालापवर्णन', 'पूजाधरोपन्यास' तथा 'राग-विभागोपन्यास' नामक पाँच समयों (अध्यायों) में विभक्त है । इस प्रकार यह काव्य पूर्णतः प्रबन्धात्मक काव्य है । कथानक के मध्य में कहीं-कहीं सूक्तियाँ भी हैं जो मुक्तक ही है ।

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र के लघु काव्यों में अनेक ग्रन्थ मुक्तक काव्य हैं तथा कुछ प्रबन्धात्मक भी । कविवर उन्मुक्त विचारधारा से युक्त काव्य रचना करते हैं

फलतः इनके काव्य भी मुक्तक रूप में प्राप्त हैं । जो काव्य उपदेश व नीतिप्रधान हैं वे तो पूर्णतः मुक्तक हैं । प्रबन्धात्मक काव्यों में भी मुक्तक का प्रयोग प्राप्त होता है ।

काव्य का प्रयोजन

कविवर क्षेमेन्द्र की रचनाओं में उपदेश एवं हास्यापदेशपरक काव्यों का प्राधान्य है । वस्तुतः जगत् में हर कार्य के पीछे कोई उद्देश्य अवश्य ही निहित रहता है अर्थात् दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि किस कार्य का सम्पादन उद्देश्यपूर्ण होता है । काव्य-रचना का भी विभिन्न उद्देश्य होता है । विभिन्न कालों में हुए विभिन्न कवि विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु काव्य-रचना में तत्पर हुए हैं । वैसे आचार्य मम्मट ने अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ काव्यप्रकाश में काव्य के उद्देश्य बताये हैं ।[1] काव्य-रचना के प्रयोजन व उद्देश्य के सम्बन्ध में सर्वप्रथम भरत मुनि तृतीय शताब्दी में विचार किया था । उनके कथन[2] के पश्चात् साहित्यिक

---

1. काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
   सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥ काव्यप्रकाशः 1/2.

2. वेदविद्येतिहासानामाख्यानपरिकल्पनम् ।
   विनोदजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति॥

   दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम् ।
   विश्रामजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति ॥ नाट्यशास्त्रम् श्लोक

विवेचना के विकास के साथ ही साथ काव्य के प्रयोजन का भी विशद विवेचन किया गया । भरत मुनि ने तो लोक का मनोरंजन एवं शोकपीड़ित तथा परिश्रान्त जनों को विश्रान्ति प्रदान करना काव्य का प्रयोजन बताया है साथ ही साथ उपदेशकार भी बताया है ।[1] जबकि आलङ्कारिक आचार्य भामह ने सत्काव्य का अनुशीलन धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष नामक पुरुषार्थचतुष्टय एवं कलाओं में निपुणता, यश:प्राप्ति व प्रीति का कारण बताया है ।[2]

आचार्य भामह के पश्चात् रीतिवादी आचार्य वामन ने सत्त्व के दो प्रयोजन-दृष्ट प्रयोजन प्रीति व अदृष्ट प्रयोजन कीर्ति बताया है ।[3] तदनन्तर ध्वनिवादी आचार्य आनन्दवर्धन ने भी प्रीति को ही काव्य का प्रयोजन बताया है ।[4] सिद्धान्त

---

1. अ. हितोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति । नाट्यशास्त्रम् श्लोक ।।3.

   ब. सर्वोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति । वही, श्लोक ।।4.

   स. लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति । वही, श्लोक ।।6.

2. धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च ।
   करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम् ।। काव्यालङ्कार ।/2.

3. काव्यं सद् दृष्टादृष्टार्थंप्रीतिकीर्तिहेतुत्वात् । वही, सूत्रवृत्ति ।/।/5.

4. तेन ब्रूम: सहृदयमन:प्रीतये तत्स्वरूपम् । ध्वन्यालोक: ।/।.

वक्रोक्तिवाद के नवीन सम्प्रदायवाद का उद्घाटन करते हुए आचार्य कुन्तक ने भी काव्य का प्रयोजन प्रीति व आनन्द ही बताया है ।[1]

कविवर क्षेमेन्द्र ने भी पूर्वाचार्यों द्वारा बताये गये काव्य-प्रयोजनों में से ही अपने काव्य-रचना के प्रयोजन को बताया है । वस्तुत: इनकी काव्य-रचना का भी प्रयोजन सहृदयानन्द व उपदेश रहा है । वैसे विभिन्न काव्यों के प्रारम्भ अथवा अन्त में काव्य-रचना के प्रयोजन को भी स्पष्ट इन्होंने किया है । अपनी रचना चतुर्वर्गसङ्ग्रह में कविवर क्षेमेन्द्र ने शिष्योपदेश व मनीषियों की सन्तुष्टि के लिए ही इस काव्य की रचना के प्रयोजन को बताया है ।[2]

दर्पदलनम् में तो क्षेमेन्द्र ने इस ग्रन्थ के प्रयोजन के रूप में अहङ्काराभिभूत प्राणियों के हित को माना है ।[3]

अपने हास्यापदेशप्रधान काव्य 'समयमातृका' में तो कविवर द्वारा इस काव्य का प्रयोजन श्रीमानों के धन की रक्षा बताया गया है ।[4]

---

1. धर्मादिसाधनोपाय: सुकुमारक्रमोदित: ।
   काव्यबन्धोऽभिजातानां हृदयाह्लादकारक: ॥ — वक्रोक्तिजीवित 1/4.
2. उपदेशाय शिष्याणां सन्तोषाय मनीषिणाम् ।
   क्षेमेन्द्रेण निजश्लोकै: क्रियते वर्गसङ्ग्रह: ॥ — चतुर्वर्गसङ्ग्रह: 1/2.
3. अहङ्काराभिभूतानां भूतानामिव देहिनाम् ।
   हिताय दर्पदलनम् क्रियते मोहशान्तये ॥ — दर्पदलनम् 1/5
4. संवत्सरे पञ्चविंशे पौष्शुक्लादिवासरे ।
   श्रीमतां भूतिरक्षायै रचितोऽयं स्मितोत्सव: ॥ — समयमातृका, उपसंहार, श्लोकांक 2.

कविवर ने कलाविलास की रचना तो सतत सज्जनों के मानसानन्द के लिए की है। इन्होंने यह प्रयोजन अपनी इस रचना में स्वतः स्पष्ट किया है।[1]

देशोपदेश नामक रचना वस्तुतः हास्यापदेशप्रधान काव्य है। इसमें कवि ने स्वीकार किया है कि जो दम्भ व माया इत्यादि दोषों में लिप्त हैं तथा लोगों का शोषण करते हैं, उनके सुधार के लिए कोई उपाय नहीं है फिर भी उस पर हास्य व्यङ्ग्य करने के लिए इस ग्रन्थ की रचना का प्रयोजन[2] माना है। हो सकता है ये व्यङ्ग्यात्मक बातें जीवन में सुधार लायें। इन्होंने इस काव्य की रचना में प्रयुक्त हास-परिहास को ही प्रयोजन न मानकर बल्कि दुष्कर्मी के सुधार को माना है।

सेव्यसेवकोपदेश नामक काव्य की भी रचना का प्रयोजन कविवर क्षेमेन्द्र ने सुधीजनों के लिए सदा सुख की प्राप्ति बताया है।[3]

---

1. कलाविलासः क्षेमेन्द्रप्रतिभाम्भोधिनिर्गतः।
   शशीव मानसानन्दं करोतु सततं सताम् ॥ कलाविलास 10/43.

2. ये दम्भमायामयदोषलेशा-
   लिप्ता न मे तान् प्रति कोऽपि यत्नः।
   कित्वेष हासव्यपदेशयुक्त्या
   देशोपदेशः क्रियते मयाद्य ॥ देशोपदेश 1/3.

3. विद्वज्जनाराधनतत्परेण सन्तोषसेवारसनिर्भरेण। सेव्यसेवकोपदेश
   क्षेमेन्द्रनाम्ना सुधियां सदैव सुखाय सेवावसरः कृतोऽयम् ॥ श्लोक 61.

वस्तुतः सज्जनों को सुख व आनन्द देना ही कवि की काव्य-रचना का प्रमुख प्रयोजन रहा है। चारुचर्या नामक शतक काव्य की रचना को वे सज्जनों द्वारा अनुमोदित बताते हैं।[1]

नर्ममाला, जो दिविरादि दुष्कर्मलिप्त लोगों की चरित्र चर्चा से सम्बन्धित काव्य है, का भी प्रयोजन कविवर क्षेमेन्द्र ने सज्जनों का विनोद बताया है तथा परिणाम में सर्वलोकोपदेश माना है।[2]

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्रदत्त विभिन्न काव्य-प्रयोजनों से स्पष्ट है कि उनकी काव्य-रचना का प्रमुख उद्देश्य सुधीजनों व मनीषियों को आनन्द एवं सन्तोष प्रदान करना था। इसके अतिरिक्त सर्वलोकोपदेश की भी दृष्टि से कविवर ने काव्य-प्रणयन किया है।

---------::0::---------

---

1. श्रव्या श्रीव्याससदासेन समासेन सतां मता ।
   क्षेमेन्द्रेण विचार्येयं चारुचर्या प्रकाशिता ॥ चारुचर्या, श्लोक 100.

2. इति दिविरनियोगिग्रामदुश्चेष्टितानां
   कुसृतिचरितचर्या नर्ममाला कृतेयम् ।
   अपिसुजनविनोदायोम्भिता हास्यसिद्ध्यै
   कथयति फलभूतं सर्वलोकोपदेशम् ॥ नर्ममाला, 3/113.

अध्याय - तृतीय

क्षेमेन्द्रकालीन जीवन

कविवर क्षेमेन्द्र के काव्यों पर तत्कालीन मध्ययुगीन जीवन का प्रतिबिम्ब पूर्णत: परिलक्षित होता है । 'साहित्य समाज का दर्पण है' इस उक्ति की सार्थकता को कवि ने भी सिद्ध किया है । वस्तुत: प्रत्येक कवि का काव्य अपने समय की परिस्थितियों से अवश्य प्रभावित होता है । इनके काव्यों से तत्कालीन राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक अवस्थाओं का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है । वैसे कवि का इस प्रकार का कोई प्रयोजन नहीं था, अपितु सभी तथ्यों का ज्ञान हो जाना स्वाभाविक ही था । तत्कालीन समाज में व्याप्त कुरीतियों, अनाचारों एवं कुप्रवृत्तियों की कटु आलोचना सज्जनों को उनसे बचने एवं दुष्टजनों के सुधार हेतु की गयी, जिससे उस समय के विभिन्न वर्गों के लोगों का भोजन, वस्त्र, रहन-सहन तथा व्यवसाय एवं आर्थिक व धार्मिक तथ्यों की जानकारी प्राप्त होती है ।

तत्कालीन समाज की राजनीतिक अवस्था

कविवर क्षेमेन्द्र ने शारदा-देश काश्मीर में उस समय जन्म लिया जब उस पर राजा अनन्त का शासन था । अनन्त के शासन के प्रारम्भिक दिनों में रुद्रपाल और दिद्दापाल नामक दो विस्थापित शाही राजकुमारों का बहुत प्रभाव था । अनन्त में व्यक्तिगत योग्यता और शौर्य का अभाव था तथापि उसने त्रिभुवन नामक अपने ही सेनापति द्वारा संचालित विद्रोह को सफलतापूर्वक दबाया तथा दरद शासक अचमंगल के आक्रमण से काश्मीर की रक्षा की।[1] बाद में उसने अपनी धर्मात्मा रानी सूर्यमती[2] अथवा

---

1. राजतरिङ्गणी सप्तम, पृ0 154-167.
2. सूर्यमती जालंधर की राजकुमारी थी । देखिए -
   Dr. Ganguli, The Struggle for Empire, p. 97.

सुभटा के प्रभाव से अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया और दान आदि भी दिये, किन्तु अत्यधिक व्यय करने और पान खाने की उसकी खर्चीली आदत ने उसे विदेशी व्यापारियों का ऋणी बना दिया। उसे कर्ज देने वालों में परमार राजा भोज का एक व्यापारिक प्रतिनिधि भी था, जिसने कुछ दिनों के लिए अनन्त का मुकुट ही बन्धक रख लिया था। अनन्त का यह दिवालियापन तभी समाप्त हो सका, जब सूर्यमती ने शासन-सूत्र पर कड़ाई से अपना हाथ रखा एवं हलधर नामक प्रधानमन्त्री ने आर्थिक और प्रशासनिक सुधार की अनेक योजनायें लागू कीं। इस अवसर का लाभ उठाकर अनन्त ने आसपास के पहाड़ी प्रदेशों की विजय-योजनायें बनायीं।

चम्पा (छम्ब) के शासन-काल अथवा सालवान को गद्दी से उतारकर अपने नामांकित को उसको गद्दी देना तथा दर्वाभिसार, त्रिगर्त्त और भर्तुल पर अपना आधिपत्य स्वीकृत कराना अनन्त की मुख्य सैनिक उपलब्धियाँ थीं, लेकिन उरशा और बल्लारपुर पर उसके अभियान असफल रहे।[1] विल्हण नामक काश्मीरी कवि[2] ने अपने ग्रन्थ 'विक्रमांकदेवचरित' में चम्पा और दर्वाभिसार पर उसके आधिपत्य का उल्लेख किया है[3], जिसका आंशिक समर्थन कल्हण की राजतरङ्गिणी से भी होता है। अनन्त

---

1. अ. Dr. Ganguly, The Struggle for Empire, pp. 97-98.

   ब. राजतरङ्गिणी सप्तम, पृष्ठ 219 और आगे।

2. ये बाद में कल्याणी के चालुक्य दरबार में रहने लगे थे।

3. बमजाई, हिस्ट्री ऑफ कश्मीर, पृष्ठ 139-140.

ने अपनी रानी सूर्यमती के कहने से 1063 ई0 में अपने पुत्र कलश को राजगद्दी दे दी, लेकिन उसके क्रियाकलापों से असन्तुष्ट होकर उसने 1076 ई0 में पुन: वास्तविक शासन अपने कब्जे में ले लिया । आगे पिता-पुत्र में सौहार्द और सामंजस्य की और भी कमी होती गयी और अनन्त ने ऊबकर 1081 ई0 में आत्महत्या कर ली । इसका कलश पर कुछ सुधारक प्रभाव पड़ा और धीरे-धीरे उसमें उत्तरदायित्व की भावना बढ़ी क्रमश: वह प्रशासन को हर प्रकार से ठीक करने में लग गया । आस-पास के राज्यों ने उसकी अधिसत्ता स्वीकार कर ली । इसका प्रमाण यह है कि 1087-1088 ई0 में पहाड़ी क्षेत्रों के आठ राजे उसकी राजधानी में एक साथ उपस्थित हुए ।[1] उस सभा में पश्चिम में उरशा से लेकर पूर्व में कस्तवत तक के राजा शामिल थे । उनको दी जाने वाली सुख-सुविधा और भव्य स्वागत की चर्चा कल्हण वामन नामक मंत्री की प्रशंसा करते हुए उपस्थित करते हैं ।[2] कलश के पुत्र हर्ष की षडयन्त्री रुझान के कारण उसके अन्तिम दिन दु:खमय बीते और उसे विवश होकर अपने छोटे पुत्र उत्कर्ष को अपना उत्तराधिकारी घोषित करना पड़ा ।[3] किन्तु वह उस पद को सँभाल न सका और एक विद्रोह के फलस्वरूप[4] केवल बयालीस दिनों के शासन के पश्चात् हर्ष द्वारा अपदस्थ कर कारागार में डाल दिया गया, जहाँ उसने आत्महत्या कर ली ।[5]

---

1. राजतरङ्गिणी सप्तम्, पृष्ठ 587-90.
2. वही, पृष्ठ 591-94.
3. वही, पृष्ठ 703-04.
4. बमजाई, हिस्ट्री ऑफ काश्मीर, पृष्ठ 142.
5. राजतरङ्गिणी सप्तम पृष्ठ 742-854 (सम्पूर्ण विवरण)

राजगद्दी के लिए राजाओं के इस प्रकार पारिवारिक कलह के कारण यह स्वाभाविक है कि शासन कमजोर था तथा राजा अनन्त के राज्यकाल में काश्मीर आन्तरिक राजद्रोह से आक्रान्त था । कलश के राज्य में कुचक्र, रक्तपात और यन्त्रणाओं का बोलबाला रहा । कबायली प्राय: काश्मीर पर आक्रमण किया करते थे । कल्हण ने इस काल की निरंकुशता का चित्रण किया है जो सोमदेव के वृत्तान्त में प्राणघातियों, अफीमचियों, गणिकाओं और उद्दण्डों जैसे निम्न कोटि के लोगों के चित्रण द्वारा भी प्रतिबिम्बित होती है । राजा अनन्त व कलश आदि राजाओं के शासनकाल में क्षेमेन्द्र व इनके पूर्वज अमात्य पद पर प्रतिष्ठित थे । कायस्थ वर्ग ही सम्पूर्ण प्रशासनिक पदों पर नियुक्त था । इस वर्ग में न्यायाधीश, अधिकारी व दिविर (क्लर्क) इत्यादि पदों पर रहकर कमजोर शासकों को पाकर राज्य की राजनीतिक स्थिति कमजोर कर दिया था ।

कश्मीर के अधिकांश शासकों की चारित्रिक दुर्बलताओं के शिकार होने के कारण राज कर्मचारी मनमानी करने में तनिक भी चूकते न थे । अर्थ सबको प्रिय होता है किन्तु निरंकुश राजाओं के लिए तो अर्थ ही प्राण होता है । इस अर्थ का प्रधान स्रोत प्रजा से वसूला गया कर था । राजा की अर्थलोलुपता के कारण उनके कर्मचारी प्रजा के लूटने के अनेक तरीके अपनाते थे । वसूले गये धन का अधिकांश भाग कर्मचारियों की जेब में जाता था । ग्रामों को उजाड़कर निर्धन करने वाले, दण्ड-प्रतिरोध करने वाले को मार डालने वाले एवं सर्वस्व लूटने वाले नियोगी ही सार्थक थे।

---

1. नर्ममाला 2/42-43.

उनका तो सिद्धान्त ही था कि गुग्गुल के बीज के समान दबाने पर ही प्रजा तेल देती है ।[1] राजाओं की क्रूरता और लालच से संत्रस्त प्रजा की दुर्दशा से खिन्न क्षेमेन्द्र ने प्रजा के शरण का कोई उपाय न आभासित न होने पर असहाय बताया है ।[2]

तत्कालीन शासन-व्यवस्था में कायस्थ जाति के अधिक कर्मचारी होते थे । फलत: कायस्थ ही कर्मचारियों के द्योतक रूप में हो गये । इनमें गणक, परिपालक, लेखकोपाध्याय, गंजदिविर, नियोगी, दिविर, गृहकृत्य इत्यादि सभी वर्ग के कर्मचारी आ जाते हैं । कायस्थ की महत्त्वाकांक्षा गृहकृत्याधिपति या गृहकृत्यमहत्तम बनने की होती थी । गृहकृत्य का पद सम्भवत: बहुत ही महत्त्वपूर्ण था और उसके अधीन सेना, नागरिक तथा धर्मार्थ विभाग आदि होते थे । उसके अधीन सात नियोगी और आठ अर्दली (भट्टमुरूप) होते थे ।[3] गृहकृत्य धार्मिकता का ढोंग रचकर देवमन्दिर में स्तोत्र पाठ करता था, पर उसका ध्यान सदा लूट-पाट में ही

---

1. सर्वक्लेशापहर्त्रे च चिद्रूपब्रह्मणे नमः ।
   पीडिताः प्रस्रवन्त्येव प्रजा गुग्गुलबीजवत् ॥ नर्ममाला 1/44.

2. खलेन न धनमत्तेन नीचेन न प्रभविष्णुना ।
   पिशुनेन पदस्थेन हा प्रजे क्व गमिष्यसि ॥ देशोपदेश 1/17.

3. नर्ममाला 1/33-37.

रहता था ।[1] राजा का घर-खर्च जिसमें मन्दिरों, ब्राह्मणों, गरीबों को दान, जानवरों को चारा एवं राजकर्मचारियों का वेतन इत्यादि मदें उसके अधिकार में होती थीं । गृहकृत्य से सम्बन्धित निम्नलिखित कर्मचारी होते थे -

निंयोगी

नियोगी शब्द का प्रयोग अधीक्षक अर्थ में किया गया है । गृहकृत्य के अधीन सात नियोगी होते थे ।[2] गृहकृत्य की सभा में वे सभी उपस्थित रहते थे ।[3] शरद् काल में वसूली के समय उन्हें अधिक धन की प्राप्ति होती थी ।[4]

पिशुन

ये गृहकृत्य के अधीन गुप्तचरों का कार्य करते थे । इनका कार्य मन्दिरों इत्यादि में एकत्रित धनराशि की सूचना गृहकृत्य को देना था । एक जगह उसके द्वारा विजयेश्वर, वाराह और मार्तण्ड के मन्दिरों में एकत्रित सम्पत्ति का विवरण बताया गया है और परिचालक द्वारा उसके हरण की युक्ति बतायी गयी है ।[5]

---

1. नर्ममाला 1/39-44
2. वही, 1/35.
3. वही, 1/45.
4. समयमातृका 1/49.
5. नर्ममाला 1/51-54.

परिपालक

यह अधिकारी गृहकृत्य का सहायक होता था । इसका चुनाव सम्भवत: उसकी निष्ठुरता के परीक्षण के बाद होता था । वह अपवादों से न डरने वाला, पातकों से नि:शंक तथा अपनी बुद्धि के बल पर प्रसिद्ध होता था ।[1] ब्रह्महत्या एवं गोहत्या उसके लिए कुछ न थी ।[2] परिपालक बनने पर वह असंख्य प्यादों के साथ अर्थलीला के लिए निकला । उसकी आज्ञा से मन्दिर लूट लिए गये तथा सिपाहियों ने घरों के दरवाजे तोड़कर, बरतन आदि लेकर स्त्री एवं बच्चों को रोते बिलखते छोड़ दिया ।[3]

लेखकोपाध्याय

यह अधिकारी परिपालक का प्रधान लेखक होता था और स्वामी-हित में सदा तत्पर रहता था । उसके पास गोपनीय कागज-पत्र रहते थे । परिपालक को जो भी सामान आवश्यक होता था उसके लिए वह आदेशपत्र जारी करता था । वह हिसाब लिखने में पटु होता था ।[4]

गंजदिविर

यह अधिकारी परिपालक के नीचे अर्थ विभाग का अध्यक्ष होता था । वह परिपालक के समक्ष आय-व्यय सम्बन्धी षट्मासिक विवरण प्रस्तुत करता था ।[5] क्षेमेन्द्र

---

1. नर्ममाला 1/55.
2. वही, 1/57.
3. वही, 1/70
4. नर्ममाला 1/71-81.
5. वही, 1/86.

ने इसे बहुत ही प्रबल बताया है । उसे इस बात का गर्व था कि जिन अधिकारियों ने उसका विरोध किया, उन्हें भाग जाना पड़ा । उसने परिपालन को सलाह दी कि किस तरह मन्दिरों की सम्पत्ति हड़प ली जाय क्योंकि उसे पार्षद खाये जा रहे थे ।[1]

मार्गपति अथवा व्यापारी

यह अधिकारी विषय अथवा परगने का अधिपति होता था । वह ग्रामों की देखभाल, उनके हिसाब का निरीक्षण तथा सड़कों की देखभाल करता था । उसे दीवानी एवं फौजदारी मुकदमों को सुनने का भी अधिकार था । ग्रामों में वह 'लूट लो', 'बाँध दो', 'मार डालो', 'घर उजाड़ दो' इत्यादि कहा करता था । हमेशा बेगार मजदूर उसकी सेवा में लगे रहते थे ।[2]

ग्राम दिविर

इसका कार्य आधुनिक पटवारी अथवा लेखपाल जैसा था । वह जाली-कार्य में निपुण था । वह शराब पीकर देव ब्राह्मणों के नित्यनैमित्तिक का हरण करता हुआ भी शिव-स्तोत्र गाता था । रिश्वत लेने में वह सर्वाधिक निपुण था ।[3]

---

1. नर्ममाला, 1/87-96.

2. वही, 1/122.

3. वही, 1/128-140.

खवाशपति अथवा तृणरक्षक

यह नियोगी का सहायक होता था । नियोगी के नाम एक पत्र से उसके अत्याचारपूर्ण कार्यों का पता चलता है - भेड़ों के बहाने दस गायें पकड़ ली गयीं, जिनमें पाँच मर गयीं और शेष खलिहान में हैं । उनके छुड़ाने वालों को जल्दी करने पर भी तीन दिन लग जायेंगे । वे नहीं आये तो आपका लाभ है क्योंकि उन पर दण्ड लगेगा । घी के कुप्पे के सम्बन्ध में जो ब्राह्मण जेल में बन्द था, वह चल बसा। उसकी स्त्री को बाँधकर मैंने उसके घर पर मुहर लगा दी है, इत्यादि ।[1]

आस्थान दिविर

उसके हाथों में सब कुछ होता था । उसके कान पर चढ़ी कलम और हाथ में भूर्जपत्र का उल्लेख है ।[2] यह नगराचार्य कहा गया है । शराब और वेश्या उसके व्यसन थे, पर दिन में वह स्नान, जप व ध्यान से अपनी पवित्रता प्रकट करता हुआ कार्यालय ॥आस्थान मण्डप॥ जाता था । उसके लेखनी से झड़ती स्याही की बूँदें को कवि ने लुटी पृथ्वी की काजल मिली हुई अश्रु बूँदों सदृश बताया है ।[3]

अधिकरणभट्ट या सात्रिक

इन्हें आस्थानदिविर या पेशकार का साथी कहा गया है । ये शटी ॥साटी॥ और पाश के बल लोगों को अदालत में खींचकर लाते थे । वे खूब रिश्वत

---

1. नर्ममाला 2/98-99.
2. वही, 2/120.
3. वही, 2/116-132.

लेते थे तथा हारने वाले को जिताने तथा जिताने वाले को हराने का कार्य करते थे। जालसाजी ही उनका कार्य था।[1]

नगराधिप नगराधिकृत

इस अधिकारी के कर्त्तव्य आज के शहर कोतवाल सदृश होते थे। चोरी करने के अभियोगी इनके समक्ष प्रस्तुत किये जाते थे।[2] नगर में वेश्याओं को लेकर जो झगड़े व मारपीट होते थे उसकी वह जाँच करता था।[3] वह बराबर नागरिकों के चरित्र-स्खलन पर निगाह रखता था। समय समय पर उसे सैनिक कर्त्तव्य भी पालन करने पड़ते थे।

बन्धनपाल

यह पद आधुनिक जेलर सदृश था। चोरी का माल छिपाने पर सिपाहियों ने कङ्काली को बाँधकर कारागृह में बन्द कर दिया, पर वहाँ उसने बन्धनपाल से मित्रता कर ली और एक दिन जब वह नशे में बेहोश था, उसकी जीभ काटकर तथा अपनी बेड़ियाँ हटाकर वह भाग गयी।[4] इस तरह के काले कारनामे उसकी भ्रष्टता के द्योतक हैं।

---

1. नर्ममाला, 2/133-45
2. समयमातृका, 1/16.
3. वही, 8/122-123.
4. वही, 2/48-51.

अश्वशालादिविर

यह अधिकारी घुड़साल का प्रबन्ध करता था । यह भी दिन भर लोगों का शोषण करता था तथा रात भर सोता था ।[1]

प्रासादपाल

यह भी देवमन्दिरों का कोई अधिकारी ही था जिसके द्वारा मन्दिर का प्रबन्धकार्य होता था । ऐसे ही एक प्रासादपाल को मन्दिर के गर्भगृह में घुसाकर लूट लिये जाने का उल्लेख है ।[2] एक अधिकरणभट्ट का पहले ग्राम गणेश मन्दिर के प्रासाद पाल होने का उल्लेख मिलता है ।[3]

सस्यपाल

इस अधिकारी के कर्त्तव्यों का विवरण तो नहीं मिलता है किन्तु नाम से स्पष्ट होता है कि यह फसलों के रक्षक या अधिकारी के रूप में रहा होगा । इसका उल्लेख नर्ममाला में मिलता है ।[4]

दूत

दूत वस्तुतः हरकारे के रूप में थे । एक दूत के अनेक बार द्रंगदेश आने जाने का उल्लेख मिलता है । वह भट्ट बन गया था ।[5] उसकी बंधी कमर, फटा कंबल

---

1. समयमातृका 2/37-39.
2. वही, 2/19.
3. वही, 2/143.
4. नर्ममाला 2/142.
5. वही, 2/143-144.

और धूल-धूसरित पैर उसके मामूली पद के द्योतक थे ।[1] दूत को धावक भी कहते थे।[2]

गणनापति

ये भी सम्भवतः आँकड़ों आदि का विवरण रखते थे अथवा गणना आदि से सम्बन्धित अधिकारी थे ।[3] इनके बारे में कोई विशेष विवरण नहीं प्राप्त है ।

शौल्किक

ये शुल्क आदि से सम्बन्धित अधिकारी थे । चुंगीघरों में ये चुंगी अधिकारी के रूप में रहते थे । इनका भी वेश्या द्वारा मोहित होना दिखाया गया है ।[3]

अदालत (न्यायालय)

अदालती कागजों या पत्रों के सम्बन्ध में अनेक शब्द प्रयुक्त हैं । धन धारण पत्रिका[4], जो सम्भवतः भरण-पोषण से सम्बन्धित पत्र था । उज्जासपत्रिका[5], यह भी धन एवं वस्तुओं का पूरा विवरण एवं वसूल करने वाले के नाम सहित होती थी । अधिकरणपत्र[6], जो आजकल के स्टाम्प की तरह होता था । इसके अतिरिक्त विजयपत्र आदि का उल्लेख मिलता है ।

---

1. नर्ममाला 2/92-93.
2. वही, 2/117-120.
3. समयमातृका 2/102.
4. वही, 8/95.
5. वही, 8/96.
6. नर्ममाला, 2/137.

डामर

कश्मीर के राजनीतिक इतिहास में डामरों, जिन्हें सामन्त कहा जाता था, का विशेष स्थान था । जब भी राजा की शक्ति क्षीण पड़ जाती थी, डामर बगावत कर बैठते थे और उन्हें दबाने के लिए पर्याप्त शक्ति लगानी पड़ती थी । ये कश्मीर में सर्वत्र थे । कङ्कालो का डामर समरसिंह, जो प्रतापपुर का निवासी था, का रखैल बनना दिखाया गया है ।[1]

उपर्युक्त कर्मचारियों व अधिकारियों के अनधिकारपूर्ण, अत्याचारपूर्ण एवं भ्रष्ट तरीकों के विवरण से स्पष्ट है कि प्रजा संत्रस्त थी । वैसे शासन-तन्त्र के ढाँचे का निर्माण आधुनिक तरीके से हुआ, किन्तु उसका सही संचालन व क्रियान्वयन न होने के कारण प्रजा अधिकारियों के शोषण का शिकार होती थी ।

क्षेमेन्द्रकालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवस्था

क्षेमेन्द्रकालीन सामाजिक व्यवस्था, रीति-रिवाजों के साथ-साथ रहन-सहन भोजन, वेश-भूषा, व्यवसाय, शिक्षा एवं मनोरंजन आदि की परम्परायें प्रतिबिम्बित हुई हैं । कविवर क्षेमेन्द्र के वर्णनों से भारतीय जीवन का पूर्ण चित्र तो नहीं स्पष्ट होता, किन्तु उस पर आंशिक प्रकाश अवश्य पड़ता है । तत्कालीन सामाजिक दशा का चित्रण करते हुए कविवर क्षेमेन्द्र ने उसके ऐसे पहलुओं पर प्रकाश डाला है जिनसे तत्कालीन चारित्रिक पतन पर प्रकाश पड़ता है । वेश्यायें समाज की दूषिका के रूप

---

1. समयमातृका 2/21.

में प्रमुखतया वर्णित हैं । कवि ने समाज के सभी दूषित पक्षों की तथा लोगों की चारित्रिक दुर्बलताओं पर तीखे शब्दों में भर्त्सना की है । सामाजिक विषमता विद्यमान थी । कोई बहुत धनी तो कोई बहुत निर्धन - इस प्रकार समाज में आर्थिक दृष्टिकोण से ही नहीं, अपितु जाति, धर्म एवं व्यवसाय के आधार पर भी एक दूसरे के बीच में पर्याप्त दूरी थी । इस प्रकार की विषमता सभी क्षेत्रों में मिलती है । इनके काव्यों के आधार पर तत्कालीन व्यवसाय, निवास, खाद्य-वस्तुयें एवं शिक्षा आदि का उल्लेख निम्नलिखित है -

1. <u>व्यवसाय</u>

कवि द्वारा विभिन्न व्यवसायों के दूषित पक्षों पर किये गये प्रहार से तत्कालीन कुछ व्यवसायों के उल्लेख प्राप्त होते हैं । उन्होंने व्यापारियों के चरित्र का मुख्य दोष लालच बताया है जिससे वे कार्याकार्य की ओर ध्यान नहीं देते थे । व्यवसायी विभिन्न प्रकार के वस्त्र (नवांशुक), कस्तूरी, चन्दन, कर्पूर एवं मिर्च आदि से पर्याप्त लाभ उठाते थे ।[1] इससे इन वस्तुओं से सम्बन्धित व्यवसायों का उल्लेख मिलता है । कश्मीर में केसर के व्यापार का भी उल्लेख मिलता है । कङ्काली ने ऐसे ही एक व्यापारी को लूटा था ।[2] स्वर्णकारों का भी उल्लेख मिलता है, जिसके विभिन्न कपटपूर्ण उपायों से लोगों की सम्पत्ति का हरण करते थे । वैद्य भी कपटपूर्ण कार्यों के कारण कवि द्वारा व्यङ्ग्य का पात्र बना है । दवा-विक्रेता का भी उल्लेख

---

1. कलाविलास 2/23.
2. समयमातृका 2/8.

प्राप्त होता है, जो स्वयं गंजा सिर वाला होकर गञ्जेपन की अचूक दवा बेचने का कार्य करता है ।

समयमातृका में और व्यवसायों के नामोल्लेख है । कङ्काली मुकुलिका नाम से देवताओं के लिए धूप, दीप और नैवेद्य बेचती है ।[1] उद्यानपाल एवं पौष्पिक पुष्प इत्यादि का विक्रय करते थे ।[2] कङ्काली द्वारा कल्यपाली (कलवारिन) के रूप में शराब बेचने का कार्य किया गया ।[3] वेश्याओं के यहाँ भी छोटे व्यवसायियों की भीड़ लगी रहती थी । इनमें शांखिक[4], कल्यपाल[5], गायक[6], सूपकार, कुम्भकार, छत्रधर, युग्यवाहक (एक्कावान)[7], आरमिक, नाविक[8], चर्मकृत् एवं धावक[9] इत्यादि हैं । देशोपदेश में भी नापित, चर्मकार, धीवर व सैनिक आदि का उल्लेख प्राप्त होता है ।[10]

---

1. समयमातृका 2/81.
2. वही, 7/40.
3. वही, 2/88.
4. वही, 7/32.
5. वही, 7/34.
6. वही, 7/37.
7. वही, 7/38.
8. वही, 7/39.
9. वही, 7/40.
10. नापितश्चर्मकारो वा धीवरः सैनिकोऽपि वा ।
    स्वदेशे दैशिको नूनं सन्ध्यापाठं न वेत्ति यत् ॥ देशोपदेश 6/29.

इस प्रकार अनेक व्यवसायियों का वर्णन प्राप्त होता है, जो वस्तुतः अपने दूषित कर्मों के कारण क्षेमेन्द्र द्वारा कटु आलोचना के पात्र हैं । कवि का उद्देश्य व्यवसायों का वर्णन करना नहीं था, अपितु व्यापारियों द्वारा किये जा रहे भ्रष्ट एवं कपटपूर्ण कार्यों की तीखी आलोचना कर उन्हें अपनी त्रुटियों की अनुभूति कराना था ।

रहन-सहन

क्षेमेन्द्र के काव्यों में कहीं-कहीं तत्कालीन आवास एवं उसमें निर्मित आँगनादि का उल्लेख मिलता है । इस क्षेत्र में भी विषमता थी । कहीं-कहीं पक्के मकान व कहीं झोंपड़ी का उल्लेख मिलता है । आस्थानी आजकल की बैठक की तरह होती थी जहाँ खाने-पीने के बाद लोग मित्र मण्डली के साथ बैठते थे ।[1] चूने से रंगा हुआ आँगन और सिन्दूर से रंगा भीतरी कमरा (उदरमन्दिर) गृहस्वामी के ऐश्वर्य का द्योतक था ।[2] स्नानादि के लिए अलग व्यवस्था होती थी, जिसके लिए स्नान कोष्ठक[3] शब्द प्रयुक्त है । गन्दे एवं रस्सी से बँधा टूटे हुए दरवाजे वाला घर दरिद्रता की निशानी माना जाता था ।[4]

---

1. कलाविलास, 1/11.
2. नर्ममाला 1/106.
3. समयमातृका 2/38.
4. नर्ममाला, 1/98-99.

<u>वेष-भूषा</u>

वेष-भूषा के सम्बन्ध में कविवर के काव्यों में वर्णित प्रसङ्गों से पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है । कवि के द्वारा कृपण, विट, विद्यार्थी, कायस्थ, वेश्या, स्त्री आदि के व्यङ्ग्यपूर्ण वर्णनों से वेष-भूषा का लगभग पूर्णतया ज्ञान होता है ।

समयमातृका में एक कृपण की वेषभूषा का चित्रण किया गया है । उसकी टोपी [टुप्पिका] चूहे से कुतरी एवं बेढंगी थी । उसने फटे ऊनी चादर [उर्णा प्रावरण] के साथ ही दूर तक लटकने वाले मोटे कुर्ते को पहन रखा था । उसके चौड़े ढीले धूमिल और फटे मोजों या जूतों से उसकी जाँघें एवं घुटने खुले रह जाते थे ।[1] इसी कृपण का पुत्र सुन्दर एवं कीमती वस्त्रों को धारण करता है ।[2] वह कानों में बड़े मोतियों की बालियाँ, सोने की जंजीर में चार सोने से मढ़े जन्तर [हेम-रक्षा] थे, उसके बालों में राजावर्त से सजे कड़े [कटक] थे । वह बड़ी किनारों वाली [दीर्घाञ्चल-दशां] पटी को सँभाल रहा था ।

देशोपदेश में एक विट की वेश-भूषा का चित्रण है । उसके हाथों में सूई एवं धागा थे । वह गर्मी में मोटे वस्त्र और जाड़े में मलमल पहनता था । उसके पिङ्ग [पजामे] पर वेश्याओं के हाथ के केसरिया रङ्ग लगा था ।[3]

---

1. समयमातृका 8/54-56.

2. वही, 7/14-17.

3. देशोपदेश 5/13.

निर्गुंट भी विटों की भाँति चरित्रहीन किन्तु वेषभूषा में समाज के प्रतिष्ठित लोगों की नकल करता था । उसकी सफेद पगड़ी हल्दी से रंगी होती थी और उसके भद्दे मोजों के सूत निकले होते थे ।[1]

गौड देश के विद्यार्थियों के दम्भपूर्ण वर्णन से ज्ञात होता है कि वे छुआछूत के भय से अपने कपड़े का आंचल बगल में दबाकर चलते थे ।[2] वे नक्कासीदार वस्त्र[3] एवं पगड़ी[4] पहनते थे ।

कायस्थों की वेषभूषा के सुन्दर चित्र खींचे गये हैं । नियोगी छोटे टुकड़ों से निर्मित टोपी, जो किनारों पर ऊँची थी, पहने था ।[5] वह नीले रंग का अङ्गरक्षक पहनता था तथा फटी पुरानी धोती, का आँचल बगल दबाये रहता था । उसके पुराने जूते थे, वे भी माँगे हुए थे ।[6] मार्गपति की व्यवस्था में स्नानशाटिका, पाजामा (संपुटी), टोपी (टुप्पिका), योगपट्ट, धुले हुए सफेद कपड़े[7] और मयूरोपानह[8] के उल्लेख हैं । ग्राम दिविर भी पाजामा पहनता था ।[9] पगड़ी के लिए

---

1. नर्ममाला 10/37.
2. देशोपदेश 6/9.
3. वही, 6/10.
4. वही, 6/20.
5. नर्ममाला, 1/47.
6. वही, 1/72-73.
7. वही, 1/110-112.
8. वही, 1/137.

उन्नत-शिखर-वेष्टन[1] शब्द प्रयुक्त है ।

कविवर क्षेमेन्द्र के काव्यों से स्त्रियों की वेशभूषा पर भी थोड़ा प्रकाश पड़ता है । समयमातृका में कङ्काली समय के अनुसार तरह-तरह के कपड़े पहनती थी । वह अपनी किशोरावस्था में कञ्चुक पहनती थी जो स्तनों के ऊपर पहना जाता था ।[2] युवती होने पर उसकी ओढ़नी नाक तक पहुँचती थी ।[3] योगिनी के रूप उसने अपने अङ्गों में भस्म पोता, आँखों में काजल लगाया, गले में स्फटिक की माला पहनी तथा कञ्चुक से अपनी भुजायें एवं स्तन ढके ।[4] धाय के रूप में उसने मूँगे की माला, कुण्डल और बाजूबन्द पहने तथा एक मोटा कम्बल ओढ़ा, जो नितम्बों से होकर एड़ी तक पहुँचता था ।[5] एक मजदूरिन के रूप में वह अपनी मोटी कमर रस्सी से बाँधकर काम पर जाती थी ।[6] ऊँचे पहाड़ों पर वह वस्त्रों से अपना मुख और एक मोटे कम्बल से अपना शरीर ढक लेती थी ।[7] कुलटा शरीर पर सुगन्धित द्रव्य मलकर, कञ्चुक एक तरफ रखकर अपना घूँघट आधा कर देती थी ।[8]

---

1. कलाविलास, 1/63.
2. समयमातृका, 2/10.
3. वही, 2/54.
4. वही, 2/59.
5. वही, 8/70.
6. वही, 2/91.
7. वही, 2/93.
8. नर्ममाला, 2/3.

क्षेमेन्द्र के काव्यों में स्त्रियों, विशेषत. वेश्याओं के श्रृंगार सम्बन्धित अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं । श्रृंगार में कर्पूर और चन्दन का विशेष स्थान था ।[1] ललाट पर नीलतिलक सुशोभित था ।[2] श्री खण्डोज्ज्वलमल्लिकातिलक[3] का भी उल्लेख है । प्रसाधन के समय अगर धूप जलायी जाती थी ।[4] वेश्याओं के प्रसाधन में मोती के गहने और माला से सजा जूड़ा होता था जिन्हें वे दर्पण में देखती थीं । उनके हाथ में पान का बीड़ा भी होता था ।[5] वेश्या के श्रृंगार में कपोलों पर कस्तूरी का स्फुट और कुटिल पत्राङ्कुर, ललाट,पर कस्तूरी का तिलक तथा शरीर पर केसर के लेप का उल्लेख है । कभी कभी पुरुष भी रङ्ग से अपने नख रंगते थे ।[6] बाल धोने के लिए त्रिफला प्रयुक्त होता था ।[7] स्त्री एवं पुरुष दोनों अपने बालों में खिजाब लगाते थे । बूढ़ी कङ्काली का खिजाब लगाकर युवती सी लगने का उल्लेख है ।[8] वृद्धावस्था में वेश्यायें इसे लगाया करती थीं ।[9] खिजाब (कृच्छानुरञ्जक) केवल सात दिनों तक स्थायी रहता है ।[10] रङ्ग से केश काले करने का उल्लेख है ।[11] उस समय आभूषणों

---

1. समयमातृका 1/14, 3/23.
2. वही, 2/106.
3. वही, 6/28.
4. वही, 2/5.
5. वही, 6/4-6.
6. देशोपदेश 6/9.
7. वही, 7/47.
8. समयमातृका 2/44.
9. देशोपदेश 3/31.
10. समयमातृका 5/43.
11. वही, 6/25.

का भी पर्याप्त प्रयोग होता था । कवि ने इन आभरणों का प्रयोग कई प्रसङ्गों में किया है । वेश्याओं के आभूषणों में मेखला[1] का विशेष स्थान था । नूपुर वेश्याओं को विशेष रूप से प्रिय था ।[2] स्त्रियाँ शङ्खलतिका तथा विद्रुममाला पहनती थीं ।[3] शङ्खलतिका शङ्ख का बना हार होता था । सोने की बाली पहनी जाती थी ।[4] उसके कण्ठ में विद्रुममाला एवं श्रवणों में रजतनिर्मित दो कर्णाभूषण शोभा पाते थे ।[5] गले में स्वर्णजञ्जीर, जिसे हेमसूतिका कहा गया है, पहना जाता था ।[6] पुरुषों के आभूषण में कान के कुण्डल, कण्ठाभरण में हेमरक्षा तथा राजावर्त से सजे कड़े होते थे ।[7]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उस समय भी लोगों के लिए वेष भूषा, आभूषण एवं अन्य श्रृंगारिक वस्तुओं का प्रमुख स्थान था । वेश्यायें विशेष श्रृंगार करती थीं । कुलटा स्त्रियाँ भी वेश्यासदृश श्रृंगार में शौक रखती थीं किन्तु कुलीन स्त्रियाँ अलङ्कृत वस्त्र व जो रेशम आदि के बने होते थे, पहनती थीं तथा स्वर्णनिर्मित आभूषण धारण करती थीं । पुरुष भी आभूषण धारण करते थे । ये घूँघट भी करती

---

1. समयमातृका 1/14, 3/37.
2. वही, 3/13.
3. वही, 2/67.
4. वही, 2/11, देशोपदेश 6/29.
5. समयमातृका, 2/70.
6. वही, 2/73.
7. वही, 7/15.

थीं । घूँघट[1] का उल्लेख प्राप्त होता है । अशर्फी रत्न[2], स्फटिक, मुक्ताहार[3], मोती से जड़ी हुई सोने की बालियाँ[4] तथा मणि आदि बहुमूल्य रत्नों के उल्लेख प्राप्त होते हैं । मणि के भेद भी होते थे । राजावर्त नामक मणि का उल्लेख प्राप्त होता है ।[5] रेशम का प्रयोग कई स्थानों पर प्राप्त होता है ।[6] नक्काशी आदि के कार्यों का उल्लेख मिलता है ।[7] आज भी कश्मीर में शाल के बुनाई की यही प्रक्रिया है ।

अनेक गृहस्थी के वस्तुओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है । कड़छुल (दर्वी), कालीन (पटलिका), बर्तन (भाण्ड), दौरी या डलिया (करंडिका) आदि की जानकारी मिलती है ।[8] कायस्थ के साथ चलने वाले सामान में बाँस की पेटियाँ (करंड) चारपायी, पीकदान, ताम्रपात्र, जूते, बस्ते, दावात (मसीभाण्ड), दर्पण, स्नानशाटिका, पादुका, टोपियाँ, मन्त्रपुस्तिका, पंचांग, लाल कम्बल, पवित्रसूत्रक, सूची, तन्त्री, कलम बनाने के लिए चाकू, लाख भरी रक्षा, धुरी, योगपट्ट एवं गंगा की मिट्टी इत्यादि होते थे ।[9]

---

1. समयमातृका, 2/51.
2. वही, 2/65.
3. वही, 4/56.
4. वही, 7/14.
5. वही, 7/16.
6. वही, 6/16.
7. नर्ममाला 2/45.
8. वही, 1/80.
9. वही, 2/108-112.

भोजन [खान-पान]

कविवर के लघु काव्यों के अध्ययन से तत्कालीन विभिन्न स्तर के लोगों के विभिन्न खाद्य एवं पेय वस्तुओं के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है। समाज में शाकाहारी एवं मांसाहारी दोनों प्रकृति के लोग थे। उन्हें भोजन के त्रिविध सात्त्विक, राजस एवं तामस भेदों का ज्ञान था। वेश्याप्रसङ्ग में राजसी भोजन का उल्लेख मिलता है।[1] मछली का जूस, घी, दूध, लहसुन एवं प्याज इत्यादि पदार्थ कई स्थानों पर उल्लिखित हैं।[2] मत्स्य, पूप और मधु लोगों का प्रिय भोजन था।[3] भाण्डा निर्धनों का भोजन था।[4] मण्डूक खाने का उल्लेख समयमातृका में मिलता है।[5] मोदक, खीर एवं दही का भी उल्लेख है।[6] इसके अतिरिक्त कच्चा शाक[7] कूष्माण्ड या कुम्हड़ा[8], जौ[9], चावल[10], लाजा [लावा][11] आदि के उल्लेख विभिन्न

---

1. समयमातृका 1/29.
2. वही, 2/26, देशोपदेश 3/32.
3. वही, 2/49.
4. देशोपदेश 5/20.
5. समयमातृका 1/9.
6. नर्ममाला 3/7.
7. दर्पदलनम् 2/45.
8. समयमातृका 2/62.
9. दर्पदलनम् 6/39.
10. समयमातृका 2/72.
11. दर्पदलनम् 2/35.

प्रसङ्गों में प्राप्त होते हैं । निर्धन वर्ग लाजा एवं सत्तू आदि का प्रयोग करता था । सत्तू का भी उल्लेख प्राप्त होता है ।[1] भोजन में नमक के प्रयोग का भी लेख है ।[2]

ताम्बूल का भी प्रयोग बहुतायत से होता था । ताम्बूल का कई प्रसङ्गों में प्रयोग हुआ है ।[3] यह विलासिता की भी वस्तु मानी जाती थी ।

सुरापान निन्दनीय होते हुए भी शराब पीने की प्रथा समाज में प्रचलित थी अनेक वर्ग के लोग मद्याभिषप्रिय थे ।[4] शराबी के विकृत रूप का बहुत ही घृणास्पद वर्णन है । वह नंगा होकर नाचता था तथा स्वमूत्र पीने में भी संकोच न करता था।[5] शराब रंगीन भी बनायी जाती थी । लाल रंग की शराब का उल्लेख प्राप्त होता है ।[6] कस्तूरिका मधु का प्रयोग धनी वर्ग करता था ।[7]

मदिरापान, वेश्यागमन इत्यादि दुर्व्यसनों के साथ द्यूतक्रीडा का भी नाम आ जाता है । इसमें हारकर लोग नंगे बन जाते थे ।[8] जुआड़ी अपनी जीत के लिए

---

1. दर्पदलनम् 6/40.
2. वही, 2/14.
3. देशोपदेश 5/15, समयमातृका 4/38, 7/28, 7/39.
4. नर्ममाला 2/67.
5. कलाविलास, 6/20.
6. नर्ममाला, 2/63.
7. वही, 1/48.
8. कलाविलास 7/11.

श्वेतार्क गणपति की पूजा करते थे और मछली, सिन्दूर आदि लेकर गुरु के पास जाते थे ।[1] धूर्त जुआड़ी पासा फेंकने के तरीकों, गणना करने एवं हस्तलाघव में निपुण होते थे । कङ्काली द्वारा द्यूतशाला के सामने पासे (कपटाक्षशलाका) के विक्रय किये जाने का उल्लेख है ।[2]

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि उस समय समाज में आधुनिक समय की भाँति ही गुणावगुण का मिश्रण था, किन्तु गुणों की अपेक्षा अवगुणी लोगों की प्रतिशतता कहीं बहुत अधिक थी । वस्त्राभूषण, श्रृंगारिक वस्तुयें, भोजन, खान-पान व अन्य भोग-विलासिता की वस्तुयें तथा अन्य सामाजिक पहलू के अंगों की जानकारी उस समय भी आज की ही भाँति थी । समाज में धनी, व्यवसायी, प्रतिष्ठित, उच्च पदप्राप्त लोग एवं वेश्यादि बहुत भोग-विलासिता से युक्त जीवन-यापन करते थे तथा समाज का सज्जन एवं साधारण प्रजादि इन भोग्य वस्तुओं से वंचित रहते हुए उल्टे इनके शोषण के शिकार भी होते थे ।

तत्कालीन सांस्कृतिक पहलू पर विचार करने पर भी स्पष्ट होता है कि वर्ण-व्यवस्था विद्यमान थी तथा यह व्यवस्था पैतृक-परम्परा से संक्रान्त होती रही है

---

1. देशोपदेश 8/23.

2. समयमातृका 2/80.

साथ ही साथ कुलीनता भी पैतृक परम्परा से ही जानी जाती थी ।[1] यद्यपि उत्तम कर्मों द्वारा क्षेत्रज भी समाज में सम्मान के पात्र थे । उस काल में सम्पत्ति का संक्रमण भी पैतृक परम्परा के ही अनुसार होता रहा है ।[2]

कविवर क्षेमेन्द्र रचित नीतिकल्पतरु में हम अन्य परम्पराओं का भी सङ्केत पाते हैं जैसे - जामाता का श्वसुरगृह में सम्मान, जघन्य अपराधों के समय अंगच्छेदन करने वाले का प्राणहरण, मृतक श्राद्ध में ब्राह्मणों का भोजन तथा ब्राह्मण भोजन में मिष्ठान्न का प्राधान्य आदि ।[3]

स्त्रियों का भी समाज में प्रमुख स्थान था । स्त्रियों में भी विभिन्न उत्सवों के मनाने की परम्परा थी । वे रजस्वलोत्सव मनाती थीं ।[4] शिशु-जन्म के

---

1. अ. एकश्चेत्पूर्वपुरुषः कुले यज्वा बहुश्रुतः ।
   अपरपापकृन्मूर्खः कुलं कस्यानुवर्तताम् ॥ दर्पदलनम् 1/9.

   ब. रौद्रः शूद्रेण जातोऽयम् । वही, 1/54.

   स. एक बीजप्रजातानां भवत्यवनतं शिरः । वही, 1/56.

2. तत्सूनोश्चन्दनस्याथ श्राद्धार्थेनापि भूयसा ।
   बभूव भूरि संभारभोगव्यय-महोत्सवः ॥ वही, 2/73.

3. नीतिकल्पतरु श्लोक 25-26.

4. देशोपदेश 7/16.

समय भी उत्सव मनाया जाता था तथा बच्चो के जन्म-दिन पर प्रतिवर्ष उत्सव मनाने की परम्परा थी ।[1] जन्म के पश्चात् छठा दिन महत्त्वपूर्ण माना जाता था । इस दिन स्त्रियाँ छठी जागरण करती थीं तथा बच्चों का चूड़ाकरण संस्कार भी होता था ।[2] संस्कारों का हिन्दू-समाज में बहुत ही अच्छा प्रभाव था । विवाहादिक शुभ कर्मों में शुभ मुहूर्त्त का विचार किया जाता था । बाल-विवाह के भी प्रचलन का उल्लेख प्राप्त होता है ।[3] लोगों में संस्कारों के प्रति गहन प्रभाव होने के कारण सभी जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त प्रचलित संस्कारों का पालन अनिवार्य रूप से करते थे । मृतकोद्धार हेतु लोग मृतक कर्म भी करते थे तथा मृतकभोजन[4] का भी आयोजन किया जाता था, जिसमें ब्राह्मणों को विशेष रूप से भोजन कराया जाता था । इसके अतिरिक्त पितरों के उद्धार हेतु पितृ-दिन[5] पर श्राद्धकर्म[6] किये जाते थे ।

तत्कालीन कश्मीर में शल्य-चिकित्सा का भार नापितों पर होता था । क्षेमेन्द्र ने उनकी चिकित्सा की हँसी उड़ायी है । वह दुर्लेपों से छोटे फोड़े को थाली

---

1. देशोपदेश 3/29.
2. समयमातृका 8/119-120.
3. कलाविलास 2/18.
4. नर्ममाला 3/37.
5. देशोपदेश 2/17.
6. दर्पदलन 2/84.

बराबर कर देता था । नाक जोड़ने के लिए वह सिलने का कार्य करता था ।[1] आधुनिक प्लास्टिक सर्जरी का यह एक बहुत पुराना उल्लेख है । क्षेमेन्द्र के काव्यों में अनेक रोगों के नाम आये हैं । त्रिदोष से रोगी अपनी चेतना खो देता था ।[2] छोटे बच्चों के ज्वर आने पर धाय को उपवास कराने के विधान का उल्लेख है । इसमें धाय को बचाकर पानी पीने, अन्न न खाने और आँवला का रस पीने की व्यवस्था थी ।[3] रक्त-छाया, पाण्डूमुख, प्रसवों से कृशता[4] अधिक खाने से विषूचिका,[5] अतिसार, शोथ[6] इत्यादि रोगों के उल्लेख मिलते हैं ।

संस्कृति का प्रमुख आधार शिक्षा का तत्कालीन स्वरूप भी जान लेना अपेक्षित है । कविवर क्षेमेन्द्र के काव्यों से तत्कालीन शिक्षा पर भी कुछ प्रकाश पड़ता है । उस समय के मठ ही शिक्षा के केन्द्र हो गये थे । कश्मीर और वाराणसी में अनेक मठ थे जिसमें विद्यार्थियों के पठन-पाठन का प्रबन्ध रहता था । सम्भवतः देश-विदेश के छात्र कश्मीर में शिक्षा के लिए आते थे । क्षेमेन्द्र ने इन देशी छात्रों (मठ-देशिक) की चरित्रहीनता पर पर्याप्त प्रकाश डाला है । तत्कालीन छात्रों की दशा

---

1. समयमातृका 4/16.
2. वही, 1/30.
3. वही, 2/72.
4. देशोपदेश 3/38.
5. वही, 4/23.
6. वही, 4/28.

शोचनीय थी । वे वेश्यालयों में मरने मारने को तैयार रहते थे ।[1] छात्रों की अंगुलियाँ नचाने का गर्व होता था ।[2] गौड छात्र की कटु आलोचना करते हुए कवि ने कहा है कि वह मांस, मदिरा, द्यूत एवं वेश्या के ही चिन्तन में हमेशा रहता था । छुआछूत का दम्भ करने वाला वह वेश्या का उच्छिष्ट भोजन ग्रहण करने में संकोच नहीं करता था । व्रत का पारण वह मद्यमांस से करता था ।[3] नर्ममाला में भी विदेशी छात्रों की मूर्खता एवं चरित्रहीनता की बहुत हँसी उड़ायी गयी है । मठदैशिक चन्दन का लम्बा तिलक लगाता है, बड़ा जूड़ा बाँधता है और चरमराते जूते पहनता है । संयोगवश वह नियोगी के यहाँ लड़कों को पढ़ाने के लिए मासिक वेतन पर शिक्षक बन बैठा तथा उस घर की स्त्रियों को भी बिगाड़ दिया तथा छात्रों के द्वारा कुछ पूछने पर उन्हें गाली देता ।[4] उस समय की सामूहिक शिक्षा दिये जाने का उल्लेख प्राप्त होता था ।[5] उस काल की ज्योतिष एवं वैद्यक शास्त्रों से सम्बन्धित भी शिक्षा दिये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है । ज्योतिषशास्त्रविदों का भी उल्लेख है, जो आकाशीय नक्षत्रज्ञान से भलीभाँति परिचित थे ।[6] क्षेमेन्द्र ने ज्योतिष-सम्बन्धी ज्ञान

---

1. समयमातृका 3/15.
2. कलाविलास 6/31.
3. देशोपदेश छठा उपदेश
4. नर्ममाला 2/33-45.
5. समयमातृका 8/119-120.
6. नर्ममाला 2/81

प्रदान करने वाली संग्रहपत्रिका एवं नक्षत्रपत्रिका[1] का भी उल्लेख किया है ।

कला के भी क्षेत्र में तत्कालीन कश्मीर की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है । संस्कृत नाटकों और काव्य-साहित्य में अनेक ऐसे स्थल हैं जिनसे भारतीयों की संगीत-शास्त्र के प्रति आस्था तथा गायनाचार्यों की अपनी कला में दक्षता का पता चलता है किन्तु विभिन्न कलाओं से युक्त विभिन्न वर्ग के लोग दुष्कर्मों में लिप्त होकर भोग-विलासिता से युक्त होकर कला का दुरूपयोग करते थे । क्षेमेन्द्र इन गायकादि से प्रसन्न न थे । कलाविलास के सातवें सर्ग में क्षेमेन्द्र ने गायकों की हँसी उड़ायी है । वे अपने चिकने गले से लोगों को ठगते हैं । आठवें सर्ग में स्वर्णकारों की कलाओं का विस्तृत वर्णन किया है और इस सम्बन्ध में उन्होंने उनके स्वर्ण-हरण, माप-तौल में कम-ज्यादा, तुला, फूत्कार, अग्निपाक इत्यादि का वर्णन किया है । समयमातृका के पंचम समय में कवि ने नवीन ढंग से राग-परीक्षा का वर्णन किया है । रागों का विभाग उन्होंने रंग, धातुओं, प्रकृति, नक्षत्र, मनुष्य-अवयव, पशु-पक्षी, यक्ष-राक्षस, रोग इत्यादि के आधार पर किया है । कलाविलास के पंचम सर्ग में कायस्थों के विभिन्न समाज-शोषक कलाओं का वर्णन किया गया है । गायकों का एक सुर से गाना कुस्थान में लक्ष्मी के रोने की भाँति बताया गया है ।[2] म्लेच्छ गायकों से वेश्यायें फीस लेने में डरती थीं ।[3] देशोपदेश में एक शिष्य की हँसी उड़ायी गयी है,

---

1. नर्ममाला 1/111.
2. कलाविलास 7/126.
3. समयमातृका 3/26.

जो कन्धे पर तुम्बवीणा लेकर अपने घर्घर गीतों से, आये हुए देवता को भी भगा देता है ।[1] कलाविलास में क्षेमेन्द्र ने अपने ढंग से वेश्याओं की चौंसठ कलायें गिनायी हैं, जिनमें वेश-व्यवहार, गीत, नृत्य, वक्रवीक्षण आदि हैं ।[2] इन कलाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वेश्याओं की कलायें उनकी मानसिक विचारधारा और कामी को ठगने की द्योतक हैं । वास्तविक कलाओं में तो केवल प्रसाधन, काम परिज्ञान, अभ्यंग, वश्यौषधियों का ज्ञान, वृक्षायुर्वेद, केशरञ्जन इत्यादि हैं । द्वीपदर्शन कला से वेश्याओं द्वारा द्वीपांतर यात्रा की ओर संकेत है । शास्त्रीय सङ्गीत का भी उल्लेख मिलता है ।[3] संगीत के तीनों अङ्ग गीत, नृत्य एवं वाद्य आदि का समुचित प्रयोग था ।[4] कुछ वाद्यतन्त्रों के नाम भी प्रसङ्गतः आ गये हैं । झिलीमली[5] (झाँझ) सत्रतूर्य[6] एवं गलहस्तादिवादन प्रमुख रूप से उल्लिखित हैं ।

भौगोलिक ज्ञान

क्षेमेन्द्र की समयमातृका से तत्कालीन भौगोलिक अवस्था का परिचय मिलता है । काव्य की चरित्रस्थली प्रवरपुर है । इसे प्रवरसेन ने बसाया था । इसके

---

1. देशोपदेश 8/30-32.
2. कलाविलास 4/3-11.
3. वही, 7/5.
4. समयमातृका 5/49.
5. नर्ममाला 1/94.
6. देशोपदेश 6/37.

विलासपूर्ण जीवन का उल्लेख है ।[1] कङ्काली नामक कुट्टनी के साहसिक जीवन वृत्त में कश्मीर तथा देश के और दूसरे भागों के नाम मिलते हैं । वह परिहासपुर में रहने वाली एक भटियारिन थी । युवती होने पर वह शंकरपुर[3], जिसकी पहचान श्रीनगर बारामूला सड़क पर स्थित पटन नामक गाँव से की जाती है, पहुँची ।[4] कुछ समय बाद वह प्रतापपुर[5] में, जिसका उल्लेख तापर नामक गाँव के रूप में उल्लिखित है[6], एक डामर की रखैल ﴾प्रेमिका﴿ पत्नी बन गयी । वहाँ से विधवा के वेष में वह सुरेश्वरी[7] पहुँची । वहाँ आज भी सुरेश्वरी दुर्गा का मन्दिर है । वहीं शतधारा[8] में वह पितृतर्पण करने लगी । अनेक साहसिक कृत्यों के पश्चात् वह विजयेश्वर[9] पहुँची । घूमती हुई वह कृत्याश्रम नामक बौद्धविहार[10] में पहुँची । कृत्याश्रम वितस्ता के बाँये

---

1. समयमातृका 1/4.
2. वही, 2/3.
3. वही, 2/13.
4. स्टाइन ; राजतरंगिणी भाग 1, 5/156.
5. समयमातृका 2/21.
6. स्टाइन : राजतरंगिणी भाग 1, 4/10.
7. समयमातृका 2/29.
8. स्टाइन : राजतरंगिणी भाग 2, पृ0 455.
9. समयमातृका 2/52.
10. वही, 2/61.

किनारे पर कित्सहोम नामक स्थल है ।[1] तत्पश्चात् वह अवन्तिपुर[2] पहुँची । अवन्तिवर्मन् द्वारा स्थापित इस नगर की पहचान वुलर परगना में वितस्ता के दाहिने किनारे पर स्थित वान्तिपोर से की जाती है ।[3] उसके बाद वह शूरपुर[4] पहुँची । वहाँ वह लवणसरणि नामक मार्ग पर परिश्रम से मजदूरी करने लगी ।[5] कङ्काली की इस यात्रा में पंचालधारा[6] का उल्लेख मिलता है । वह कङ्काली केदारनाथ, गया, एवं काशी जाने का बहाना करती थी ।[7] काम्बोज, तुरुष्क, चीन, त्रिगर्त, गौड़, अंग एवं बंग आदि स्थानों से भी उसका सम्बन्ध था ।[8] क्षिप्रा नदी का उल्लेख मिलता है ।[9] शतधारा नामक नदी का भी उल्लेख मिलता है ।

अनेक पशु-पक्षियों का भी प्रसङ्गतः समावेश हुआ है । कबूतर[10], बिल्ली के बच्चे[11], उल्लूक, कौवा एवं बिल्ली[12] का उल्लेख मिलता है । मण्डूक[13], व्याघ्री[14],

---

1. स्टाइन, राजतरंगिणी, भाग 1, 1/147.
2. समयमातृका 2/76.
3. स्टाइन, राजतरंगिणी, भाग 1, 5/44.
4. समयमातृका 2/90.
5. वही, 2/91.
6. वही, 2/92.
7. वही, 2/97.
8. वही, 2/104.
9. वही, 2/87.
10. वही, 3/13.
11. वही, 3/23.
12. समयमातृका 4/7.
13. वही, 1/9.
14. वही, 1/41.

भेड़[1], मगर[2], कुत्ता[3], घोड़ा[4], गाय[5], हाथी[6], गधा-गर्दभी[7] आदि के उल्लेख क्षेमेन्द्र ने काव्यों में किया है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि तत्कालीन स्थिति आज जैसी ही थी । समाज में सदा से सभी सर्ग रहे हैं और रहेंगे । सभी प्रकार के दण्डनीय अपराध भी थे । सभी धर्म शास्त्रों में इनका उल्लेख है । समाज में ऐसी बुराइयाँ सदैव रही हैं और सम्भवतः रहेंगी, किन्तु मध्यकालीन समाज बहुत रूढ़िग्रस्त हो गया था । तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक विवेचन यह पूर्णतः स्पष्ट होता है कि उस समय भी आज की ही भाँति लोगों का स्तर विकसित था । उनका रहन-सहन, भोजन, वस्त्र, अलङ्कार सभी अत्याधुनिक एवं कीमती थे । समाज में निर्धन वर्ग के लोग भी थे, किन्तु समाज का धनी वर्ग निर्धन एवं समाज के निर्बल वर्ग का शोषण कर उसे कमजोर बनाता हुआ स्वतः सुदृढ़ होता था । क्षेमेन्द्र के ग्रन्थों में कला-संस्कृति की दृष्टि से अनेक महत्त्वपूर्ण सामग्री मिलती है । एक तो क्षेमेन्द्र ने जिन जातियों या वर्गों पर कटाक्ष किया है, उन्हें आज के संकीर्ण जातिवाद की दृष्टि से नहीं देखा जा

---

1. समयमातृका 4/53.
2. दर्पदलन 3/34.
3. वही, 3/44.
4. वही, 1/8.
5. वही, 1/13.
6. वही, 1/25.
7. वही, 1/47, 52.

सकता । यदि हम उसे एक जातिविशेष के रूप में लें तो हम उसी जगह पर पहुँच जायेंगे जहाँ हमारा दृष्टिकोण संकुचित होकर सीमाबद्ध हो रहा है । कायस्थ वणिक आदि वर्ग वस्तुत: जातिपरक न होकर, अपितु व्यवसाय का नाम था । प्रशासन वर्ग को कायस्थ एवं व्यवसायी को वणिक् कहा गया । तत्कालीन समाज में व्याप्त पाखण्ड एवं धन के प्रति अन्धी दौड़ में किये जा रहे अनाचारों का कल्हण की राजतरंगिणी में भी उल्लेख मिलता है । कृष्ण मिश्र महोदय ने भी अपने ग्रन्थ प्रबन्धचन्द्रोदय में तत्कालीन धार्मिक अवस्था का वर्णन किया है, जो क्षेमेन्द्र के वर्णनों से पूर्णत: साम्य रखता है । क्षेमेन्द्र ने जिन धातुवादियों की कटु आलोचना की है, उनकी हँसी उद्योतन सूरि ने भी उड़ाई है । उन्होंने कुवलयमाला में धातुवादियों से सम्बन्धित अनेक परिभाषायें की हैं ।

आर्थिक जीवन

तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक विवेचन के बाद यह पूर्णत: स्पष्ट है कि उस समय आर्थिक सम्पन्नता थी । ऊँची अट्टालिकाओं, महलों, हर्म्यादि का वर्णन देखकर तत्कालीन रहन-सहन सम्बन्धी सम्पन्नता स्पष्ट होती है । वस्त्रों के विवरण एवं चीनांशुक आदि से भी स्पष्ट है । तत्कालीन आभूषणों के व्यापक प्रचलन, रत्न, मणि, मुक्ता आदि का व्यावहारिक प्रयोग तथा वेश्याओं की प्रचुर सम्पन्नता आदि से पूर्णत: स्पष्ट है कि लोग सम्पन्न थे । कृषि ही व्यापक रूप से लोगों को व्यस्त करने वाला कार्य था । शरत्काल में कृषक वर्षभर परिश्रम के बाद प्रचुर सम्पत्ति

प्राप्त करने का अवसर प्राप्त करता था ।[1] परमार्थ निर्मित कूप, उद्यान[2], धर्मशाला आदि से भी धनिकों की स्थिति का पता चलता है । अन्न का उत्पादन पर्याप्त मात्रा में होता था, किन्तु इसके अभाव की भी अनुभूति होती थी । कृपण व्यवसायी द्वारा अन्नसङ्ग्रह[3] का भी उल्लेख प्राप्त होता है । सम्भवत: वह चोरबाजारी के हेतु किया जाता था । कृषि अनावृष्टि एवं अतिवृष्टि से पूर्णत: प्रभावित होती थी ।[4] तत्कालीन शासकीय आय के भी स्रोत शुल्क एवं कर आदि थे । समग्र शुल्क[5] का उल्लेख मिलता है । पूजा के बर्तन चाँदी व अन्य कीमती धातुओं के होते थे ।[6] इससे भी सम्पन्नता प्रतीत होती है । आर्थिक दौड़ में हर व्यक्ति इतना अन्धा हो गया था कि धोखा कर एक दूसरे का शोषण करने से चूकता न था । ऐसे ही एक आधुनिक धोखाधड़ी का उल्लेख प्राप्त होता है जिसमें लोगों को धतूरा खिलाकर बेहोश कर उनकी सम्पत्ति हरण करने का उल्लेख प्राप्त होता है ।[7] सेव्यसेवकोपदेश में कवि ने स्वामी एवं सेवक दोनों के दोषों का विवेचन किया है । स्वामी की क्रूरता एवं

---

1. समयमातृका 1/49.
2. वही, 2/16.
3. देशोपदेश 2/33.
4. समयमातृका 2/75.
5. वही, 2/102.
6. वही, 2/87.
7. वही, 2/90-91.

सेवक की शिथिलता से स्वामी परेशान व ..एक शोषण का शिकार होता था । सामाजिक विषमता भी विद्यमान थी ।[1] निम्न वर्ग के लोग मजदूरी कर अपना भरण-पोषण करते थे । बेगारी-प्रथा भी थी । कुछ लोग तो उच्छवृत्ति ॥अनाज के दाने बीनकर आजीविका चलाना॥ से ही अपना पेट भरते थे ।[2] निर्धन वर्ग धनिकों से ऋण भी लेता तथा ब्याज की ऊँची दरों से वह कभी मुक्त नहीं हो पाता था तथा बन्धक के रूप में भी हो जाता था । ऋण सम्बन्धी उल्लेख प्राप्त होते हैं ।[3]

कविवर-क्षेमेन्द्र के काव्यों में प्रसङ्गत: वर्णित बहुमूल्य महल, मकान वस्त्रालङ्करणों से तत्कालीन समुन्नति एवं सम्पन्नता का प्रमाण मिलता है । कलाविलास में नगर को रत्नों से जगमगाता हुआ[4] बताया गया है तथा अभिसारिकाओं का विघ्नस्वरूप घरों में जड़े स्फटिकों की प्रभा[5] का वर्णन है । सोने, जवाहरात आदि भेंट देने का प्रसङ्ग वर्णित है ।[6] राजा द्वारा वेश्या की अतुल सम्पत्ति से हाथी, घोड़े एवं योद्धाओं से मजबूत बनना बताया गया है ।[7] खूब धन-सम्पत्ति, वाले[8] एवं कम

---

1. सेव्यसेवकोपदेश, श्लोक 12.
2. दर्पदलन 6/39.
3. देशोपदेश 8/38, समयमातृका 2/65.
4. कलाविलास 1/1.
5. वही, 1/3.
6. वही, 1/11-12.
7. समयमातृका 1/17.
8. वही, 1/16.

पूँजी वाले[1] लोगों द्वारा धन प्राप्त करने का वेश्या द्वारा वर्णन है । इससे भी आर्थिक असमानता प्रतीत होती है । निर्धन द्विज का वर्णन है, जो अपने गुणों को मांसवत् बेचकर गिर जाता है ।[2] समयमातृका में ही धनी-पुत्र की सम्पूर्ण सम्पत्ति का अधिकारपत्र प्राप्त करना दिखाया गया है । धनी वर्ग अपने धन को लौह-पात्रादि सम्भवत: सन्दूक आदि में रखते थे । चलते-फिरते पैसों को भी वे पर्स आदि की भाँति बने पात्रों में लेकर चलते थे ।[3] टका आदि का लेख मिलता है । कौड़ी का भी उल्लेख प्राप्त होता है ।[4] समाज में निर्धन लोगों में भुखमरी का भी लेख मिलता है । यह वर्ग कभी-कभी भूखा ही रह जाता था ।[5] छोटे रूपये देने का भी प्रसङ्ग प्राप्त होता है । धन का समाज में विशेष महत्त्व था । हर वर्ग का व्यक्ति अर्थ प्राप्ति के लिए दूषित कर्मों को करने में भी तत्पर था ।

तत्कालीन धार्मिक अवस्था

तत्कालीन धर्म के क्रियापक्ष का आलोचनात्मक अध्ययन करने पर वर्ग विशेष द्वारा दम्भपूर्ण क्रियाकलापों, तीर्थयात्राओं, छुआछूत और अनेक पाखण्डों को किये जाने से भारतीय संस्कृति का स्वरूप ही बदल गया । धर्म में पाखण्ड, अन्धविश्वास

---

1. समयमातृका 1/18.
2. वही, 4/88.
3. वही, 8/95, 5/89.
4. कलाविलास 2/7.
5. देशोपदेश 3/26.

तथा जन्त्र-मन्त्र ने अपना विशेष स्थान बना लिया था । शैव, वैष्णव, बौद्ध व जैन सभी धर्म इससे प्रभावित थे । इन धर्मों का तत्त्वचिन्तन पक्ष प्रबल होते हुए क्रिया-पक्ष बहुत कमजोर और घृणित बन चुका था । अन्धविश्वास और धर्म के नाम पर कुत्सित यौनाचार किसी विशेष वर्ग तक ही सीमित नहीं था, अपितु सारे समाज का एक अङ्ग बन गया था । मध्यकाल में क्षेमेन्द्र ही एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने इन धार्मिक अनाचारों और लोकसम्मत अन्धविश्वासों का खुलकर विरोध किया और लोगों को उनसे वञ्चित रहने का परामर्श दी ।

समयमातृका में तत्कालीन ठगों व अन्धविश्वासों की ओर ध्यानाकर्षित किया गया है । कङ्काली एक साहसी वेश्या थी । वह धर्म का ढोंग कर लोगों के ठगने का कार्य करती । कन्यारूप में वह पुरजनों द्वारा पर्वों पर पूजी जाती थी । इससे स्पष्ट होता है कि लोगों की दृष्टि में कन्याओं को सम्मान प्राप्त था । भैरवसोम नामक किसी योगी के साथ रहती हुई शरीर में भस्म एवं गले में सफेद माला से युक्त होकर वह योगिन बन गयी ।[2] बौद्ध धर्म भी उससे नहीं बचा । हारित-विहार में वह वज्रघण्टा नामक भिक्षुणी बन गयी । वह वेश्याओं को वशीकरण, व्यवसायी को धन-वृद्धि एवं मूर्खों को मंत्रवाद की शिक्षा देती थी ।[3]

---

1. समयमातृका 2/5.
2. वही, 2/59.
3. वही, 2/62-64.

वर्णा नाम से वह षड्अष्टक एवं नक्षत्रों का झूठा विचार करके विवाह - सम्बन्ध मिलाने का कार्य करने लगी। लोगों में उसने अपने को गणविज्ञानिका होने का ढोंग रचा।[1] कङ्काली देवतावेश के रूप में प्रस्तुत होती थी।[2] कुम्भा देवी नाम से वह नंगी एवं पगली के रूप में कुत्तों के साथ चलती थी।[3] उसने नशे में बेहोश एक तपस्वी के सात घण्टे चुरा लिए।[4] वह अपने को कहीं योग-साधना में बताती तो वहीं एक मास उपवास रखने की बात करती। वह ब्रह्मवादिनी और कहीं तीर्थयात्री कहकर सबकी पूजनीय बन गयी। चन्द्र एवं सूर्यग्रहण की गति बजाकर राजमहल में उसने पैसा कमाया।[5] उसने केदारनाथ में तर्पण, गया में श्राद्ध एवं गंगा में स्नान आदि की बात करके और अपना पुण्यफल बन्धक रखकर लोगों से धन कमाती थी।[6] वह बिलसिद्धि (छिद्र में प्रवेश करने की अलौकिक शक्ति) में श्रद्धा रखने वालों के आभूषण एवं वस्त्रों को लेकर वह लालची लोगों को कूपों में गिरा देती थी।[7] वह लोगों से कहती थी - मैं हजार वर्ष की हूँ, मैं धातुवाद जानती हूँ, मेरी वाणी सिद्ध है और त्रिपुररहस्य मेरी मुट्ठी में है इत्यादि।[8]

---

1. समयमातृका 2/83.
2. वही, 2/84.
3. वही, 2/86.
4. वही, 2/89.
5. वही, 2/94-95.
6. वही, 2/97.
7. वही, 2/100.
8. वही, 2/103.

कलाविलास में भी तत्कालीन धर्म के नाम पर ढोंग रचकर ठगी करने वाले लोगों का वर्णन प्राप्त होता है। गणक या ज्योतिषी राशिचक्र फैलाकर ग्रह-चिन्ता की नकल करते हुए बहुत देर बाद प्रश्नोत्तर देता है।[1] धातुवादी शतवेधी एवं सहस्रवेधी सिद्ध होने की बात कहकर लोगों को ठगता है।[2] तारक और शम्बर को साधने वाला, रमणियों में आशा लगाये हुए वह कामी बेल इत्यादि से होम करके अन्धा हो जाता है।[3] खेचरी मुद्रा सुख साध्य है, प्रयत्न से आकाश-कुसुम भी हाथ लग सकता है, मच्छरों की हड्डियों से सिद्धियाँ मिलती हैं, काले घोड़े के मल से बनी बत्ती के आश्रय से इन्द्र के महल देखे जा सकते हैं तथा मेढक की चर्बी का लेपकर मनुष्य अप्सराओं का प्यारा बन सकता है - ऐसी अनर्गल बातें कहकर धूर्त लोगों को ठगते हैं।[4] कामतन्त्र के मूल रति का ज्ञान न होने पर भी वशीकरण वाले गुरु स्त्रियों को रक्षायन्त्र बाँटते हैं।[5] मन्त्ररहित साधारण धूप से विभिन्न मुद्रायें बनाता धूर्त लोगों से जीविकोपार्जन चलाता है।[6]

---

1. कलाविलास 9/5.
2. वही, 9/8.
3. वही, 9/10.
4. वही, 9/11-13.
5. वही, 9/14.
6. वही, 9/18.

देशोपदेश में भी जन-विश्वास के अनेक उल्लेख हैं। स्त्रियाँ एवं वेश्यायें व वश्ययोग में विश्वास करती थीं।[1] वे बीमार होने पर भूत की शङ्का से गुरुओं से रक्षा माँगती थीं।[2] मस्तक एवं कण्ठ में बहुत से जन्तर पहनती थीं।[3] बीमार होने पर ग्रहों की स्थिति जानी जाती थी।[4] बालकङ्काली देवी[5] और महिष का बलिदान चाहने वाली महाकाली[6] की लोग पूजा करते थे। विc रसायन, बिलज्ञान असङ्गत योगशास्त्र और गन्धयुक्त कथा में पण्डित होते थे।[7] कौल धर्मानुयायी जाति भेद से रहित होकर शराब एवं मछली का भोग लगाता था।[8] जुआड़ी श्वेतार्क गण-पति का पूजन करके मछली आदि लेकर गुरु के पास जाता था।[9] नर्ममाला में बौद्ध श्रमणिका को वशीकरण मन्त्रों की ज्ञाता, जारों की दूती, पतिव्रता को बहकाने वाली एवं गंगा को भी तुच्छ मानने वाली कहा गया है।[10] ज्योतिषी धीवर से वर्षावर्षा

---

1. देशोपदेश 3/3।
2. वही, 3/38.
3. वही, 3/39.
4. वही, 3/44.
5. वही, 4/9.
6. वही, 4/21.
7. वही, 5/27.
8. वही, 8/11-13.
9. वही, 8/23.
10. नर्ममाला, 2/29-32.

का कारण पूछता था तथा पाण्डुरोग मन्त्र से दूर करने की बात करता हुआ धूलिपटल पर राशिचक्र बनाता था ।[1] कौलाचार्य मांस एवं मदिरा की गन्ध से गन्दा बना रहता था ।[2] कायस्थ द्वारा यज्ञ के लिए आहूत कौलाचार्य ने आते ही यज्ञ के सामान का पुर्जा लिख दिया । यज्ञ के समय शिष्यों ने सहयोग दिया तथा गुरु ने यज्ञ प्रारम्भ कर दिया ।[3] नियोगी की बाल-विधवा भगिनी याग परिचर्या में लग गयी ।[4]

क्षेमेन्द्र के समय में भी लोगों का विश्वास यक्षों पर था । यक्ष आने-जाने वालों से घिरे जल के स्थान के पास नहीं रहते थे ।[5] गृह में प्रवेश करने पर पटु यक्ष पुनः वापस आ जाता था ।[6] यह भी विश्वास था कि नग्न होकर स्नान करती स्त्रियों को यक्ष पकड़ लेते थे ।[7] यक्षों को नकली धूप देने से दरिद्रता एवं राजभङ्ग की आशंका रहती है ।[8] उस समय और आज भी यह विश्वास है कि घर में गड़े धन की रक्षा सर्पिणी करती है ।[9] उस समय यह भी विश्वास था कि मन्त्र से सेना स्तम्भन किया जा सकता था ।[10] तत्कालीन विश्वासों में वशीकरण एवं संमोहन मंत्रों

---

1. नर्ममाला 2/29-32.
2. वही, 2/90-91.
3. वही, 2/113.
4. वही, 2/10-20.
5. वही, 2/21.
6. समयमातृका 1/18.
7. वही, 5/49.
8. नर्ममाला, 2/91
9. कलाविलास 9/20.
10. समयमातृका 1/27 एवं देशोपदेश 6/1.

का भी स्थान था । ऐसा विश्वास था कि बाल पर वशीकरण चूर्ण फेंकने से स्त्रियाँ वश में हो जाती थीं ।[1] वेश्याओं की कलाओं में वशीकरण औषधियों का भी उल्लेख है ।[2]

उस काल में मन्दिरों, तीर्थों और ब्राह्मणों की महत्ता थी । देवमन्दिर आराधनामात्र के स्थल ही न रहकर कला, संस्कृति एवं कुछ सामाजिक संस्कारों के क्षेत्र बन गये थे । अधिकतर देवमन्दिरों के पास देवता एवं मन्दिर से सम्बन्धित धन के अतिरिक्त भी सम्पत्ति होती थी, जिसे समय-समय पर शासक एवं उनके अधिकारी उसे हस्तगत करने में चूकते न थे । कुछ अधिकारी देवताओं के भोग लगाने के हिस्से को भी हड़प कर लेते थे ।[3] वे गायों के भोजन एवं नमक तक की कटौती करने में चूकते न थे ।[4] देवों एवं नागों की नित्य-नैमित्तिक वृत्ति पर रोक लगा देते थे ।[5] मन्दिर लूटने सदृश चक्र रचे जाते थे ।[6] उन्हें देवमन्दिरों की सम्पत्ति एवं वस्त्रालङ्कार आदि सूचना गुप्तचरों द्वारा मिलती थी ।[7] गृहकृत्य की आज्ञा से परिपालक

---

1. समयमातृका 1/19.
2. कलाविलास 4/10.
3. नर्ममाला 1/13-14.
4. वही 1/26.
5. वही 1/28.
6. वही 1/47.
7. वही 1/52-53.

बहुत से मन्दिरों पर अधिकार कर लेता है ।[1] वह मन्दिरों के धनिकों को भगाकर लोगों की सम्पत्ति को लूट लेता था ।[2]

इस प्रकार तत्कालीन धर्म, मन्दिर, पुजारी, मन्त्र-तन्त्र देवता व अन्य धर्म सम्बन्धी तत्त्वों का विकृत रूप समाज में बहुतायत से प्रचलित आभासित होता है । समाज में नैतिक आचरण एवं धर्म के वास्तविक स्वरूप में श्रद्धा रखने वाले लोग भी थे, किन्तु उनकी संख्या नगण्य ही रही होगी । लोगों का यज्ञ, देवता, मन्दिर, दान, परोपकार, व्रत-उपवास, तीर्थ, मन्त्र-तन्त्र, स्तोत्र एवं श्राद्ध में अपार विश्वास था, किन्तु धन के लोभी धूर्त लोग इसी विश्वास की आड़ में लोगों का शोषण करने लगे, फलत: धर्म का स्वरूप विकृत हो गया । सभी वैदिक एवं पौराणिक देवताओं के प्रति अटूट विश्वास था । क्षेमेन्द्र ने कहीं आठ[3] व कहीं दस[4] अवतारों का उल्लेख किया है । भगवान शङ्कर की पूजा किये बिना तो किसी कार्य के आरम्भ न करने की बात कही गयी है[5] तथा जीवनान्त में भगवान् विष्णु का स्मरण ही सन्तोष देने वाला बताया गया है ।[6] गणेशजी की पूजा का उल्लेख मिलता है ।[7] पापकर्म से

---

1. नर्ममाला 1/65.
2. वही 1/70.
3. नर्ममाला 2/40.
4. दशावतारस्तुति से स्पष्ट
5. चारुचर्या, श्लोक 4.
6. वही, श्लोक 99.
7. समयमातृका 2/77.

नैतिक आचरण वाला व्यक्ति डरता था, क्योंकि पापकर्म का प्रतिफल दुःख ही माना गया है ।[1] पुनर्जन्म में लोगों का पूर्ण विश्वास था[2], जिसके कारण सत्पुरुष कुकृत्यों से बचने का प्रयास करता था । समाज में सत्पुरुषों द्वारा साधु-संन्यासी सम्मानित थे ।[3] स्वर्ग एवं नरक आदि के प्रति भी लोगों की धारणा प्रबल थी ।[4]

क्षेमेन्द्र ने अपने काव्य में रामायण, महाभारत एवं अन्य पौराणिक ग्रन्थों के कथानकों में प्रयुक्त देवताओं एवं अन्य तत्सम्बन्धी पात्रों का उल्लेख किया है । इससे भी तत्कालीन महाकाव्यों एवं पौराणिक ग्रन्थों के स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है । भगवान् राम, सुग्रीव, जमदग्नि, परशुराम, कार्त्तवीर्य, कैलाश, रावण, बालि, सप्त समुद्र, वृत्रासुर, जरासन्ध, भीमसेन, कर्ण, भीम, अर्जुन, गाण्डीव, भगवान् विष्णु, सुदर्शन चक्र, बाणासुर, त्रिनेत्र, कालयवन, मुचुकुन्द, कृष्ण, शिशुपाल, दुर्योधन, दुःशासन, द्रोण, कर्ण एवं कृपाचार्य[5], ययाति, सौदास[6], तपोवन, रैभ्य, भरद्वाज, अर्वावसु, परावसु, यवक्रीत[7], गन्धर्व, अप्सरा, इन्द्र, उर्वशी, पुरूरवा[8], दिलीप, रघु, त्रिशंकु, सूर्यवंश, सोमवंश, वृहस्पति, तारा, बुध, कर्ण, पाण्डव, श्रुतनिधि, प्रांशुवंश,

---

1. दर्पदलनम् 2/8.
2. चतुर्वर्गसंग्रह 4/3, 23, दर्पदपलनम् 2/108.
3. दर्पदलनम् 4/51.
4. नर्ममाला 1/29, 118, 2/128.
5. दर्पदलनम् 5/6-18.
6. वही, 4/74.
7. वही, 3/16-18.
8. वही, 4/18, 19 एवं 40.

मुक्तालता, तेजोनिधि[1] इत्यादि पौराणिक पात्रों के उल्लेख प्राप्त होते हैं ।

कवि ने चारुचर्या नामक शतक काव्य में सत्पुरुषों के लिए विभिन्न कर्मों का प्रतिपादन किया है । सत्पुरुषों के सदसद् ज्ञान के लिए करणीय और निषिद्ध कर्मों का उल्लेख किया है । उनके अनुसार सेवा, महेशार्चन, श्राद्ध, क्षमा, दया, सात्त्विक दान, धैर्य धारण एवं सत्कर्म आदि करणीय हैं तथा शिकार, चुगली, जुआ, विवाद, कटु शब्द प्रयोग, नीच से याचना, रात्रि में विचरण, मद्यपान, ईर्ष्या, कलह, वराङ्-गनावचन में विश्वास तथा स्वगुणानुवाद प्रभृति कर्म निषिद्ध हैं ।

दम्भ एवं धार्मिक प्रक्रिया का सदैव साथ रहा है । शुचि और आत्मशुद्धि के नाम पर जिन आचार-विचारों का सृजन हुआ वे ही कालान्तर में ढोंग मात्र रह गये । ग्यारहवीं शदी में तो धार्मिक दम्भ जीवन का एक अंग ही बन गया तथा धर्म के नायक पूजा-पाठ, स्पृश्यास्पृश्य, दान-दक्षिणा, व्रतोपवास इत्यादि को ही धर्म मान बैठे तथा इसके बावजूद भी वे इसी को अर्थोपार्जन का माध्यम बनाकर लोगों का शोषण भी करने लगे । क्षेमेन्द्र ने ऐसे सभी दांभिकों की कटु आलोचना की है । कश्मीर का इतिहास एवं नैतिक पतन की कहानी उनके सामने थी और वे यह भी जानते थे कि ये बुराइयाँ भारत की किसी भौगोलिक सीमा तक ही स्थित न रहकर सारे देश में फैलकर जन-जीवन को कलुषित कर रहीं थीं तथा उनके विरोध में जनहित था ।

---------::0::---------

---

1. दर्पदलनम् 1/4-8.

अध्याय - चतुर्थ

कवि के उपदेश एवं नीतिपरक काव्यों का विवेचन

आदर्श समाज की स्थापना के आकांक्षी कविवर क्षेमेन्द्र ने तत्कालीन प्रच्छन्न समाज को सन्मार्ग पर जाने के लिए व्यङ्ग्यात्मक काव्यों के साथ ही साथ आदर्श जीवनोपयोगी नैतिकतापूर्ण आचार-व्यवहार के लिए उपदेशपरक व नीतिपूर्ण काव्यों की रचना की है । उनके इस प्रकार के काव्य आज भी अपने उद्देश्य की पूर्ति में उपयोगी हैं ।

इनके द्वारा रचित उपदेशपरक व नीतिपरक काव्य निम्नलिखित हैं -

1. चतुर्वर्गसंग्रह - यह चार वर्गों में विभक्त उपदेशपरक काव्य है जिसमें कवि ने चारों पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का मनोहारी वर्णन किया है । इस काव्य का उद्देश्य उन्होंने स्वतः मनीषियों के सन्तोष व शिष्यों के उपदेश के लिए बताया है ।[1] इसमें धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की अहं भूमिका का स्पष्ट उल्लेख है । काम का तो कवि ने विस्तृत वर्णन किया है ।

2. चारुचर्या - यह कविवर का शत-प्रतिशत उपदेशात्मक काव्य है जो भर्तृहरि, चाणक्य आदि के नीति ग्रन्थों तथा मनुस्मृति आदि की भाँति मानवजीवनोपयोगी तथ्यों का उपदेशात्मक विवरण है । इस काव्य में अनुष्टुप् छन्द में रचित सौ पद्य हैं जिसके प्रथम पंक्ति में किसी एक नैतिक-उक्ति का प्रतिपादन है और द्वितीय

---

1. उपदेशाय शिष्याणां सन्तोषाय मनीषिणाम् ।
क्षेमेन्द्रेण निजश्लोकैः क्रियते वर्गसङ्ग्रहः ॥ चतुर्वर्गसङ्ग्रह 1/2.

पंक्ति में पुराणों और महाकाव्यों से उदाहरण देकर उसका समर्थन किया गया है । इस ग्रन्थ का संस्कृत-साहित्य में बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है, प्रो० कीथ के अनुसार इस ग्रन्थ का महत्त्व इसलिए अधिक है, क्योंकि धाद्विवेदी ने नीतिमञ्जरी का प्रणयन चारुचर्याशतक के आधार पर ही किया है[1] तथा जल्हण के मुग्धोपदेश में भी इसका व्यापक प्रभाव दिखायी देता है ।

3. <u>दर्पदलनम्</u> - यह सात विचारों में विभक्त उपदेशात्मक काव्य है । इसमें मद के सात हेतुओं[2] की कठोर समालोचना की गयी है । इसमें निबद्ध साधारण सूक्तियों एवं लोकोक्तियों में कवि का सूक्ष्म पर्यवेक्षण निहित है, साथ ही साथ उपलब्ध निन्दोपाख्यानों से कवि की रचनात्मक व्यक्तित्त्व भी द्रष्टव्य है । कौल महोदय के शब्दों में व्यङ्ग्यपूर्ण उपदेशात्मक काव्य को दृष्टि में रखते हुए दर्पदलन संस्कृत साहित्य की सर्वोत्तम कृति है ।[3]

4. <u>सेव्यसेवकोपदेश:</u> - यह 61 पद्यों का एक लघु काव्य है जो स्वामी व सेवक के बीच होने वाले आवश्यक आदर्श व्यवहारों से युक्त है । इसमें कवि प्रवर क्षेमेन्द्र ने उपदेशात्मक ढंग से स्वामी व सेवक दोनों के लिए हितकारी नीतियों का संक्षेप में वर्णन किया है ।

---

1. History of Sanskrit Literature, p. 239 - Prof. A.B. Keith.

2. कुलं वित्तं श्रुतं रूपं शौर्यं दानं तपस्तथा ।
   प्राधान्येन मनुष्याणां सप्तैते मदहेतवः ॥ दर्पदलनम् 1/4.

3. श्री मधुसूदन कौल : आकुल, देशोपदेश व नर्ममाला, पृ0 24.

कवि द्वारा उपदिष्ट नीतियों का विषयानुसार विभाजन

महाकवि वाल्मीकि व वेदव्यास को आदर्श मानने वाले कविवर क्षेमेन्द्र ने प्राय: ऐसे काव्यों को दिया है जो तत्कालीन समाज के साथ ही साथ आधुनिक समाज के लिए भी आदर्श नीतियुक्त समाज के निर्माण के लिए उपादेय हैं। इन्होंने मनुष्य के मनोभावो, विचारों, पुरुषार्थों व समाज सम्बन्धी नीतियों को आदर्श रूप में वर्णन किया है। इनके द्वारा उपदिष्ट नीतियाँ सर्वथा आदर्श व समाजोपयोगी हैं जिन्हें निम्नलिखित रूप से विषयानुसार विभाजित किया जा सकता है -

धर्मविषयक नीति

कविवर क्षेमेन्द्र एक प्रबल धार्मिक समाजद्रष्टा थे जिन्होंने समाज का सूक्ष्मावलोकन तीक्ष्ण दृष्टि से करके धर्म के विभिन्न पहलुओं - दान, तप, दिनचर्या आचार-व्यवहार पर बहुत ही उपयोगी नीतियों का वर्णन किया है।

कवि का चारुचर्याशतक तो शत-प्रतिशत मनुष्य के नित्योपयोगी आचार-व्यवहार से सम्बन्धित ग्रन्थ है। चाणक्य नीतिदर्पण, भर्तृहरि नीतिशतक, विदुरनीति व मनुस्मृति आदि नीतिशास्त्रों की ही भाँति कवि की नीतिसम्बन्धी यह शतक है। इसमें कवि ने रामायण, महाभारत, हरिवंश, बृहत्कथा व कथासरित्सागर ग्रन्थों में उपदिष्ट कथानकों के निदर्शन के माध्यम से मानव जीवनोपयोगी आचार-व्यवहार सम्बन्धी नीतियों का प्रतिपादन किया है। व्यक्ति को बाह्य शुद्धि के साथ ही सत्य भाषण व चारित्रिक उत्थान आदि के माध्यम से अन्त:शुद्धि का उपदेश दिया गया है। कवि ने धर्म को मानव-जीवन का अभिन्न अङ्ग बताते हुए इसे दु:ख में भी

न छोड़ने के लिए कहा है ।[1] इसी प्रकार सत्यव्रत को भी न छोड़ने तथा सत्सङ्गति करने के लिए उपदिष्ट किया है ।[2] कवि ने माता-पिता, गुरु व ब्राह्मण का सम्मान तथा उचितानुचित पर ध्यान रखते हुए योगियों व तपस्वियों के धैर्य में सहयोग करने का उपदेश दिया है । इन्होंने ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास तथा वृद्धों की सेवा सम्बन्धी नीतियों का प्रतिपादन किया है ।

कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने नीतिविषयक काव्यों में आचार-व्यवहार आदि के अतिरिक्त दान, तप व धर्म के अन्य पहलुओं पर समाजोपयोगी नीतियों का वर्णन किया है । दान के महत्त्व की गौरवगाथा गाते हुए हमारे महाकवि कभी नहीं अघाते । वस्तुतः समाज आदान प्रदान की भित्ति पर अवलम्बित है । धनी व्यक्तियों का संचित धन केवल उन्हीं की आवश्यकता अथवा व्यसन पूरा करने के लिए नहीं, अपितु उसका सदुपयोग उन निर्धनों की उदर-ज्वाला शान्त करने में भी है, जो समाज के विशेष अङ्ग हैं । दानाभाव में समाज छिन्न-भिन्न हो जायेगा । तभी तो प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद ने भी दान को मानव-जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक माना है ।[3] महाकवि कालिदास ने भी दिलीप के साथ-साथ अन्य रघुवंशियों के

---

1. न त्यजेद् धर्ममर्यादामपि क्लेशदशां श्रितः ।
   हरिश्चन्द्रो हि धर्मार्थी सेहे चाण्डालदासताम् ॥ चारुचर्या श्लोक 13.

2. चारुचर्या श्लोक 14-15.

3. "शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर" - ऋग्वेद

स्वभाव की श्रेष्ठता बताते हुए प्रजा से संगृहीत संपत्ति का सूर्य की भाँति अवसर पर विसर्जन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गुण के रूप में स्वीकार किया है ।[1] पंचतन्त्रकार ने भी धन की दान, भोग और विनाश तीन गतियाँ बताते हुए दान को श्रेष्ठता प्रदान की है ।[2] भर्तृहरि ने भी नदी, वृक्ष व मेघ की परोपकारिता का सङ्केत करते हुए दान द्वारा परोपकार करने वाले धनवान् व्यक्ति को सत्पुरुष माना है ।[3]

गीता[4] व मनुस्मृति[5] में भी ब्राह्मणों के कार्यों में दान को प्रमुखता प्रदान की गयी है । महाकवि क्षेमेन्द्र ने भी उपर्युक्त आदर्शों के अनुरूप धन का वास्तविक

---

1. प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत् ।
   सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥ रघुवंश 1/18.

2. दानं भोगो नाशः तिस्रो गतयो भवन्त्यर्थस्य ।
   यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥ पंचतन्त्र

3. पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः, स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः ।
   धाराधरो वर्षति नात्महेतवे, परोपकाराय सतां विभूतयः ॥
   - नीतिशतक

4. शमोदमः तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
   ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ - गीता 18-42

5. अध्यापनं अध्ययनं दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ।
   - मनुस्मृति 1/88.

फल दान ही स्वीकार किया है । उनकी दृष्टि से सात्त्विक विचारों के साथ नि:स्वार्थ होकर किया गया थोड़ा दान भी महाफल दायक है ।[1] सात्त्विक भावना रखकर ही दान देना चाहिए तथा उसके बदले कुछ पाने की इच्छा भी न करना चाहिए।[2] यह दान की भी उत्तम कोटि है जिसे गीता ने भी सात्त्विक दान[3] कहा है । कविवर क्षेमेन्द्र ने इस प्रकार किये हुए दान को ही धन की वास्तविक सुरक्षा या उसका उपयोग माना है, अन्यथा उनकी दृष्टि में उस धन को विनष्ट ही समझना चाहिए । लोकप्रसिद्धि व यश:प्राप्त्यर्थ दिया गया दान तो कोरा सौदा है ।[4]

---

1. सर्वथा सत्वशुद्धाय दानायातिविधीयसे ।
   नमो महाफलायैव न भोगांग प्रसंगिने ॥ दर्पदलनम् 6/52.

2. दानं सत्वमितं दद्यान्न पश्चात्तापदूषितम् ।
   बलिनात्मार्पितो बन्धे दानशेषस्य शुद्धये ॥
   त्यागे सत्त्वनिधि: कुर्यान्न प्रत्युपकृतिस्पृहाम् ।
   कर्ण: कुण्डलदाने भूत्व कलुष: शक्तियाच्ञया ॥
   चारुचर्या श्लोक 18-19.

3. दातव्यमिति यद्दानं ---------- सात्त्विक स्मृतम् ॥
   - गीता 17-20.

4. दर्पदलनम् 6/4 व 6/26.

कविवर ने दान के बराबर किसी दूसरे धन की कल्पना नहीं की है ।[1] परोपकारी व्यक्ति की ही शरीर की सार्थकता को कवि ने दर्शाया है ।[2]

कविवर क्षेमेन्द्र ने शरीर के सभी अङ्गों के धर्मयुक्त कार्य करने में ही उनकी सार्थकता बताई है ।[3] क्योंकि धर्म-नियम को छोड़ देने वाले व्यक्ति क्या नहीं करते ?[4] अर्थात् वे पाप कर्म करने में भी नहीं चूकते, जबकि पाप ही सब आपत्तियों की मूल है ।[5]

धर्म के प्रमुख अवयव तप के भी प्रसङ्ग में, जो भारतीय संस्कृति का मूल-मन्त्र है,की साधना से मनुष्य अपनी सम्पूर्ण कामनाओं की ही पूर्ति नहीं करता, अपितु परोपकार के यथावत् सम्पादन की योग्यता का भी अर्जन करता है । तप की

---

1. दानतुल्यं धनमन्यदस्ति -------- हितमन्यदस्ति । - चतुर्वर्गसङ्ग्रह: 1/10.

2. वन्द्य: स पुंसां त्रिदशाभिवन्द्य: कारुण्यपुण्योपचयक्रियाभि: ।
   संसारसारत्वमुपैति यस्य परोपकाराभरणं शरीरम् ॥ वही, 1/16.

3. कर्णे धर्मकथामुखे परिचितं धर्माभिरामं वच-
   श्चित्ते धर्ममनोरथ: प्रणयिनी सर्वत्र धर्मस्थिति: ।
   काये धर्ममयी क्रिया परिकर: सोऽयं शुभप्राप्तये
   कल्पापायपदे ह्युपप्लवलवैरस्पृष्टवेलाफल: ॥ वही, 1/4.

4. उत्सृष्टधर्मनियमा: किन्न कुर्वन्त्यवारिता: । दर्पदलनम् 3/101

5. पापं हि पदमापदाम् । वही, 2/92.

महिमा से हमारा साहित्य भरा पड़ा है । महाकवि कालिदास ने इसका महत्त्व बड़े ही भव्य शब्दों में अभिव्यक्त किया है ।[1] इसी प्रकार कुमारसम्भव में भी पार्वती के तप का रहस्य विशेष रूप से प्रकट किया गया है ।[2] अग्निपुराण ने तो तप द्वारा पापक्षय, स्वर्गप्राप्ति, रूप, सौभाग्य, ज्ञान, विज्ञान और यशादि की प्राप्ति बताया है । इतना ही नहीं तप परम तत्त्व की प्राप्ति का भी अनन्य साधन है ।[3]

कविवर क्षेमेन्द्र ने भी तप के प्रसङ्ग में होने वाली विभूतियों में उत्पन्न अभिमान को तप द्वारा साध्य शान्ति के मार्ग में बाधा रूप स्वीकारते हुए शुद्ध और निर्मल बुद्धि के साथ तप में प्रवृत्त होने के लिए सङ्केत किया है । उनकी दृष्टि में

---

1. वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ॥ - रघुवंश 1/10.

2. इयेष सा कर्तुमबन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः ।
   अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेमपतिश्च तादृशः ॥ कुमारसम्भव 5/2

3. तपसो हि परं नास्ति तपसा विन्दते महत् ।
   तपसा क्षीयते पापं मोदते सह देवतैः ॥

   तपसा प्राप्यते स्वर्गस्तपसा प्राप्यते यशः ।
   तपसा सर्वमवाप्नोति तपसा विन्दते परम्॥

   ज्ञानविज्ञानसम्पन्नः सौभाग्यं रूपमेव च ।
   तपसा लभते सर्वं तथैवाध्ययनेन च ॥

   - अग्निपुराण

चित्त की निर्मलता ही समस्त तपों का फल है । अतएव चित्त के निर्मल रहने पर जहाँ तप को अनावश्यक माना है, वहीं अभिमान राग आदि मलों के रहते हुए तप को निष्फल भी ।[1] शूद्रक ने भी ठीक इसी तरह चित्त की शुद्धता को ही महत्त्व देते हुए भाव दिया है ।[2]

इस नीरस असार संसार में कविवर ने तीर्थाटन, साधु-सम्पर्क व पूज्यजनों की पूजा का आनन्द ही सार माना है ।[3] नीतिपूर्ण कथन के रूप में उन्होंने कहा है कि यदि बालक, युवक, वृद्ध व मूर्ख क्रमश. तपस्वी, वनाभिलाषी, रागयुक्त व निर्णायक हों तो स्थिति उपहसनीय, अनुपयुक्त, निन्दनीय व शोचनीय होगी ।[4]

---

1. अ. चित्तं विरक्तं यदि किं तपोभिश्चित्तं सरागं यदि किं तपोभिः ।
 चित्तं प्रसन्नं यदि किं तपोभिश्चित्तं सकोपं यदि किं तपोभिः ॥
 – दर्पदलनम् 67/3.

 ब. सरागकाषायचित्तं शीलांशुकत्यागादिगम्बरं वा ।
 लौल्यादभवद्भस्मभरप्रहासं व्रतं न वेषोदभट तुल्यवृत्तम् ॥ वही, 7/13.

2. शिल मुण्डिद तुण्ड मुण्डिते चित्त ण मुण्डिद कीस मुण्डिदे ।
 जाह उण अ चित्त मुण्डिदे शाहु शुट्ठु शिल ताह मुण्डिदे ॥ मृच्छकटिकम् 8/3.

3. तीर्थाप्तिः साधुसंपर्कः पूज्यपूजामहोत्सवः ।
 अस्मिन् विरसनिःसारे संसारे सारसङ्ग्रहः ॥ दर्पदलनम् 4/51.

4. बालस्तपस्वी किमतोऽस्ति हास्यं
 युवा वनैषी किमतोऽस्त्ययोग्यम् ।
 वृद्धः सरागः किमतोऽस्ति निन्द्यं
 मूर्खः प्रमाता किमतोऽस्ति शोच्यम् ॥ वही, 7/15.

भारतीय दर्शन की समस्त शाखाओं में मानव-जीवन का परम पुरुषार्थ मोक्ष माना गया है । महाकवि क्षेमेन्द्र ने भी जीवन का पर्यवसान मोक्ष में ही माना है। इसीलिए मोहादि राजदोषों की सहसा ही शान्ति दिखलाकर मुनिजनों की मुक्ति का दर्शन महाकवि ने करा दिया है ।[1] वृद्धावस्था आ जाने पर मनुष्य को तपोवन की ओर रुचि रखते हुए मोक्ष प्राप्त करने के लिए अन्यत्र भी महाकवि ने उपदिष्ट किया है[2] क्योंकि अन्तकाल में सन्तोष देने वाले विपत्तिनाशक भगवान् विष्णु का ध्यान ही श्रेयस्कर है ।[3]

इसके अतिरिक्त महाकवि ने शील, कुल, परोपकार, दया, आचरण, व्रतोपासनादि सम्बन्धी नीतियों का विस्तृत प्रतिपादन किया है जो आदर्श समाज की स्थापना हेतु आज भी उपादेय है । आडम्बरहीन जीवन बिताने पर बल देते हुए उन्होंने कहा है कि मनुष्य में यदि करुणा प्रवाहित करने वाली अहिंसा है तो उसे तीव्र तपों से क्या ? यदि शान्ति से निर्मल हुआ मन सत्यपूत है तो दूर-दूर के तीर्थों से क्या प्रयोजन ?

---

1. दर्पदलनम् 7/71-73.

2. पुनर्जन्मजराच्छेदकोविदः स्यात् वयः क्षये ।
   विदुरेण पुनर्जन्मबीजं ज्ञानानले हुतम् ॥ चारुचर्या श्लोक 96.

   जरा शुभ्रेषु केशेषु तपोवनरुचिर्भवेत् ।
   अन्ते वनं ययुर्धीराः कुरुपूर्वा महीभुजः ॥ वही, श्लोक 95.

3. अन्ते सन्तोषदं विष्णुं स्मरेद्धन्तारमापदाम् ।
   शरतल्पगतो भीष्मः सस्मार गरुडध्वजम् ॥ वही, श्लोक 99.

यदि बुद्धि परोपकाररत है तो दिखावे के दानपुण्यों से क्या और यदि पवित्र मन वालों की भगवान् विष्णु में दृढ भक्ति है तो मोक्ष के अन्य उपायों से क्या ?[1]

सांसारिक वस्तुओं की क्षणभंगुरता और वैराग्य की महत्ता का प्रतिपादन कवि ने बहुत ही हृदयस्पर्शी भावों से युक्त किया है ।[2]

मन, सौन्दर्य, सुखोपभोग, यौवन, स्वप्न एवं शरीर को कविवर ने ऐसे अनित्य व क्षणभंगुर सुख प्रदान करने वाले वस्तुओं से जोड़ा है जिसके नित्य चिन्तन से सज्जन संसारग्रन्थियों में बार-बार नहीं बाँध सकते हैं - ऐसा कविवर का विश्वास भी है । क्षेमेन्द्र ने मन को पवन के द्वारा बहाये गये धूलिकणों का मित्र, सौन्दर्य को दिन के अन्त में अस्त होने वाला सूर्य, सुखोपभोग को दुःस्थिति प्राप्त करी की हिलने वाली सन्धियाँ, यौवन को फूलों का खिलना, स्वप्न को सम्बन्धियों से मिलना तथा

---

1. तप्तैस्तीव्रव्रतैः किं विकसति करुणास्यन्दिनी यद्यहिंसा
   किं दूरैस्तीर्थसारैर्यदि शमविमलं मानसं सत्यपूतम् ।
   यत्नादन्योपकारे प्रसरति यदि धीर्दानपुण्यैः किमन्यैः
   किं मोक्षोपाययोगैर्यदि शुचिमनसामुच्यते भक्तिरस्ति ॥
   - चतुर्वर्गसङ्ग्रहः 1/27.

2. न कस्य कुर्वन्ति शमोपदेशं स्वप्नोपमानि प्रियसंगतानि ।
   जरानिपीतानि च यौवनानि कृतान्तदष्टानिच जीवितानि ॥ वही, 4/14.

शरीर को आवागमन के रास्ते में पुण्यप्रद पनसाला माना है ।[1]

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र ने धर्म सम्बन्धी नीतियों का प्रतिपादन करते हुए दान, तप, ज्ञान, परोपकार, अहिंसा, नम्रता आदि लौकिक एवं पारलौकिक दोनों क्षेत्रों में फलदायक गुणयुक्त नीति उपदेशों का यथार्थ चित्रण किया है । कविवर ने धर्म के बाह्याडम्बर रूप का खण्डन करते हुए अन्त:करण की शुद्धि के साथ ही धर्मयुक्त कार्य करने को जीवन में महत्त्व दिया है । इससे उनकी धर्म सम्बन्धी दृढ़ ज्ञान व यथार्थता का भी आभास होता है, जो पाठक के हृदय में प्रेरणा का भाव उत्पन्न करने में भी सहायक है । क्योंकि उपदेशक जब स्वत: स्वकथन का पालक होता है, तब उसके उप-देशों का पाठक पर विशेष प्रभाव पड़ता है ।

धन-विषयक नीति

वस्तुत: धन का मानव-जीवन में बहुत ही महत्त्व है । चारों पुरुषार्थों में अर्थ का स्थान अनुपम है तथा सभी आश्र के लोगों की पूर्ति गृहस्थाश्रम से ही होती है जिसमें धन की अहं भूमिका है । नीतिकार चाणक्य ने धन से ही मित्र, बन्धु-बान्धव, सम्मान, यश प्राप्ति बताया है ।[2] धन से ही धर्म भी सम्भव है तब सुख

---

1. चित्तं वातविकासिपांसुसचिवं रूपं दिनान्तातपं
   भोगं दुर्गतगेहबन्धचपलं पुष्पस्मितं यौवनम् ।
   स्वप्नं बन्धुसमागमं तनुमपि प्रस्थानपुण्यप्रपां
   नित्यं चिन्तयतां भवन्ति न सतां भूयो भवग्रन्थय: ॥ चतुर्वर्गसङ्ग्रह: 4/23

2. चाणक्य नीतिदर्पण, श्लोक 7/15 व 17/5.

की प्राप्ति होती है ।[1] स्तोत्रकार ने भी लक्ष्मी के ही रूप, कुल व विद्या तथा सभी की शोभा का कारण बताया है ।[2]

आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी धन के महत्त्व को स्वीकारते हुए इसके महत्त्व पर प्रकाश डाला है । दानादिक क्रियायें धन से ही होती हैं और धन ही त्रिवर्ग का मूल है ।[3] धन के महत्त्व को बताते हुए महाकवि ने कहा है कि व्यक्ति की पूजा सत्कुल से कीर्ति पराक्रम से, रूप यौवन से तथा क्रिया जीवन से नहीं होती अपितु धन से ही सम्भव है ।[4] और भी वृद्ध, प्रसिद्ध, विबुध, विदग्ध अर्थात् समाज के शूर, कवि, कुलीन व अन्य प्रतिभाशाली भी धनिकों के आश्रय को चाहते हैं ।[5]

---

1. धनाद् धर्मः ततः सुखम् । नीति

2. लक्ष्मीर्भूष्यतेरूपम् लक्ष्मीर्भूष्यते कुलम् ।
   लक्ष्मीर्भूष्यते विद्यां सर्वांल्लक्ष्मीर्विशिष्यते ।। लक्ष्मीस्तोत्र

3. दानादिधर्मः क्रियते धनेन धनेन धन्या धनमाप्नुवन्ति ।
   धनैर्विना कामकथापि नास्ति त्रिवर्गमूलं धनमेव नान्यत् ।। चतुर्वर्गसङ्ग्रह 2/2.

4. पूजा धनेनैव न सत्कुलेन कीर्तिर्धनेनैव न विक्रमेण ।
   रूपं धनेनैव न यौवनेन क्रिया धनेनैव न जीवितेन ।। वही, 2/4.

5. वृद्धाः प्रसिद्धाः विबुधा विदग्धाः शूराः श्रुतिज्ञाः कवयः कुलीनाः ।
   विलोकयन्तः सधनस्य वक्त्रं जयेति जीवेति सदा वदन्ति ।।
   वही, 2/5.

पण्डित, कवि, शूर, बलवान् और तपस्वी भी धनवान् का मुख वैसे ही देखते हैं जैसे वैद्य का मुख रोगी देखता है ।[1] समाज का हर वर्ग धनाभिलाषी है । किसी का धनाभाव में कोई कार्य नहीं हो पाता ऐसा कविवर ने भी नीति प्रतिपादित किया है ।[2] वास्तव में वित्ताभाव में भूखे व्यक्ति को धर्मकथा भी अच्छी नहीं लगती ।[3] गाँठ में पैसा न होने पर भोजन की चिन्ता लगी हो तो कुछ और नहीं सूझता ।

दूसरे परिप्रेक्ष्य में विचार करने पर आभासित होता है कि धन की समाज में अहं भूमिका होते हुए भी धन ही व्यक्ति के सुख का साधन नहीं है अपितु सन्तोष ही सुख का हेतु है जिसे योगदर्शनकार पतंजलि[4] तथा सांख्यदर्शनकार कपिल[5] ने माना

---

1. पण्डिता: कवय: शूरा: बलावन्तस्तपस्विन: ।
   वैद्यस्येव सवित्तस्य वीक्षते मुखमातुरा: ॥ - दर्पदलनम् 2/30.

2. गुरुगणकैरबुधानां क्षयचतुरैश्चौरमूषकैर्वणिजाम् ।
   कायस्थगायनगणैर्भूमिभुजां भुज्यते लक्ष्मी: ॥ - चतुर्वर्गसङ्ग्रह: 2/14.

3. तावद्धर्मकथामनोभवरुचिर्मोक्षस्पृहा जायते
   यावत् तृप्तिसुखोदयेन न जन: क्षुत्क्षामकुक्षि: क्षणम् ।
   प्राप्ते भोजनचिन्तनस्यसमये वित्तं निमित्तं विना
   धर्मे कस्य धिय: स्मरं स्मरति क: केनेक्ष्यते मोक्षभू: ॥
   - वही, 2/24.

4. सन्तोषादनुत्तमसुखलाभ: --- योगदर्शन 2/42.

5. वही, सांख्यदर्शन ।

है । धन की नश्वरता व अस्थिरता पर जहाँ ईशावास्योपनिषद् ने 'मा गृधः कस्यस्विद्धनम्'[1] उपनिषद्कारों ने 'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः'[2] 'अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेनेति'[3] एवं 'नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति'[3] के रूप में किया है तथा योगभाष्यकार व्यास ने धन को हेय मानते हुए दुःख का मूल बताया है ।[4] वहीं महाकवि कालिदास ने भी रघुवंश महाकाव्य में रघुवंशियों में धन का सङ्ग्रह त्यागनिमित्तक बताया है ।[6]

धन की इसी निस्सारता को सहृदय पाठकों के समक्ष रखते हुए आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी स्पष्ट शब्दों में कहा है कि लक्ष्मी तो नेत्र - कटाक्ष की भाँति चञ्चल हैं तथा इस धन को अग्राह्य बताते हुए अन्त समय में एक पग भी साथ न जाने वाला बताया है ।[7] चञ्चल लक्ष्मी को तो बाँधने के लिए गुणों का सङ्ग्रह आवश्यक है ।[8]

---

1. ईशावास्योपनिषद् श्लोक 2.
2. कठोपनिषद् 2/27.
3. बृहदारण्यकोपनिषद् 2/42.
4. छान्दोग्योपनिषद् 8/9/2.
5. यच्चकामसुखं लोके यच्चदिव्यं महत्सुखम् ।
   तृष्णाक्षयं सुखस्यैते नार्हतः षोडशी कलाम् ॥ योगभाष्य 2/42.
6. त्यागाय सम्भृतार्थानाम् - रघुवंश 1/7.
7. धनेन दर्पः किमयं नराणां लक्ष्मीकटाक्षा चलचञ्चलेन ।
   यत् कन्धराबद्धमपि प्रयाति नैकं पदं कालगतस्य पश्चात् ॥ दर्पदलनम् 2/1.
8. श्रियः कुर्यात् पलायिन्या बन्धाय गुणसंग्रहम् ।
   दैत्यांस्त्यक्त्वा श्रिता देवा निर्गुणान्सगुणाः श्रिया ॥ चारुचर्या, श्लोक 84.

अर्थात् इस धन पर अभिमान ही निरी मूर्खता है । हितोपदेश के श्लोक[1] के भाव से साम्य रखता हुआ भाव क्षेमेन्द्र द्वारा भी प्रतिपादित है जिसमें उन्होंने कहा है कि वह सुवर्ण कैसे श्लाघ्य हो सकता है जिसके अर्जन, रक्षण व व्यय की चिन्ता से कृशता ही प्राप्त होती है ।[2] चारों ओर से रक्षा किये जाने पर भी लक्ष्मी क्षणभर में नष्ट हो जाने वाली है ।[3] लोक जीवन के पारखी क्षेमेन्द्र ने जिस सुन्दर एवं काव्यात्मक ढंग से धनादि भोग सम्बन्धी साधनों की अस्पृहणीयता का चित्रण किया है वह चित्र आँखों के आगे से ओझल नहीं होता । एक धनी व्यक्ति, जो रोग से पीड़ित है, सभी औषधियाँ निष्फल हो रही हैं, वह निरन्तर कष्ट के कारण कराहते हुए तीव्र व्यथा से मृत्यु के आगमन के लिए प्रभु से प्रार्थना करता है, उस समय तो भोग के साधनों की ओर से वह आँखें फेर लेता है ।[4] इसी प्रकार का दूसरा चित्रण

---

1. जनयन्त्यर्जने दुःखं तापयन्ति विपत्तिषु ।
   मोहयन्ति च सम्पत्तौ कथमर्थाः सुखावहाः ॥ हितोपदेशः

2. सुवर्णवान्विवर्णो भूत्संपूर्णश्चिन्तया कृशः । दर्पदलनम् 2/16.

3. लक्ष्मीः क्षणक्षयवती परिरक्षितापि ।
   कायोऽप्यपायनिचयस्य निकाय एव ।
   संभोगयोगसुखसंगतिरप्यतथ्या
   मिथ्याभिमान कलनाघन एष शापः ॥ वही, 1/44.

4. रोगार्दितः स्पृशति नैव दृशापि भोज्यं तीव्रव्यथा स्पृहयते मरणाय जन्तुः ।
   सर्वौषधेषु विफलेषु यदा विरौति धान्यैः धनेन च तदा वद किं करोति ॥
   वही, 2/63.

है जिसमें एक धनी व्यक्ति चिरकाल से रोग-शय्या पर पड़ा रात्रि भर पीड़ा के कारण कराहता रहता है, बन्धु-बान्धव और पड़ोसी उसके करुण-क्रन्दन से झुँझला उठते हैं, वैद्य भी उत्तम से उत्तम औषधियों को निष्फल देख झुँझला उठता है तथा परिवार के लोग भी प्रतिदिन काढ़ा बनाते परेशान हो जाते हैं यहाँ तक कि स्वास्थ्य के प्रति निराश उसकी प्रियतमा पत्नी के पग भी उसकी ओर बढ़ने से रुक जाते हैं। आयु की अवसान बेला में शल्य-सदृश पीड़ादायक धन किस काम का ?[1] आदि शंकराचार्य-विरचित चर्पटप जरिकास्तोत्र के भाव[2] की भाँति आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी स्त्री व पुत्र के सम्बन्ध को भी धनाश्रित ही बताया है। धन के नष्ट हो जाने पर स्त्री और पुत्र भी साथ नहीं देते।[3] धन के संचय को धर्मार्थ बताते हुए कहा गया है कि धर्माचरणहीन लोगों का धनसंचय मलसंचय है।[4] तथा कलयुग, दुष्ट मित्र, दुर्व्यसनी

---

1. निद्राच्छेदसखेद बान्धवजनः सोद्वेगवैद्योज्झितः,
   पाकक्वाथतदर्थितः परिजनैस्तन्द्रीभयात्क्षोभितः।
   भग्नस्वास्थ्यमनोरथः प्रियतमावष्टब्ध पादद्वयः
   पर्यन्ते वपुषः करोति पुरुषः किं शल्यतुल्यैर्धनैः ॥ दर्पदलनम् 2/64.

2. यावद् वित्तोपार्जनशक्तः तावन्निजपरिवारोरक्तः ।
   पश्चाद्धावति जर्जरदेहे वार्त्तां पृच्छति कोऽपि न गेहे॥ चर्पटपज्जरिका स्तोत्र

3. पुत्रदारादिसम्बन्धः पुंसां धननिबन्धनः ।
   क्षीणात्पुत्राः पलायन्ते दाराः गच्छन्ति चान्यतः ॥ दर्पदलनम् 2/29.

4. सन्तः कुर्वन्ति यत्नेन धर्मस्यार्थे धनार्जनम् ।
   धर्माचारविहीनानां द्रविणं मलसंचयः ॥ वही, 2/32.

पुत्र, चोर व लालची राजा के रहते धन से लाभ नहीं हो सकता है ।[1] अन्त में कवि-वर ने धनी व निर्धन दोनों को दुःखी व सुखी देखकर सुख व दुःख को भाग्याधीन मानते हुए धन को महत्त्वपूर्ण नहीं माना है ।[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कविवर क्षेमेन्द्र ने धन को लौकिक जगत् में समाज का आधार स्वीकारते हुए तज्जन्य अभिमान की भर्त्सना की है जैसा उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है ठीक ऐसा ही मिला-जुला भाव अन्य ग्रन्थों में भी धनविषयक नीति के रूप में प्राप्त होता है ।

काम-विषयक नीति

वस्तुतः काम भी मानव-जीवन का महत्त्वपूर्ण नीतिविषयक तथ्य है जिसका गृहस्थ से गहरा सम्बन्ध है । काम-प्रसङ्ग में स्त्री की भूमिका का प्राधान्य है । स्त्री के प्रति मनुष्य के मन में आसक्ति व वासना भड़काने वाले कामदेव का चरित्र

---

1. कलौ काले खले मित्रे पुत्रे दुर्व्यसनान्विते ।
   तस्करेषु प्रवृद्धेषु लुब्धे राज्ञि धनेन किम् ॥ दर्पदलनम् 2/39.

2. निर्धनाः सुखिनो दृष्टाः सधनाश्चातिदुःखिताः ।
   सुखदुःखोदये जन्तोर्दैवाधीने धनेन किम् ॥
   वही, 2/57.

बहुत ही अद्भुत है इसीलिए भर्तृहरि श्रृंगार शतक में सर्वप्रथम कामदेव की वन्दना करते हैं ।[1] इसी तरह कविवर क्षेमेन्द्र ने भी कामदेव को नमस्कार किया है ।[2] स्त्रियों के आकर्षक अङ्ग ही उनके आभूषण हैं तथा विभिन्न हाव-भाव ही काम-जन्य भावों के हेतु हैं । भर्तृहरि, अमरूक आदि कवि स्त्री-प्रसङ्गों पर अपनी लेखनी के माध्यम से उत्कृष्ट भाव पिरोकर सहृदय पाठकों को मन्त्रमुग्ध करने में पूर्णतः सक्षम हैं । जहाँ एक ओर भर्तृहरि मुख, नेत्र, केशराशि व स्तन-युगल आदि अवयवों का विभिन्न उपमा से वर्णन करते हैं[3], वहीं कविवर क्षेमेन्द्र भी इसी तरह का भाव स्पष्ट करते हैं ।[4]

---

1. शम्भुस्वयंभुहरयो हरिणेक्षणानां, येनाक्रियन्त सततं गृहकर्मदासाः ।
   वाचामगोचरचरित्रविचित्रिताय तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय ॥ श्रृंगारशतक 1.

2. अनङ्गवातालास्त्रेण जिता येन जगत्रयी ।
   विचित्रशक्तये तस्मै नमः कुसुमधन्वने ॥ समयमातृका 1/1.

3. वक्त्रं चन्द्रविकासि पंकजपरीहासक्षमे लोचने,
   वर्णः स्वर्णमपाकरिष्णुरलिनीजिष्णुः कचानां चयः ।
   वक्षोजाविभकुम्भसंभ्रमहरौ गुर्वी नितम्बस्थली,
   वाचां हारि च मार्दवं युवतिषु स्वाभाविकं मंडनम् ॥ श्रृंगारशतक श्लोक 5.

4. अ. स्तनस्थले हारिणि सुन्दरीणां नितम्बबिम्बे रशनासनाथे ।
   धत्ते विशेषाभरणाभिमानलीला नवोल्लेखलिपिः प्रपञ्चम् ॥ चतुर्वर्गसंग्रह 3/9.

   ब. नेयं तस्यास्त्रिवलीतरङ्गकुसङ्गिनी राजति रोमराजिः ।
   स्नात्वा गतोऽस्यां स्मरकेलिवाप्यां कलङ्कलेशाम्महाय चन्द्रः ॥ वही, 3/13

स्त्री प्रसङ्ग में नीतिकार चाणक्य[1] ने जहाँ स्त्रियों को बहुप्रेमी वाली बताया है वहीं भर्तृहरि[2] ने भी उसी के साम्य का भाव दिया है। इसी प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र ने स्त्रियों पर विश्वास न करने की नीति का प्रतिपादन किया है।[3] भोग-विलास बढ़ाने वाली दुराचारिणी स्त्री तो सर्वथा त्याज्य है।[4] साथ ही साथ स्त्रियों की स्वतन्त्रता अहितकर मानते हुए कहा है कि जिस घर में स्त्रियाँ पति से छिपाकर कार्य करने में स्वतन्त्र हो जाती हैं, वह घर निश्चय ही आपत्तियों का घर बन जाता है।[5]

---

1. जल्पन्ति सार्द्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमा: ।
   हृदये चिन्तयत्यन्यं न स्त्रीणामेकतो रति: ॥ चाणक्यनीतिदर्पण 16/2.

2. जल्पन्ति सार्द्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमा: ।
   हृदये चिन्त्यत्यन्यं प्रिय: को नाम योषिताम् ॥ श्रृंगारशतक श्लोक 81.

3. अ. न कुर्यात् परदारेच्छां विश्वासं स्त्रीषु वर्जयेत् ।
   हतो दशास्य: सीतार्थे हत: पत्न्या विदूरथ:॥ चारुचर्या, श्लोक 10.

   ब. स्त्रीजितो न भवेद् धीमान् गाढरागवशीकृत: ।
   पुत्रशोकाद् दशरथो जीवं जायाजितोऽत्यजत् ॥ वही, श्लोक 27.

4. नष्टशीलां त्यजेन्नारीं रागवृद्धिविधायिनीम् ।
   चन्द्रोच्छिष्टाधिकप्रीत्यै पत्नी निन्द्याप्यभूद् गुरो:॥ वही, श्लोक 75.

5. स्त्रियो यत्र प्रगल्भन्ते भर्तुराच्छाद्य कर्तृताम् ।
   गृहे भवत्यवीर्यं तदास्पदं परमापदाम् ॥ दर्पदलनम् 2/23.

कविवर क्षेमेन्द्र ने काम का बहुत ही विस्तृत वर्णन किया है । इसके दूषित पहलुओं को जनसामान्य के भी समक्ष रखकर उससे बचने के लिए उपदिष्ट किया है । चंचला स्त्री के विभिन्न रूपों में अनेक प्रेमियों से रमण करने वाली और स्वभाव से बहुरूपा वाली होना कवि ने बताया है ।[1] वस्तुतः स्त्री के चंचल मन के दोष के ही कारण स्त्रियाँ सहज अनुरक्ता होती हैं । इनके मन की चंचलता सहज ही होती है जिसे कविवर ने चञ्चलता के विभिन्न उपमानों से भी बढ़कर बताया है ।[2] अन्यत्र भी कामिनी द्वारा चित्ताकर्षण शक्ति के प्राबल्य का वर्णन किया गया है ।[3]

कविवर क्षेमेन्द्र ने परनारी पर आसक्ति तथा नारियों पर विश्वास न करने की नीति का प्रतिपादन किया है ।[4] साथ ही साथ मानव-इन्द्रियों पर विश्वास न करने की भी नीति को बताया है ।[5]

---

1. नयनविकारैरन्यं वचनैरन्यं विचेष्टितैरन्यम् ।
   रमयति सुरतेनान्यं स्त्री बहुरूपा स्वभावेन ॥ कलाविलासः 3/14.

2. अपि कुञ्जरकर्णाग्रादपि पिप्पलपल्लवात् ।
   अपि विद्युद्विलसिताद् विलोलं ललनामनः ॥ दर्पदलनम् 1/63.

3. चलितं हि कामिनीनां धर्तुं शक्नोति कश्चितम् ॥ कलाविलासः 3/41.

4. न कुर्यात् परदारेच्छां विश्वासं स्त्रीषु वर्जयेत् ।
   हतो दशास्यः सीतार्थे हतः पत्न्या विदूरथः ॥ चारुचर्या 10.

5. तीव्रे तपसि लीनानामिन्द्रियाणां न विश्वसेत् ।
   विश्वामित्रोऽपि सोत्कण्ठः कण्ठे जग्राह मेनकाम् ॥ वही, 36.

कामविषयक दोष पक्ष का प्रतिपादन करते हुए कविवर ने कामविषयक दोषों से युक्त व्यक्ति को वृद्धत्व की प्राप्ति बताया है ।[1]

उन्होंने स्त्रीजन्य चेष्टाओं को संसार के रहस्य से भी अधिक आश्चर्य और गूढ़[2] बताते हुए स्त्रियों के मन को पीपल के पल्लव हाथी के कान के अग्रभाग व विद्युत-विलास से भी अधिक चञ्चल माना है । साथ ही साथ यह भी स्पष्ट किया है कि धन एवं यौवनजन्य अभिमान की कालिमा से युक्त स्त्रियाँ परिभ्रष्ट होने से रोकी नहीं जा सकती है ।[3]

कविवर ने स्त्रियों को मनुष्य की जन्मदात्री, प्राणों को हरने वाली, भीरू स्वभाव वाली व अग्नि में प्रवेश करने जैसी साहस वाली, कठोर व कोमल तथा मुग्ध होते हुए भी विदग्ध जनों को ठगने वाली बताया है ।[4]

---

1. रूपं क्षणस्वीकृतरक्तमांसग्रासप्रसक्ता कृतकामदोषा ।
   केशग्रहेणैव जरा जनानां वेश्येव वित्तं कवलीकरोति ॥ दर्पदलनम् 4/5.
2. लज्जाकरमसत्कर्म कथं तद् कथयामिते ।
   संसारादपि साश्चर्यं गहनं स्त्रीविचेष्टितम् ॥ वही, 1/62.
3. धनयौवनसंजातदर्पकालुष्यविप्लवा: ।
   केनोन्नतपरिभ्रष्टा वार्यन्तेनिम्नगा: स्त्रिय: ॥ वही, 1/65.
4. देहप्रदा: प्राणहरा नराणां भीरुस्वभावा: प्रविशन्ति वह्निम् ।
   क्रूरा परं पल्लवपेशलाङ्ग्यो मुग्धा विदग्धानपि वञ्चयन्ति ॥
   वही, 1/66.

वस्तुत. कामप्रतीका युवतियाँ कामपीड़ित व्यक्ति के लिए अग्निसदृश ताप पहुँचाने वाली है तथा यह भी निश्चित है कि काम, क्रोध व मद से उद्धत जन स्त्रियों की सान्त्वनायुक्त वचनों द्वारा ठगे जाते हैं।[1] काममोहित जन दुष्प्राप्य को भी सुलभ ही मानते हैं।[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कविवर क्षेमेन्द्र ने स्त्री को ही काम का आश्रयभूत माना है तथा कामीजनों का तज्जन्य ताप मे जलना निश्चित माना है। वैसे इसके सहानुभूतिपूर्ण पक्ष पर विचार करते हुए पुरुषार्थ का प्रमुख अङ्ग माना है। कामाधिक्य ही वस्तुत: उसका दोषपक्ष है तथा प्रतिलोम जाति की व सर्वोपलब्धा स्त्रियों का संसर्ग विशेषत: निषिद्ध माना गया है। वस्तुत. कामप्रशंसा के प्रसंग में नारी के सौन्दर्य प्रियजन के विरह की पीड़ा व मिलन की घड़ियों के हर्षातिरेक का अङ्कन किया गया है। जो नारी संयोगावस्था में आनन्दसन्दोह है वही विरहावस्था में दु:खजनिका हो जाती है - यह क्या बात है कि वही प्रिया जिसके चञ्चल नयन नीलकमल से हैं, भौहें तरङ्गों सी, मुख सौ चन्द्रों के समान और गात्र मृणाललता की तरह है और जिसका स्पर्श चन्दन की तरह और मुस्कान हिमकणों की तरह शीतल है वही प्रिया

---

1. अयं स्मरातुरस्तावद् वचसा न निवर्तते ।
   वञ्च्यन्ते सान्त्ववादेन कामक्रोधमदोद्धता: ॥ दर्पदलनम् 3/102.

2. इत्युक्त: स तया प्रायाद् सत्यं विज्ञाय तद्वच: ।
   दुष्प्रापमपि मन्यन्ते सुलभं काममोहिता: ॥ वही, 3/105.

विरह में क्यों अग्निमयी सी हो जाती है और उसकी याद भी विषम ताप को उत्पन्न करने लगती है ।[1]

प्रिय मिलन के अवसर पर हर्षविभोर नायिका की चेष्टायें देखते ही बनती है -

पति बहुत दिनों बाद घर लौटा है । उसे देखते ही सुनयना गृहिणी की आँखों में हर्ष के आँसू भर आये हैं । भाव-विभोर होकर वह अपने आँचल से उस घोड़े के गले की धूल झाड़ने लगती है जो उसके प्रिय को घर तक ले आया है - प्रेमातिरेक का कैसा स्वाभाविक अङ्कन है ।[2]

इस प्रकार काम-सम्बन्धी नीतियों का प्रतिपादन करते हुए कविवर क्षेमेन्द्र ने जहाँ नारी की लौकिक जीवन में प्रमुख भूमिका को स्वीकार करते हुए उसके श्रृंगार व संयोगविषयक पक्ष का सहानुभूतिपूर्ण वर्णन किया वहीं, उसे वियोग में दुःखदायिनी व स्वभावतः चञ्चला एवं सहजगुणानुरक्ता माना है ।

---

1. कुवलयमयी लोलापाङ्गे तरङ्गमयी भ्रुवोः
   शशिप्रातमयी वक्त्रे गात्रे मृणाललतामयी ।
   मलयजमयी स्पर्शे तन्वी तुषारमयी स्मिते
   दिशति विषमं स्मृत्या तापं किमग्निमयीव सा ॥ चतुर्वर्गसंङ्ग्रहः 3/7

2. समायाते पत्यौ बहुतरदिनप्राप्यपदवीं
   समुल्लङ्घ्याविघ्नागमनचतुरं चारुनयना ।
   स्वयं हर्षोद्बाष्पा हरति तुरगस्यादरवती
   रजः स्कन्धालीनं निजवसनकोणावहननैः ॥ वही, 3/18.

विद्या सम्बन्धी नीति

प्राय. समस्त नीतिकारों ने विद्या के सम्बन्ध में अपनी अपनी लेखनी का प्रयोग कर इसे समस्त धनों में सर्वश्रेष्ठ बताया है । यजुर्वेद ने विद्या को अमरत्व का एकमात्र साधन माना है ।[1] विभिन्न दर्शनकारों ने भी विद्या की साधना द्वारा प्राप्त तत्त्वज्ञान को अपवर्ग का हेतु माना है ।[2] महाकवि क्षेमेन्द्र ने भी उक्त आदर्शों के अनुरूप विद्या को समस्त दोषों की शान्ति का हेतु माना है ।[3] नीतिकार भर्तृहरि ने भी विद्या का परिणाम विनय मानते हुए परम्परया उसे धन, धर्म व सुख का मूल माना है ।[4] नलचम्पू में त्रिविक्रम भट्ट ने भी विद्या के साथ विनय को

---

1. विद्ययाऽमृतमश्नुते - यजुर्वेद 40/14.

2. अ. षोडशपदार्थानामज्ञानान्निश्रेयसाधिगमः । न्यायदर्शन 1/1/1.
   ब. मुक्तिः प्रतिज्ञानात् - वेदान्त 4/4/2.
   स. ज्ञानान्मुक्ति. बन्धो विपर्ययात् - वही, 3/23/24.
   द. विवेकान्निःशेषदुखनिवृत्तौ कृतकृत्यो नेतरान्नेतरात् । साङ्ख्यदर्शन 3/84.

3. अ. चेतः शान्त्यै द्वेषदर्पोज्झितेन, यत्नः कार्यः सर्वथा पण्डितेन ।
   विद्यादीपः कामकोपाकुलाक्षणां, दर्पान्धानां निष्फलालोक एव॥ दर्पदलनम् 3/151.
   ब. संसारदोषप्रशमैक हेतुः । - दर्पदलनम् 3/1.

4. विद्या ददाति विनयं --- धनाद् धर्मः ततः सुखम् ॥
   - नीतिशतक

आवश्यक बताते हुए विनय के अभाव में विद्या धन आदि की जननी नहीं हो सकती, यह स्वीकार किया है ।[1] क्षेमेन्द्र की दृष्टि ने भी इसे आदर्श मानकर शील, परहित की भावना, निरभिमानिता, क्षमा, धैर्य और अलोभ को विद्या का उज्ज्वल फल माना है ।[2] कवि की दृष्टि में अभिमान का विनाश करने वाली विद्या ही विद्या है ।[3] जो विद्या के गौरव के वशीभूत होकर शील का त्याग करता है, वह पण्डित मूर्ख उपहास के ही योग्य है ।[4] विद्या तभी तक स्पृहणीय होती है, जब उसके साथ साथ सन्तोष हो । राजाओं के समक्ष दान प्राप्ति के लिए प्रयुक्त होकर वह निन्दनीय हो जाती है ।[5] लोभ और द्वेष के कारण विद्या निन्दनीय हो जाती है। लज्जा के द्वारा यथा कुलाङ्गना की शोभा होती है उसी प्रकार नम्रता से विद्या की शोभा होती है ।[6] जो अभिमानी सभा में विवादोद्यत रहते हैं, जिन्हें दूसरे का यश

---

1. विवेक: सह संपत्या विनयो विद्यया सह - नलचम्पू
2. शीलं परहितासक्तिरनुत्सेक: क्षमा धृति: ।
   अलोभश्चेति विद्यायास्तस्मिन्नवहितो भव।। दर्पदलनम् 3/24.
3. सा विद्या या मदं हन्ति - वही, 3/3.
4. वही, 3/4.
5. वही, 3/7.
6. विद्या श्रीरिव लोभेन द्वेषेणायाति निन्द्यताम् ।
   भाति नम्रतयैवैषा लज्जयेव कुलाङ्गना ।। वही, 3/6.

शूल की भाँति पीड़ादायक होता है, उनकी विद्या शान्तिदायिनी नहीं होती ।[1] अशील और द्वेष से विद्या अपवित्र हो जाती है तथा दर्पयुक्त होने पर अपने साथ ही जीवन का भी अन्त कर देती है ।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि दुर्जन की विद्या उसे स्वभावानुकूल कुपथगामी होने से नहीं रोक पाती ।[3] हितोपदेश में इससे साम्य रखते हुए स्वभाव पर बल दिया है, गौ के दूध का माधुर्य भी तो स्वाभाविक ही होता है ।[4]

इसी प्रसङ्ग में सूक्ष्मदर्शी क्षेमेन्द्र ने सन्मार्ग से विपरीत ले जाने वाली विद्या के इक्कीस भेदों[5] का सूक्ष्म विवेचन किया है । महाकवि कालिदास ने भी इन सूक्ष्म

---

1. दर्पदलनम् 3/14.

2. वही, 3/15.

3. न श्रुतेन न वित्तेन न वृत्तेन न कर्मणा ।
   प्रवृत्तं शक्यते रोद्धुं मनोभवपथे मनः ॥ वही, 3/87.

4. न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः ।
   स्वभाव एवात्रतथातिरिच्यते यथाप्रकृत्या मधुरं गवा पयः ॥
   हितोपदेश. 1/17.

5. विद्या के प्रकार, दर्पदलनम् श्लोक 28 से 48 तक ।

भेदों में एक भेद पण्य विद्या पर क्षेमेन्द्र सदृश ही भाव प्रकट किया है ।[1]

विद्या के सम्बन्ध में क्षेमेन्द्र का यह विवेचन निःसन्देह विद्याभिमान के प्रति हेय भावना को प्रबल करता है । लौकिक परिणामों पर विचार करने पर भी कवि की विचारधारा[2] मानसपटल से तिरोहित नहीं होती ।

विद्या प्राप्ति में अभ्यास को कविवर ने प्रमुखता देते हुए कहा है कि शिक्षा और अभ्यास से पक्षी भी स्पष्ट रूप से वेदशास्त्र पढ़ते हैं ।[3] तथा उन्होंने बिना अभ्यास के पाण्डित्य तो आकाश कुसुम के समान माना है ।[4]

कविवर के विद्या सम्बन्धी नीतियों से स्पष्ट है कि उन्होंने विद्या को तभी महत्त्व दिया है जब वह नम्रता से युक्त व अहङ्कार से मुक्त हो ।

---

1. अ. यस्यागमः केवल जीविकायै ।
   तं ज्ञानं पण्यं वणिजं वदन्ति॥ मालविकाग्निमित्रम्

   ब. परोत्कर्षं समाच्छाद्य विक्रयाय प्रसार्यते ।
   यः मुक्तुर्धनिनामग्रे किं तया पण्यविद्यया ॥ दर्पदलनम् 3/33.

2. स्पृशति मतिं नहि तेषां द्वेषविषः कलिसर्पः ।
   यदिशमविमलमतीनां स्व मनसि भवति न दर्पः ॥ वही, 3/154.

3. शिक्षाभ्यासेन सुव्यक्तं पठन्त्यपि विहंगमाः ।
   क एष विद्यया दर्पः कष्टप्राप्तैकदेशया ॥ वही, 3/2.

4. अनधीता गुरुमुखात् कथं विद्याधिगम्यते ।
   अनभ्यासेन पाण्डित्यं नभःकुसुमशेखरम् ॥ वही, 3/22.

<u>कुल, रूप, शौर्य, परोपकार व अन्य मानव विचारों सम्बन्धी गीति</u>

कविवर क्षेमेन्द्र ने कुल सम्बन्धी विषय पर गुण की प्रधानता देते हुए कुल की अपेक्षा गुण को श्रेष्ठ बताया है तथा प्रमाण में सबके मन को आकृष्ट करने वाले कमल का कुल अग्राह्य पङ्क (कीचड़) कहा है।[1] इसी प्रकार का भाव प्राचीन ग्रन्थ पंचतन्त्र में मिलता है।[2] सम्भवतः इसी को आदर्श मानकर क्षेमेन्द्र ने भी ऐतिहासिक महापुरुषों के मूल की विवेचना की है। दिलीप, रघु और राम के पूर्वज त्रिशंकु ही थे, जो स्वयं चाण्डाल की सन्तान थे।[3] वशिष्ठ गणिका की सन्तान थे। कर्ण की माता कन्या ही थी और पाण्डव भी क्षेत्रज पुत्र थे।[4]

इस प्रकार मानव-जीवन में कुल का कोई महत्त्व नहीं दिखलाई पड़ता ।

---

1. कुलस्य कमलस्येव मूलमन्विष्यते यदि ।
   दोषपङ्कप्रसक्तान्तस्तदावश्यं प्रकाशते॥ दर्पदलनम् 1/7.

2. कौशेयं कृमिजं, सुवर्णमुपलाच्छर्वापि गोरोमतः,
   पंकात्तामरसं शशांकमुदधेरिन्दीवरं गोमयात्।
   काष्ठादग्निरहेः फणादपि मणिर्गोपित्ततो रोचना,
   प्राकाश्यं स्वगुणोदयेन गुणिनो गच्छन्ति किं जन्मना॥
   – पंचतन्त्र 1/103.

3. दर्पदलनम् 1/17.

4. वही, 1/19.

महाभारत के अनुसार भी वृत्त के अभाव में कुल का कोई महत्त्व नहीं है ।[1] क्षेमेन्द्र के पूर्ववर्ती अनेक ग्रन्थों में कुल व शील की तुलना करते हुए कुल की अपेक्षा वृत्त, गुण या शील को ही श्रेष्ठ माना है । विष्णु शर्मा ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि उत्तम वंश से निर्मित धनुष भी गुणहीन होने पर व्यर्थ हो जाता है ।[2] कूर्म पुराण के अनुसार भी वृत्त के अभाव में कुलों का कुलत्त्व समाप्त हो जाता है ।[3] शाङ्र्गधरपद्धति के अनुसार भी शील ही गौरव का कारण होता है क्योंकि सुगन्धित पुष्पों से कीड़ों की भी उत्पत्ति होती है जो ग्राह्य नहीं होते ।[4]

शूद्रक ने भी कुल और शील के सम्बन्ध में उक्त भाव को मान्यता दी है ।[5] आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी उन्हीं विचारों को आदर्श मानकर नवीन उपमाओं के साथ उन्हें

---

1. न कुलं वृत्तहीनानां प्रमाणमिति मे मति. ।
   अन्येष्वपि हि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते॥ महाभारत 5/11/34.

2. धनुर्वंशविशुद्धोऽपि निर्गुणः किं करिष्यति - पंचतन्त्र

3. कुलान्यकुलतां यान्ति यानि हीनानि वृत्ततः ।
   विहिताचारहीनेषु क्षिप्रं नश्यति वै कुलम् ॥ कूर्मपुराण 15.

4. किं कुलेन विशालेन शीलमेवात्रकारणम् ।
   क्रिमयः किं न जायन्ते कुसुमेषु सुगंधिषु ॥ शार्ङ्गधरपद्धति 1485.

5. किं कुलेनोपदिष्टेन शीलमेवात्र कारणम् ।
   भवन्ति सुतरां स्फीताः सुक्षेत्रे कण्टकिद्रुमाः ॥ मृच्छकटिकम् 9/7.

अपने ढङ्ग से प्रस्तुत किया है ।[1] उन्होंने गुणवान कुल में उत्पन्न निर्गुण पुरुष को पूजा का पात्र न मानते हुए कुलों के सम्मान का कारण गुण ही माना है । साथ ही प्रमाण देते हुए कहा है कि जैसे उत्तम घोड़े की सन्तान के विषय में यह नहीं कहा जा सकता है कि वह उत्तम जाति से उत्पन्न नहीं हुआ है उसी प्रकार गुणवान् के कुल में उत्पन्न होने से उसके पुत्र को निर्गुण नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता ।

रूप के सम्बन्ध में कविवर क्षेमेन्द्र ने अन्य पूर्व विचारकों की भाँति इसे अनित्य व निस्सार् बताते हुए अभिमान न करने का उपदेश दिया है । रूप-सौन्दर्य तथा इन्द्रिय सम्बन्धी तेजस्विता की अनित्यता का वर्णन कठोपनिषद के यम-नचिकेता-संवाद से भी प्राप्त होता है ।[2] हितोपदेश में भी विद्या के अभाव में रूप और यौवन

1\. अ. गुणवत्कुलजातोऽपि निर्गुणः केन पूज्यते ।
दोग्ध्रीकुलोद्भवाधेनुर्वन्ध्या कस्योपयुज्यते ॥ दर्पदलनम् 1/13.

ब. स्वयं कुलकृतस्तस्माद्विचार्यत्यज्यतां मद. ।
गुणाधीनं कुलं ज्ञात्वा गुणेष्वाधीयतां मतिः ॥ वही, 1/14.

स. यथा जात्यतुरंगस्य न शक्यज्जात्यगुच्यते ।
तथा गुणवतः सूनुर्निर्गुणस्तत्कुलोद्भवः ॥ वही, 1/8.

2\. श्वोभावामर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः ।
- कठोपनिषद 1/26.

को उसी प्रकार अस्पृहणीय बताया है, जैसे गन्धाभाव में किंशुक का पुष्प ।[1] कठोपनिषद् के उपर्युक्त भाव का विकास हमें हितोपदेशादि की अपेक्षा क्षेमेन्द्र में अधिक सुन्दर रूप में मिलता है । उन्होंने कमलों के तुल्य मनुष्यों के सौन्दर्याभिमान को अस्थिर बताते हुए कहा है कि जैसे धूम से चित्र, तुषारापात से पद्म, कृष्णपक्ष के कारण चन्द्रबिम्ब और गर्मी के कारण जल की शीतलता शोभारहित हो जाती है, अर्थात् समाप्त हो जाती है, उसी प्रकार वृद्धावस्था के अवतीर्ण होने पर सुन्दर रूप भी शोभाहीन हो जाता है ।[2]

शौर्य के प्रसङ्ग में जैसा कि भर्तृहरि ने खल परिचय में 'शक्तिः परेषां परिपीडनाय' द्वारा देते हुए दूसरों को कष्ट देने वाली शक्ति को हेय तथा रक्षिका शक्ति को उपादेय बताया है उसी तरह क्षेमेन्द्र ने भी बताया है कि प्राणियों की रक्षा

---

1. रूपयौवनसम्पन्ना: विशालकुलसम्भवा: ।
   विद्याहीना:न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुका:॥ हितोपदेश:

2. अ. पद्मोपमानां दिनसुन्दराणां कोऽयं नृणामस्थिररूपदर्प: ।
   रूपेण कान्ति: क्षणिकैव येषां हारिद्ररागेण यथांशुकानाम्॥ दर्पदलनम् 4/1.

   ब. धूमेनचित्रं तुहिनेन पद्मं तमिस्रपक्षेण सुधांशुबिम्बम् ।
   शीतं निदाघेन न भाति तोयं जरावतारेण च चारुरूपम् ॥ वही, 4/4.

   स. ह्यो य. शिशु: सस्फुटयौवनोऽद्य प्रातर्जराजीर्णतनु:स एव ।
   पुंसामवस्थात्रितयत्रिभागे रूपप्रदं यौवनमेव नान्यत् ॥ वही, 4/7.

करना ही शौर्य है। प्राणों का हर्त्ता शूर नहीं हो सकता।[1] शौर्य की शोभा तो औचित्य विनय और दया के साथ ही है। इनके अभाव में तथा दर्प से युक्त होने पर शौर्य 'शौर्य' नहीं रह जाता।[2] उन्होंने निर्बलों पर क्रोध की तीक्ष्णता, महा-पापियों के प्रति धीरता, बुद्धि में छल व वाणी में कटुता नीच लोगों के शौर्य को माना है।[3]

उपर्युक्त नीतियों के अतिरिक्त कविवर क्षेमेन्द्र ने अन्य आचरण सम्बन्धी नीतियों का प्रतिपादन किया है। कृतघ्नता, स्त्री के प्रति प्रगाढ़ प्रेम के कारण परवशता, स्वप्रशंसा, बाण सदृश चुभने वाली कटु वाणी, चुगलखोरी, सम्मान को मिटा देने वाली याचना, भाई बन्धुओं एवं सम्बन्धियों का अपमान एवं विवाद में मदान्धता आदि को वर्जित बताया गया है तथा प्रमाणस्वरूप रामायण व महाभारतादि ग्रन्थों के कथानकों को उद्धृत किया गया है।[4] क्रोध के प्रसङ्ग में कवि ने क्रोध के वशीभूत

---

1. एतदेव परं शौर्यं यत्परप्राणरक्षणम्।
   नहि प्राणहर: शूर:शूर: प्राणप्रदो र्थिनाम्॥ दर्पदलनम् 5/23.
2. शौर्येण दर्प: पुरुषस्य कोऽयं दृष्टस्तिरश्चामपि शूरभाव:।
   औचित्यहीनं विनयव्यपेतं दयादरिद्रं न वदन्ति शौर्यम्॥ वही, 5/2.
3. अशक्ते रौद्रता तैक्ष्ण्यं तीव्रतापेषु धीरता।
   छद्मधीर्वाचि पारुष्यं नीचानां शौर्यमीदृशम्॥ वही, 5/21.
4. चारुचर्या, श्लोक 25-32.

न होने का उपदेश दिया है तथा क्रोधी को भी नाराज न करने के लिए उपदिष्ट किया है ।[1] 'क्रोध.पापस्य कारणम्' मनीषियों द्वारा कहा गया है । गीता भी क्रोध को सर्वनाश का हेतु मानती है ।[2] सज्जन-श्रुतियों व स्मृतियों द्वारा बताये गये आचरण न छोड़ें, अग्नि, गौ, गुरु और देवताओं को पैर से तथा घी को जूठे हाथों से स्पर्श न करें तथा किसी के वध के लिए मारण आदि तांत्रिक प्रयोग न करे तथा अन्त में सन्ताप पहुँचाने वाले काम जीवन में कभी न करे - ऐसा उपदेश[3] क्षेमेन्द्र [illegible] प्रवृत्ति हेतु दिया है । इस तरह के उपदेश मनुस्मृति से प्रेरित [illegible] हैं क्योंकि मनुस्मृति में ऐसे उपदेशों की बहुलता है । प्रतिलोम विवाह का [illegible] करते हुए ययाति द्वारा शुक्र की कन्या से विवाह कर प्राप्त म्लेच्छता के [illegible] द्वारा पुष्ट प्रमाण भी दिया गया है ।[4]

---

1. [illegible] धीमान् गच्छेदधीनताम् ।
   [illegible] भीमः [illegible] रिपुवक्षसः ॥ चारुचर्या, श्लोक 38.

2. क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
   स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ गीता श्लोक

3. चारुचर्या श्लोक 83, 85, 87, 92 व 94.

4. प्रतिलोमविवाहेषु न कुर्याद्धुन्नतिस्पृहाम् ।
   ययातिः शुक्रकन्यायां सस्पृहो म्लेच्छतां गतः॥ चारुचर्या श्लोक 86.

कविवर क्षेमेन्द्र ने द्वेष, प्रेम, अभिमान व नम्रता को क्रमशः दोष, उन्नति, पतन व सर्वोन्नति का कारण माना है ।[1]

दया, सत्य व निर्मल शील की महत्ता का वर्णन करते हुए कविवर ने कहा है कि विवेकशील लोगों की दया सत्य व निर्मल शील ही क्रमशः प्रशस्त विद्या, अक्षय धन व उत्तम कुल है ।[2]

उन्होंने स्वभाव को अपरिवर्तनीय मानते हुए कहा है कि प्राणियों का सहज स्वभाव बदला नहीं जा सकता ।[3] वे भाग्यवादी भी थे तथा भाग्य पर विश्वास करते थे । उन्होंने सुख-दुःख को दैवाधीन मानते हुए[4] यह कहा है कि मनस्वी लोग अपने कष्ट के लिए भाग्य को ही कारण मानते हैं ।[5]

इन सभी उपदेश व नीतिपरक तथ्यों के पालन में ही इनकी सार्थकता मानते हुए कविवर ने कहा है कि दूसरों को उपदेश देने में तो सभी पण्डित होते हैं ।[6]

---

1. द्वेषः कस्य न दोषाय प्रीतिः कस्य न भूतये ।
   दर्पः कस्य न पाताय नोन्नत्यै कस्य न्.ता ॥ दर्पदलनम् 1/32.
2. दयैव विदिता विद्या सत्यमेवाक्षयं धनम् ।
   अकलङ्कविवेकानां शीलमेवामलं कुलम् ॥ वही, 1/30.
3. स्वभावः सर्वभूतानां सहजः केन वार्यते । वही, 2/69.
4. सुखदुःखोदये जन्तोर्दैवाधीने धनेन किम् । वही, 2/57.
5. निकारे कारणं दैवं मन्यन्ते हि मनीषिणः। वही, 3/143.
6. अहो परोपदेशेषु सर्वो भवति पण्डितः । वही, 3/59.

याचना न करने वाले को सर्वोपरि महत्ता देते हुए कविवर ने कहा है कि कुलीन आदरणीय होता है, कुलीन से कलावान् तथा कलावान् की अपेक्षा विद्वान्, विद्वान् की अपेक्षा सत्पुरुष, सत्पुरुष की अपेक्षा धनवान् आदमी, उसकी भी अपेक्षा दानशूर व्यक्ति होता है लेकिन जो कभी भी याचना नहीं करता है वह व्यक्ति दान-शूर पुरुष की कीर्ति को भी जीत लेता है ।[1]

इस प्रकार कविवर के नीत्युपदेशपरक विवेचन से स्पष्ट होता है कि वे बहुत ही उदार, नीतिज्ञ एवं उपदेशक भी थे । उनकी धर्म, धन, काम, विद्या, परोपकार, विनय, अहिंसा, वाह्य एवं अन्त:करण की शुचिता, दान, तप, मोक्ष, ब्रह्मचर्य एवं सभी लौकिक एवं पारलौकिक जीवनोपयोगी सद्गुणों एवं सद्पक्षों का बहुत ही यथार्थ रूप में प्रतिपादन किया है । इन वर्णनों से उनके गहन अध्ययन एवं अनुभव का ज्ञान प्राप्त होता है । ये वर्णन पाठकों के हृदय में अपना अमिट स्थान बनाने में भी पूर्णत: सक्षम हैं ।

---------::0::---------

---

1. मान्य: कुलीन: कुलजात् कलावान्
   विद्वान् कलाज्ञाद्विदुष: सुशील: ।
   धनी सुशीलाद् धनिनोऽपि दाता
   दातुर्जिता कीर्तिरयाचकेन ॥ चतुर्वर्गसङ्ग्रह: 1/26.

अध्याय - पंचम

कविवर क्षेमेन्द्र के काव्यों में विभिन्न वर्गों पर अधिक्षेप

व्यङ्ग्यप्रधान काव्यों की रचना में कविवर क्षेमेन्द्र अप्रतिम हैं। इनकी सिद्ध लेखनी पाठकों पर चोट करना जानती है। इनके हास्य का आघात बहुत ही सधा हुआ होता है, परन्तु इतनी सुन्दरता से होता है कि समाज का नग्न चित्र हमारे सामने स्पष्ट हो जाता है। यह हास्य विध्वंसक न होकर समाज के पुनर्निर्माण की भावना से अनुप्राणित होता है। तत्कालीन समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार में लिप्त समाज के विभिन्न शोषण करने वाले वर्गों पर कवि ने सीधी चोट करने वाली व्यङ्ग्यात्मक शैली में करारा अधिक्षेप किया है। यद्यपि कायस्थ वर्ग ही विशेषतया उनके उपहास का पात्र है तथापि वेश्या, ज्योतिषी, वैद्य, संन्यासी, स्वर्णकार, व्यापारी, नट व गायक वर्ग पर कवि ने व्यङ्ग्य कसा है।

इनके द्वारा विभिन्न वर्गों पर किये गये अधिक्षेप इस प्रकार हैं -

कायस्थों पर अधिक्षेप

कविवर क्षेमेन्द्र के व्यङ्ग्यप्रधान रचनाओं का एकमात्र उद्देश्य सहृदय व्यक्तियों का मनोरञ्जन ही नहीं, अपितु समाज में प्रसृत कुप्रवृत्तियों, अनाचारों, व्यभिचारों व प्रवञ्चनाओं का उन्मूलन कर स्वस्थ वातावरण का निर्माण भी था। उन्होंने ग्राम के पटवारी [लेखपाल] से लेकर जज [न्यायाधीश] के कार्यों तक की समान आलोचना की है। उस समय कायस्थ वर्ग ही जज, पटवारी, दिविर [क्लर्क] व अन्य प्रशासनिक उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर आरूढ़ था। यह विभिन्न प्रवञ्चना के तरीकों को अपनाकर समाज के सीधे-सादे लोगों का शोषण करता था। समयमातृका में जजों [भट्टों] द्वारा

रिश्वत लेकर स्वयं को छल-कपट का आकार सिद्ध करते हुए वेश्या को ही धनी कामुक की सम्पत्ति का स्वामिनी बनने का विजय पत्र देना दिखाया गया है ।[1] इस प्रकार का शोषण आधुनिक समाज में भी प्रासङ्गिक है । इसीलिए डॉ0 कीथ ने भी कहा है कि क्षेमेन्द्र के इन व्यङ्ग्यात्मक चित्रणों मे आधुनिकता दिखायी देती है ।[2]

कायस्थवर्ग पूर्वकालों में भी प्रशासनिक उच्च पदों पर था जो अपने पदों का दुरुपयोग करता था । वह वर्ग पूर्वकालीन नाटककार शूद्रक की लेखनी द्वारा भी आलोचित था । इन्होंने राजकरण (कचेहरी) रूपी समुद्र में कायस्थ गण को विषैले सर्प सदृश बताया है ।[3] कविवर क्षेमेन्द्र ने भी तत्कालीन राजा अनन्त के शासन में कायस्थ वर्ग के आधिपत्य में व्याप्त भ्रष्टाचार का व्यङ्ग्यात्मक वर्णन किया है । इसमें कवि ने कायस्थ को व्यङ्ग्यरूप में परमेश्वर बताया है ।[4] कविवर ने सम्पूर्ण प्रपञ्च व माया

---

1. उत्कोचारब्धसंघट्टैर्भट्टैः कूटस्थादिभिः ।
   सा दिष्टाभीष्टसंपत्तिर्जग्राह जयपट्टकम् ॥ समयमातृका 2/42.
2. History of Sanskrit Literature, p. 243 - Dr. Keith.
3. चिन्तासक्तनिमग्नसलिलं दूतोर्मिशङ्खाकुलं,
   पर्यन्तस्थितचारनक्रमकरं नागाश्वहिंसाश्रयम् ।
   नानावाशककङ्कपक्षिरचितं कायस्थसर्पास्पदं,
   नीतिक्षुण्णतटं च राजकरणं हिंस्रैः समुद्रायते ॥ मृच्छकटिकम् 9/14
4. येनेदं स्वेच्छया सर्वं मायया मोहितं जगत् ।
   स जयत्यजितः श्रीमान् कायस्थ-परमेश्वरः ॥

   - नर्ममाला 1/1.

से परिपूर्ण कायस्थ पर प्रसन्न कलि द्वारा साधु लोगो के विनाश हेतु पृथ्वी पर भेजना दर्शाया है ।[1] पृथ्वी पर आकर कायस्थवर्ग ने विभिन्न पदों पर होकर लोगों का शोषण करना शुरू किया । इन विभिन्न पदों मे दिविर पद व्यापक पद था जो विभिन्न क्षेत्रों में कार्यकारी था । इस दिविर शब्द से उस पद का बोध होता है जिसे आधुनिक भाषा में क्लर्क कहते हैं । इस शब्द की कविवर ने बहुत ही व्यङ्ग्यात्मक ढग से परिभाषा की है ।[2] इस वर्ग के कलम ‖लेखनी‖ को कवि ने अस्त्र की संज्ञा दी है जिसके माध्यम से लोगों के धन व सम्पत्ति का शोषण किया जाता था ।[3] कायस्थ वर्ग अपनी लेखनी का दुरुपयोग कर रेखामात्र को हटाकर सहित को रहित करने में तनिक भी संकोच नहीं करता था ।[4] इसके अतिरिक्त सभी अंकों को मिटा देना,

---

1. अ. कृतविश्वप्रपञ्चाय नमो मायाविधायिने ।
   उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिये पुरहारिणे ॥ नर्ममाला 1/7.

   ब. तुष्टस्मेत्य वरदः कलिः साक्षादभाषत ।
   सर्वदेवविनाशाय गच्छ वत्स महीतलम् ॥ वही, 1/11.

2. दैत्यक्षये कृते यस्माद् भवता दिवि रोदितम् ।
   तस्मात् त्वं दिविरो नाम भुवि ख्यातो भविष्यसि ॥ वही, 1/15

3. अनेन कलमास्त्रेण मद्दत्तेन प्रहारिणा ।
   विच्छिन्नदीपकुसुमान् धूपहीनान् निरम्बरान् ॥
   भ्रष्टालयान् धूलिलिप्तान् हाहाभूतान् श्वभिर्वृतान् ।
   करिष्यसि सुरान् सर्वान् भक्तपानीयकाङ्क्षिणः ॥ वही, 1/12-13.

4. एते हि चित्रगुप्तास्चित्रधियो गुप्तकारिणो दिविराः ।
   रेखामात्रविनाशात् सहितं कुर्वन्ति ये रहितम् ॥ कलाविलासः 5/11.

व्यय वृद्धि करना, उत्पन्न व गोपन इत्यादि विभिन्न ठगी के क्रियाओं के माध्यम से यह वर्ग समाज के सीधे-सादे लोगों की सम्पत्ति व धन से हीन करने में पूर्णतया सफल था। इस प्रकार ठगने की विभिन्न विधाओं को कला संज्ञा देते हुए क्षेमेन्द्र ने कायस्थों की ठगी का चरमोत्कर्ष रूप में वर्णन कर पर्दाफाश किया है।[1] इनके द्वारा अनपेक्षित लोगों के भी ठगे जाने का कवि ने वर्णन कर यह सिद्ध कर दिया है कि व्यक्ति यम-पाश से तो मुक्त हो सकता है किन्तु इस संसार में कौन है जो इनके पाश में न फँसे? वे सम्पूर्ण देवता, ब्राह्मण, पुर, नगर, ग्राम इत्यादि को ठगने के साथ ही साथ अपने गुरु को भी ठगने की आकांक्षा वाले होते हैं।[2] कायस्थवर्ग द्वारा विभिन्न ठगी के कार्य करने का उद्देश्य धनमात्र की ही प्राप्ति था। इस प्रकार स्पष्ट है कि इतने ठगी के साधनों व तरीकों को प्रयोग करता हुआ वह कायस्थवर्ग धन से तृप्त नहीं होता था इसीलिए वह रात-दिन दस्युवृत्ति करता हुआ धनसमुद्र को सोखने में वाडवाग्निसदृश था।[3]

---

1. कलाविलास: 5/13-15.

2. लुण्ठितसकलसुरद्विजपुरनगरग्रामघोषसर्वस्व: ।
पुनरपि हरणाकाङ्क्षी व्रजति गुरुं दीक्षितो दिविर: ॥ देशोपदेश: 8/5.

3. अलक्ष्यं भक्षयन्त्येव क्षितीशानां दिवानिशम् ।
समुद्रकोषमखिलं कायस्था वाडवाग्नय: ॥
गायनक्षपितालक्ष्मी: दस्युनिर्दलिता: दिश:
कायस्थदु:स्थापृथिवी राज्ञामज्ञावृता: सभा: ॥ द०व० 10/12-13.

इस प्रकार कायस्थ सेवाकाल में, लुभाने मे तथा ठगने में बहुरूपों[1] का प्रयोग करता हुआ दिन रात शास्त्रनिन्दक कार्य करता था ।[2] कायस्थ को दैवी प्रकोपों की भाँति ही जनता के दु:ख का कारण बताते हुए कवि ने स्वीकार किया है कि वह धूर्तता एवं क्रूरता का मिश्रित रूप है ।[3]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कायस्थ वर्ग शासन के विभिन्न पदों पर विराजमान था जिसके सम्पर्क में समाज के सभी वर्ग के लोगों को जाना पड़ता था और उनके ठगी का शिकार होना पडता था । कवि ने बहुत ही खुले शब्दों में कायस्थों पर तीक्ष्ण अधिक्षेप किया है जो उनके अदम्य साहस व साहसिक कवित्व-शक्ति का परिचायक है ।

दिविर ।क्लर्क। पद पर अधिष्ठित कायस्थ वर्ग ने अपनी लेखनी के दुरूपयोग से सारे विश्व को आक्रान्त कर काले हाथों से शोषित धन का दुरूपयोग करता था ।[4]

---

1. सेवाकाले बहुमुखैर्लुब्धकैर्बहुबाहुभि: ।
   व चने बहुमायैश्च बहुरूपै:सुरारिभि:॥ नर्ममाला 1/23.

2. देवापहारिणा तेन गोग्रासलवणच्छिदा ।
   भुज्यते पीयते भूरि दिविरेण दिवानिशम् ॥ वही, 1/26.

3. काकल्लौल्यं यमात् क्रौर्यं स्थपतेर्दृढघातिताम् ।
   एकैकाक्षरमादाय कायस्थ: केन निर्मित: ॥

4. कलमाक्रान्तविश्वस्य मषीकृष्णस्य भोगिन: ।
   आसन्नबन्धनस्यान्तेदिविरस्य धनेन किम् ॥ वही, 2/54.

ग्राम दिविर व जीवनदिविरादि भी, जो कायस्थ वर्ग के ही थे लोगों का शोषण करते थे। कविवर क्षेमेन्द्र ने बहुत ही अभद्र शब्दों में इन पर व्यङ्ग्य किया है[1] तथा साथ ही साथ कायस्थ सुन्दरियों पर भी तीखा व्यङ्ग्य करते हुए उन्हें गलत ढंग से उपार्जित धन का खर्च करने वाली व चरित्रहीन बताया है।[2]

वेश्याओं पर अधिक्षेप

वेश्यायें भी समाज के धनी, युवा व अन्य वर्ग के लोगों को अपने प्रेम पाश में फँसाकर लोगों के धन-सम्पत्ति को हरण कर उनका शोषण करती थीं। अतः कविवर क्षेमेन्द्र ने वेश्याओं पर भी कटु उपहास किया है। इन्होंने इनके प्रच्छन्न प्रयोजन को समाज के सामने नग्न रूप में चित्रित किया है। 'समयमातृका' तो पूर्णतः वेश्याओं के प्रच्छन्न प्रयोजन को सिद्ध करने वाले उपायों से संवलित काव्य ही है जिसे कवि ने स्वतः कहा है।[3]

वेश्यायें प्रायः सभी कालों में लोगों को असत् कार्य में लगाने तथा समाज की दूषिका के रूप में कार्य करती हैं। इसीलिए प्रायः सभी नीतिकारों ने वेश्याओं को अस्पृश्य माना है। इनकी भर्त्सना करने में कोई भी नीतिकार चूका नहीं है। शूद्रक

---

1. लिलेख चीरीचीत्कारतारं कलमरेखया।
   अन्त्याङ्गुल्या सनिर्घोषं लालयोत्पुसिताक्षरः॥ नर्ममाला 1/132.
2. या पपौ याचितं चामं भग्नस्यूताश्मभाजने।
   तयैव पीयते रौप्यपात्रे कस्तूरिका मधु॥ वही, 1/147.
3. क्षेमेन्द्रेण रहस्यार्थमन्त्रतन्त्रोपयोगिनी।
   क्रियते वाररामाणामियं समयमातृका॥ समयमातृका 1/3.

ने मृच्छकटिकम् में जहाँ वेश्याओं को कामाग्नि बताते हुए यह दिखाया है कि इस कामाग्नि में धन व यौवन होम किये जाते हैं ।[1] और यह भी कहा है कि वेश्यायें कामुकों को धनहीन कर तन से भी दुर्बल कर देती हैं ।[2] नीतिकार भर्तृहरि ने भी इसी तरह से ही वेश्याओं पर अधिक्षेप किया है जो शूद्रक[3] के भाव से पूर्णतः साम्य रखता है । नीतिदर्पणकार चाणक्य ने शूद्रक जैसा ही भाव दिया है और स्पष्ट किया है कि वेश्यायें फलरहित वृक्ष की भाँति कामुकों को धनहीन कर छोड़ देती हैं ।[4] कविवर क्षेमेन्द्र ने भी कामियों द्वारा वेश्या-संसर्ग धन विनाश हेतु बताया है ।[5] वेश्यायें पूर्व में विभिन्न हाव-भाव से दृढानुराग दर्शाकर कामुकों को प्रेमपाश में फँसाकर उनसे

---

1. अयं च सुरतज्वालः कामाग्निः प्रणयेन्धनः ।
   नराणां यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च ॥ मृच्छकटिकम् 4/11.

2. इहसर्वस्वफलिनः कुलपुत्रमहाद्रुमाः ।
   निष्फलत्वमलं यान्ति वेश्याविहगभक्षिताः ॥ वही, 4/10.

3. वेश्याऽसौ मदनज्वाला रूपेन्धनसमेधिता ।
   कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च॥ शृङ्गारशतकम्, श्लोक 90.

4. निर्धनं पुरुषं वेश्या प्रजा भग्नं नृपं त्यजेत् ।
   खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वाचाभ्यागतो गृहम् ॥ चाणक्यनीतिदर्पण 2/17.

5. विरसा सेव्यते वेश्या जनैर्नित्यरजस्वला ।
   न कामाय न धर्माय धननाशाय केवलम् ॥ देशोपदेशः 3/30.

धन दोहन कर घृणाभाव दर्शाने लगती हैं ।[1] इसी तरह कामुक को धनहीन कर उन्हें ईख की खोई के समान छोड़ देने के लिए वृद्धा माता कलावती वेश्या को उपदेश भी देती हैं ।[2] वेश्यायें विभिन्न हाव-भावों के माध्यम से अनेक कुकृत्यों को करके कामिजनों को अपना शिकार बनाती हैं । इन्हीं प्रेमपाश में फँसाने व धन दोहन करने आदि क्रियाओं में प्रयुक्त चालाकियों को कविवर ने व्यङ्ग्यात्मक ढंग से 'कला' संज्ञा देते हुए इनके चौंसठ कलाओं का विस्तार से वर्णन किया है ।[3] वेश्याओं द्वारा दिखाये गये हाव-भाव, प्रेम-व्यवहार व स्नेह आदि सभी कृत्रिम हुआ करते हैं ।[4] ये वेश्यायें मोहन क्रिया में, रति में तथा सैकड़ों माया दिखाने में क्रमशः बाला, प्रौढ़ा व वृद्धा भाव दिखाती हुई तृप्त नहीं होतीं ।[5] वस्तुतः इनमें न तो स्नेह है न ही

---

1. वेश्यालताः सरागपूर्वं तदनु प्रलीनतनुरागम् ।
   पश्चादपगतरागं पल्लवमिव दर्शयन्ति निजचरितम् ॥ समयमातृका 8/136.

2. निष्पीतसारं विरतोपकारं क्षुण्णेक्षुशल्कप्रतिमं त्यजेत्तम् ।
   लब्धाधिवाससंक्षयकारि शुष्कं पुष्पं त्यजत्येव हि केशपाशः ॥ वही, 5/78.

3. हारिण्यश्चटुलतरा बहुलतराङ्गाश्च निम्नगामिन्यः ।
   नद्य इव जलधिमध्ये वेश्याहृदये कलाश्चतुःषष्टिः ॥ कलाविलासः 4/2.

4. कृत्रिमं दृश्यते सर्वं चित्तसद्भाववर्जिता ।
   सूत्रप्रोतेव चपला नर्तकी यन्त्रपुत्रिका ॥ देशोपदेशः 3/11.

5. मौग्ध्ये बाला रतौ प्रौढा वृद्धा मायाशतेषु च ।
   सा कामरूपिणी वेश्या रक्तमात्रेण तुष्यति ॥ वही, 3/14.

स्पृहा बल्कि ये कृत्रिम रागयुक्त होकर समाज के विभिन्न वर्ग के लोगों को अधम बनाती हैं ।[1] व्यसवकारिणी नीचोपभोग्या सदाचारपराङ्मुखी वेश्या कामुकों को स्ववश में कर उनके धनवैभव को हस्तगत करने के निमित्त प्रथमपुष्पिता बाला बनकर केवल उसके ही लिए प्रयुक्त होने का बहाना बनाती है[2] जबकि कामुकों के आने जाने का क्रम लगा रहता है तथा उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग सहस्रजनमृदित हैं ।[3] फिर भी लोग कामान्ध होकर सर्वस्व लुटाकर वेश्या संसर्ग में फँसते हैं तभी तो भर्तृहरि ने भी कटु शब्दों में वेश्याङ्ग पर अधिक्षेप करते हुए कुलीन पुरुषों को सचेत किया है ।[4] लोग जानकर भी विष पान करते हैं[5] फिर भी कविवर ने वेश्याओं के कृत्रिम रागजन्य कष्टों को नग्न रूप में चित्रित करने का साहस किया है ।

---

1. धीमान् मूढो धनी निःस्वः शुचिश्चौरो लघुर्गुरुः ।
   भवितव्यतयेवायं वेश्यया क्रियते जनः ॥ देशोपदेशः 3/15.

2. शयने हं तवाद्यैव बाला प्रथमपुष्पिता ।
   इत्युक्त्वा कामुकान् प्रातर्वेश्या भुङ्क्ते सदोत्सवम् ॥ वही, 3/19.

3. अ. निर्यात्येको विशत्यन्यः परो द्वारि प्रतीक्षते ।
   यस्याः सभेव सा वेश्या कार्यार्थिजनसङ्कुला ॥ वही, 3/12.

   ब. कटिर्विटशतैर्घृष्टा पान्थपीतोज्झितं मुखम् ।
   स्तनौ सहस्रमृदितौ यस्याः कस्यास्तु सा निजा ॥ वही, 3/25.

4. कश्चुम्बति कुलपुरुषो वेश्याधरपल्लवं मनोज्ञमपि ।
   चारभटचोरचेटकनटविटनिष्ठीवनशरावम् ॥ श्रृङ्गारशतकम्, श्लोक 91.

5. क्व तदस्ति न जानीमः पिबामः किं न तद् विषम् ।
   तथैव दृश्यते येन प्रपुराणापि पुंश्चली ॥ देशोपदेशः 3/35.

वेश्याओं के इस तरह के कार्य वस्तुत: धनमात्र निमित्तक हैं । ये धन के निमित्त अपने अङ्ग प्रत्यङ्ग को कामुकों के निमित्त समर्पित कर देती हैं ।[1] वस्तुत: ये धनी कामुकों को तो वशीकरणचूर्ण से पोषण कर उन्हें अस्थिमात्रावशिष्ट छोड़ती हैं ।[2] इनके जितने भी हाव-भाव हैं सब कृत्रिम हैं तभी तो नीतिकारों व कवियों ने लोगों को वेश्याओं से दूर रहने के लिए अपनी लेखनी के माध्यम से उनके कलुषित विचारों का पर्दाफाश कर सन्मार्ग का बोध कराया है । नाटककार शूद्रक ने भी इन हाव-भावों को कृत्रिम बताते हुए इन्हें वर्जनीय बताया है ।[3] इसी तरह नीतिकार भर्तृहरि ने भी इन पर व्यङ्ग्य करते हुए भ्रष्टोपजीव्य बताया है ।[4] कविवर क्षेमेन्द्र ने तो वेश्याओं पर विस्तार में व्यङ्ग्य कर उनके संसर्ग से दूर रहते हुए कभी भी

---

1. स्तनौ मुखोच्छिष्टौ वेश्याया: खण्डितोऽधर: ।
   न रागाय न लज्जायै केवलं पण्यवृद्धये ॥ देशोपदेश: 3/23.

2. वितीर्णैर्भवता नित्यं वशीकरणचूर्णकै: ।
   अस्थिशेषा: कृतास्ते ते यया धनिककामुका: ॥ नर्ममाला 3/55.

3. एता हसन्ति रुदन्ति च वित्तहेतो-
   र्विश्वासयन्ति पुरुषं न च विश्वसन्ति ।
   तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन
   वेश्या श्मशानसुमना इव वर्जनीया: ॥ मृच्छकटिकम् 4/14.

4. जात्यन्धाय च दुर्मुखाय च जराजीर्णाखिलाङ्गाय च
   ग्रामीणाय च दुष्कुलाय च गलत्कुष्ठाभिभूताय च ।
   यच्छन्तीषु मनोहरं निजवपुर्लक्ष्मीलवश्रद्धया,
   पण्यस्त्रीषु विवेककल्पलतिकाशस्त्रीषु राज्येत क: ॥ शृंगारशतकम् 91.

विश्वास न करने के लिए कहा है साथ ही महाभारत से श्रृंगी ऋषि का वेश्या द्वारा श्रृंगारी बनाया जाना उदाहरण देकर पुष्ट किया है ।[1]

कवि ने वस्तुतः वेश्याओं के हर हाव-भाव का परमोद्देश्य धनार्जन ही बताते हुए सिद्ध भी किया है । समयमातृका में कवि ने वेश्या के कुकृत्यों का विस्तृत वर्णन किया है । संसार के प्राचीनतम व्यवसाय में प्रविष्ट होने वाली एक युवती कलावती का, नाई, जो नियमित माध्यम होता है, एक "उलूकमुखी, काक-ग्रीवा व बिल्ली के समान नेत्रों वाली" वृद्ध कुट्टनी कंकाली से उपदेश के लिए परिचय कराता है । इस वृद्ध पटु के परामर्श से यह युवती गणिका एक प्रगल्भ युवक को अपने कटाक्ष से वशीभूत करके उसके मूर्ख पिता की सम्पूर्ण सम्पत्ति का अपहरण कर लेती है। सर्वाधिक वेश्याओं की स्वार्थपरता सिद्ध करने वाला स्थल वह है जहाँ यह वृद्धा काश्मीर के सम्पूर्ण क्षेत्र में अपने उन अभियानों का वर्णन देती है, जिसमें उसने फूल बेचने वाली, स्त्री जादूगरनी, भिक्षुणी और संन्यासिनी के विभिन्न वेशों किन्तु सदैव एक गणिका के रूप में इधर-उधर भ्रमण किया था ।

वेश्याओं के कपट व मायायुक्त कार्यों का तीक्ष्ण शब्दों में वर्णन किया गया है ।[2]

---

1. वेश्यावचसि विश्वासी न भवेन्नित्यकैतवे ।
   ऋष्यश्रृङ्गोऽपि निःसङ्गः श्रृंगारी वेश्यया कृतः ॥ चारुचर्या श्लोक 48.

2. इत्येवं बहुहृदया बहुजिह्वा बहुकराश्च बहुमायाः ।
   तत्वेन सत्यरहिता को न जानाति स्फुटं वेश्याः ॥ कलाविलास 4/39.

वेश्याओं के सम्पर्क में चेटी, विटादि का भी वर्णन मिलता है। ये वेश्याकर्म में सहयोगी थे। कवि ने विट व चेटादि पर भी तीक्ष्ण व्यङ्ग्य करते हुए वेश्या पर भी घृणोत्पादक उपहास किया है।[1]

वेश्यायें वस्तुत. सर्वगुणसम्पन्ना होती हैं। वे सत्यविहीन, केवल धन से ही प्रेम करने वाली तथा विचारहीन होते हुए भी मुखमधुरा होती हैं।[2] प्रेमी मात्र को कृत्रिम प्रेम दर्शाने वाली वेश्यायें हृदय से केवल धन के प्रति प्रेम रखने वाली होती हैं।[3]

कविवर क्षेमेन्द्र ने विभिन्न कथानकों के माध्यम से भी वेश्याओं को कृत्रिम राग व धनमात्र से प्रेम रखने वाली सिद्ध किया है। राजा विक्रमसिंह, विलासवती नामक वेश्या के प्रेम में संसक्त होकर, अन्त में नष्ट हो जाता है।[4]

---

1. वेश्याभिस्थूत्कृतमुखः सुजनेन विवर्जितः ।
   अमङ्गलाकृतिरिव भ्राम्यते विरतं विटः॥ देशोपदेशः 5/6.

2. एताः सत्यविहीना धनलवलीलाः सुखक्षणाधीनाः ।
   वेश्या विशन्ति हृदयं मुखमधुरा निर्विचाराणाम् ॥ कलाविलास 4/22.

3. चित्रमियं बहुवित्तं क्षपयति वेश्यापि मत्कृते तृणवत् ।
   प्रीतिपदवीविसृष्टो वेश्यानां धननिबन्धनो रागः ॥

   मिथ्या धनलवलोभादनुरागं दर्शयन्ति बन्धक्यः ।
   तदपि धनं विसृजति या कस्तस्याः प्रेम्णि सन्देहः ॥ वही, 4/19-20.

4. कलाविलास, चतुर्थ सर्ग

वृद्धा वेश्या पर भी कविवर ने हास्यपूर्ण व्यङ्ग्य किया है ।[1]

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र ने वेश्याओं पर तीखा व्यङ्ग्य करते हुए सिद्ध किया है कि वेश्यायें समाज की दूषिका के रूप में कार्य करती हुई कपटपूर्ण आचरण से समाज के मूर्ख, शास्त्रोन्मादी, मद्यपान करने वालों आदि पथभ्रष्ट लोगों के तन, मन व धन का शोषण करती हैं ।[2]

वेश्यायें अपने प्रच्छन्न प्रयोजन के सिद्धि हेतु ही विभिन्न हाव-भाव के माध्यम से प्रेम दर्शाती हैं । कलावती को उपदेश देती हुई जरण वेश्या भी विभिन्न कपटपूर्ण आचरणों की शिक्षा देती है ।[3]

---

1. यस्मस्मेशा वेश्यावृद्धा: श्रमणा: सदैवता: गणिका: ।
   एता: कुलनारीणां चरन्ति धनशीलहारिण्य: ॥ कलाविलास 9/23.

2. गतानुगतिको मूर्ख: शास्त्रोन्मादश्च पण्डित: ।
   नित्यक्षीबश्च वेश्यानां जङ्गमा: कल्पपादपा. ॥ समयमातृका 5/67.

3. अ. शिर:शूलादिकं व्याधिमनित्यमजुगुप्सितम् ।
   अवहारोपयोगाय पूर्वमेव समादिशेत् ॥ वही, 5/69.

   ब. स्वप्ने सदैव प्रलपेत्सरागं सर्वं च तन्नामनिबद्धमेव ।
   न चास्य तृप्तिं सुरतेषु गच्छेद्भयस्य कुर्याच्च मुहुर्निषेधम् ॥
   वही, 5/73.

वह जरण वेश्या उसे धन रहते कामुक को प्रेम करने के लिए तथा धनहीन होने पर कामुक को ईख की खोई के समान त्याग कर देने का उपदेश देती है ।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि वेश्यायें तत्कालीन समाज के बहुधा लोगों को अपने कपटपूर्ण प्रेम-जाल में फँसाकर उनके तन-धन का शोषण करती थीं । अत: कविवर क्षेमेन्द्र ने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में वेश्याओं पर अधिक्षेप के माध्यम से उनके कपटपूर्ण आचरण को सबके समक्ष प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है ।

<u>कदर्यों (कंजूसों) पर अधिक्षेप</u>

कविवर क्षेमेन्द्र वस्तुत: समाज के एक सूक्ष्म आलोचक थे जिनको व्यङ्ग्यात्मक प्रहार से समाज का कोई भी दूषित तत्त्व अछूता नहीं है । उन्होंने कंजूसों पर तो बहुत ही कटु उपहास किया है । उन्होंने कृपण की ऐसी विशेषताओं का उल्लेख किया है जिससे यह पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है कि वह तो सामाजिक प्राणी ही नहीं है । कंजूस के पास से सभी जन श्मशान से बन्धु-बान्धव की ही भाँति विमुख लौटते हैं । कृपण धनसंचय कर रात में भी लोगों से सशंकित उलूकवत् जागरण करता है । उसकी वाणी भी नीरस होती है । क्योंकि कृपण पूर्णरूप से नीरस स्वभाव वाला होता है । इसे कवि ने बहुत ही मनोहारी ढंग से प्रस्तुत किया है ।[2] कृपण सदृश कोई दाता

---

1. संधारयेत्तं च विशेषवित्तं यावन्न नि:शेषधनत्वमेति ।
   पुन:पुन: स्नेहलवार्द्रवक्त्रा दीपं यथा दीपकदीपवर्ति: ॥ समयमातृका 5/77

2. नीरसस्य कदर्यस्य माधुर्यं वचने कथम् ।
   गृहे लवणहीनस्य लावण्यं वदने कुत: ॥ देशोपदेश: 2/8.

भी नहीं है । वह स्वत: भी नहीं खाता है कवि ने बहुत ही मार्मिक उपहास किया है ।[1]

कृपण बहुत ही स्वार्थी प्रकृति का होता है । वह स्वकार्य पूर्ति के लिए लाभप्राप्त्यर्थ चाण्डाल के चरणों को भी चूम लेता है । कृपण निठुर, निरपेक्ष, शठ व आर्जवरहित आदि लक्षणों से परिपूर्ण होता है तथा निर्जन व उत्सव तथा कथाहीन घर ही कृपण का घर हो सकता है ।[2] वह मन्दाग्नि व पाण्डु आदि रोगों से पीड़ित होता हुआ दुर्गन्धयुक्त होता है । उसके दाँत भी मलपूर्ण होते हैं । कवि ने कृपण की जर्जर मुखावस्था की हीनोपमा के माध्यम से बहुत ही कटु शब्दों में उपहास किया है जो अपने में उच्च कोटि का वर्णन है ।[3] कवि ने उपहास युक्त वर्णन चरम सीमा तक किया है । कृपण का वस्त्र कभी नष्ट नहीं होता है । वह अपने पितामह द्वारा क्रय किये गये वस्त्र को रखता है ।[4] यदि उसके यहाँ अतिथि आ जाते हैं तो

---

1. कोऽन्य: कदर्यसदृशो दाता जगति जायते ।
   नाश्नात्यदत्त्वा योऽर्थिभ्यो गले हस्तं गृहेर्गलम् ॥ देशोपदेश: 2/12.

2. अ. नैष्ठुर्यं नैरपेक्ष्यं च शाठ्यं क्रौर्यमनार्जवम् ।
   कृतविस्मरणं यच्च तत् कदर्यस्य लक्षणम् ॥ वही, 2/26.
   ब. अचुल्लीपाकमस्मेरमसुखं निर्जनं च यत् ।
   यदुत्सवकथाहीनं तत् कदर्य गृहं विदु: ॥ वही, 2/28.

3. दन्ता ज्वरितमूत्राभा मुखं पक्वफलोपमम् ।
   शुष्काशिन: कदर्यस्य शुष्कचर्मनिभं वपु: ॥ वही, 2/31.

4. पटी पितामहक्रीता तत्पूर्वाप्तश्च शाटक: ।
   दिव्यवस्त्रस्य लुब्धस्य क्षीयतेन युगैरपि ॥ वही, 2/14.

वह अपनी पत्नी के साथ बहाना करके भयंकर झगड़ा और क्रोध में भूखा रहने का निश्चय करता है, जिसके परिणामस्वरूप बेचारे अतिथि को भी भोजनरहित रह जाना पड़ता है ।[1] जीवित रहते हुए कृपण द्वारा संचित धन में से एक टका भी खर्च नहीं होता जबकि म्रियमाण होने पर एक ही बार में सब चला जाता है । वह अर्ध-शताब्दी तक अन्न का संचय करता रहता है कि अकाल पड़े जिससे वह संचित अन्न को गला काटने वाले मूल्य पर विक्रय कर सके । वह दुर्भिक्षाकांक्षी अतिवृष्टि व अनावृष्टि में ही प्रसन्न होता है ।[2] इस प्रकार कृपण के धन की तीन गतियों में से प्रथम दो गतियों से रहित बहुत दिनों से रक्षित धन का उसकी मृत्यु के पश्चात् तृतीय गति ही सम्भव है तथा वह उस संचित धन को छोड़कर उसी प्रकार चल देता है जैसे चोर भागते समय धन को छोड़कर भाग जाते हैं ।[3]

---

1. कदर्यः स्वजनं दृष्ट्वा यदृच्छोपनतं गृहे ।
   करोति दारकलहव्याजेनानशनव्रतम् ॥
   कदर्यः कुशलप्रश्नं न करोति शृणोति वा ।
   अभ्यागतस्य सायाह्ने पश्चाद्भोजनशङ्कया ॥ देशोपदेशः 2/18-19.

2. नृत्यत्यवृष्टिषु पुरा ह्यतिवृष्टिषु नृत्यति ।
   दुर्भिक्षोपप्लवाकांक्षी कदर्यो धान्यगौरवात् ॥ वही, 2/34.

3. अदत्तयुक्तमुत्सृज्य धनं सुचिररक्षितम् ।
   मूषका इव गच्छन्ति कदर्याः स्वक्षये क्षयम् ॥ दर्पदलनम् 2/7.

कृपण वस्तुत: अपनी सम्पत्ति का न तो स्वयं उपभोग करता है और न ही किसी को उपभोग करने का अवसर देना चाहता है । कविवर क्षेमेन्द्र ने श्रावस्ती निवासी नन्द नामक कृपण के कथानक में कृपण को सभी जनों के लिए उद्वेगकारी बताया है ।[1] वह नीच रात में उदरशूल होने पर तोले की मात्रा में पेय लेकर भोजन करता था तथा वह पानीय भी स्वाद विहीन होता था । उसका घर शोभा हीन, सुख व रहित, दीपहीन, जलशून्य एवं कष्टपूर्ण था ।[2]

अन्यत्र भी कवि ने कृपण के घिनौने व गन्दे तथा धूलधूसरित अंगों पर इन्हीं विशेषणों से युक्त वस्त्रों का भी स्पष्ट वर्णन किया है ।[3]

कृपण हृदयहीन होता है । वह सम्पूर्ण जगत् में केवल धन से प्रेम करता है, यहाँ तक कि धनप्रेम में वह अपने सगे-सम्बन्धियों की पीड़ा का अनुभव नहीं कर पाता । सगे-सम्बन्धियों का न रहना, धनव्यय से अच्छा होता है, इस तरह की

---

1. स कदर्य: सदा सर्वजनस्योद्वेगदु:सह: ।
   मूर्धशायी निधानानां कालव्याल इवाभवत् ॥ दर्पदलनम् 2/12.

2. निर्व्यञ्जनं निर्लवणं विनष्टमष्टपाकं विनिविष्टकष्टम् ।
   अदृष्टहासं व्ययसंनिरोधात् तस्याभवद्वेश्म सशोकमूकम् ॥
   विच्छायं नि:सुखानन्दं निर्दीपं जलवर्जितम् ।
   तस्य कष्टं कदर्यस्य परलोकमभूद् गृहम् ॥ वही, 2/14-15.

3. तैलमलकललला ञ्छितमूषकजग्धार्धदुप्पिकाविकट: ।
   शीर्णोर्णाप्रावरणप्रलम्बघनकञ्चुकाञ्चलालोल: ॥ समयमातृका 8/55.

विचारधारा से युक्त कृपण पर कवि ने बहुत ही तीखा व्यङ्ग्य किया है ।[1]

कविवर ने इस प्रकार कष्टमय जीवन व्यतीत करने वाले कृपण के क्लेश व दरिद्र के क्लेश में अन्तर नहीं माना है ।[2] वस्तुतः धनहीनों से अधिक कष्ट कृपण को ही प्राप्त होता है क्योंकि वह उसका उपभोग भी नहीं करता है तथा राजा, जल, चोर व अग्नि के भय से सदैव सशंकित रहता हुआ रात में भी निद्राहीन रहता है ।[3] कृपण तो सारे दिन धन के निधान घड़ों की गणना करके रात्रि में उदर में दर्द के कारण वजन में हल्के लाजाओं से निर्मित पीने योग्य तरल पदार्थ का भोजन करता है ।[4]

---

1. निजगृहदिवसपरिव्ययाच्जागतकन्यकाप्रहारोग्रः ।
   रज्जुग्रथितबुभुक्षितमार्जारीरावनिर्दयप्रकृतिः ॥ समयमातृका 8/57.

2. विच्छाययोर्निर्व्ययोः कष्टक्लिष्टकलत्रयोः ।
   विशेषः क्लेशदोषस्य कः कदर्यदरिद्रयो ॥ दर्पदलनम् 2/4.

3. अशान्तान्तस्तृष्णा धनलवणवारिव्यतिकरैः ।
   गतच्छायः कायश्चिरविरसरूक्षाशनतया ।
   अनिद्रा मन्दोऽग्निर्नृपसलिलचौरानलभयाद्
   कदर्याणां कष्टं स्फुटमधनकष्टादपि परम् ॥ वही, 2/10.

4. कृत्वा समस्तं दिवसं धनानां निधानकुम्भीगणनाविधानम् ।
   स लाजपेयापलमानशीलं मुद्नाति रात्रावुदरं सशूलम् ॥ वही, 2/13.

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि कृपण की भी दशा विचित्र ही होती है । वह अर्जित धन का संचय कर उसका स्वत. उपभोग भी न करता हुआ उसके संरक्षण में आजीवन चिन्तित रहता है तथा मृत्यु समय चोर की भाँति उस संचित धन का परित्याग कर अस्थिमात्रावशिष्ट शरीर भी छोड़ देता है ।

कविवर क्षेमेन्द्र ने अपनी व्यङ्ग्यात्मक शैली के माध्यम से कृपणों के कापटिक एवं दरिद्रतापूर्ण व्यवहार को सबके समक्ष उजागर कर अनुभव करने का अवसर प्रदान किया है । इनकी उपदेशपरक शैली वर्ण्य-विषय-वस्तु का नग्न चित्र उपस्थित करने में पूर्णतः समर्थ है । कविवर ने समाज में धन प्राप्त कर भी कष्ट भोग रहे कृपणों की कृपणता का अनुभव किया तथा उसके दोषों को हृदयाघात करने वाली व्यङ्ग्यात्मक शैली में उसे काव्यबद्ध किया जो वस्तुतः इस शैली की रचनाओं में बेजोड़ है ।

छात्रों पर अधिक्षेप

कविवर क्षेमेन्द्र ने भारत के विभिन्न भागों विशेषतः गौड़ प्रदेश के विद्यार्थियों का भी उल्लेख किया है जो धर्मशास्त्र के अध्ययन के लिए कश्मीर आते हैं । काश्मीरी लिपि का अध्ययन इन्हें कठिन प्रतीत होता है किन्तु यह तथ्य इन्हें अपने को मीमांसा का आचार्य घोषित करने से वंचित नहीं करता है । ये जब आये थे तो भूखे और दुर्बल दिखाई पड़ते थे किन्तु कश्मीर के सुन्दर जलवायु और पोषक भोजन ने इनके शरीर को भर दिया । ये ज्ञान की अपेक्षा भोजन में प्रवीण हो जाते हैं और देवताओं की अपेक्षा गणिकाओं में आसक्ति विकसित कर लेते हैं ।

कविवर क्षेमेन्द्र ने उन छात्रों के वास्तविक दम्भपूर्ण आचरण पर तीखा व्यंग्य किया है । हम उस गौड छात्र को कभी नहीं भूल सकते जो काश्मीर में विद्याध्ययन के लिए जाता है, परन्तु बिना लिपि जाने अहङ्कार से स्तब्ध वह छात्र भाष्य तथा प्रभाकरमीमांसा पढ़ने लगता है ।[1]

दम्भी वह इतना भारी है कि सड़क पर अपने को सबके स्पर्श से बचाता है और अपनी चादर बगल में इस तरह दबाये रहता है कि मानो दम्भ के बोझ से दबे रहने के कारण वह अपने पार्श्व को सिकोड़कर रास्ते में चलता है ।[2] जबकि वह कुट्टनी व वेश्या आदि से संसर्ग करता है और अध्ययन सम्बन्धी व्यय वेश्याओं व द्यूतकर्म में करता है ।[3] क्षेमेन्द्र ने कहीं बहुत ही अशोभनीय व्यङ्ग्य किया है जो छात्र की वेश्यासंसर्ग सम्बन्धी अश्लील भावना है ।[4]

---

1. अलिपिज्ञोऽप्यहंकारस्तब्धो विप्रतिपत्तये ।
   गौडः करोति प्रारम्भं भाष्ये तर्के प्रभाकरे ॥ — देशोपदेश 6/8.

2. स्पर्शं परिहरन् याति गौडः कक्षाकृताञ्चलः ।
   कुञ्चितेनैव पार्श्वेन दम्भभारभरादिव ॥ — वही, 6/9.

3. कितवः कुट्टनी वेश्या चर्मकारः सनापितः ।
   पञ्चगौडशरण्डस्य करण्डग्रन्थिभेदिनः ॥ — वही, 6/14.

4. यस्योपस्पृशतः शौचे पर्याप्ता नाभवन् नदी ।
   स एव भुङ्क्ते वेश्याभिरुत्सृष्टं मधुभोजनम् ॥ — वही, 6/19.

गौडछात्र नापित, चर्मकार, धीवर व सैनिक आदि निम्नकोटि के भ्रष्ट आचरण वाले लोगों के सम्पर्क में रहकर आचरणविहीन होकर छात्र विपरीत आचरण करते थे। वे वेश्यासक्त, द्यूतादि निषिद्ध कर्मों में रहकर चारों आश्रमों में से एक भी आश्रम का पालन करने वाले न थे तथा अभक्ष्य भोजनादि करते थे।[1]

ये छात्र परस्त्री के लिए प्रेम की बातें बोलकर हँसते हैं तथा जब दूकानदार इनसे अपना उधार माँगते हैं तो ये चाकू निकाल लेते हैं।

गौड छात्र अधर्माचरण करता हुआ भी धर्माचरण का ढोंग करता है। वह द्वादशी तिथि में मत्स्यमांसादि का पारण करता है।[2] वेश्या-संसर्ग से बने उसके बन्दर सदृश मुख पर भी कविवर ने व्यङ्ग्य किया है।[3] अन्यत्र भी पिशाच की भाँति छात्र को बताया गया है।[4]

---

1. वेश्यासक्तो द्यूतकरश्चाक्रिकः प्रायकृत् सदा।
   कुक्षिभेदी मठवने छात्रः पञ्चतप मुनिः ॥
   न ब्रह्मचारी न गृही न वनस्थो न वा यति.।
   पञ्चमः पञ्चभद्राख्यश्छात्राणामयमाश्रमः ॥ देशोपदेशः 6/31-32
2. द्वादश्यामन्यवद् गौडः सत्रच्छेदादुपोषितः।
   स्वयं पक्वेन कुरुते मत्स्यमांसेन पारणम् ॥ वही, 6/28.
3. शीतकाले शिरःशाटी वेश्यावेश्मसु दैशिकः।
   हसन् कालमुखः शुक्लदशनो वानरायते ॥ वही, 6/20.
4. स पिशाच इवाभाति दिनान्ते द्यूतनिर्जितः।
   नग्नो भग्नमुखः पांसुलिप्तस्रस्तत्रपः ॥ वही, 6/24.

छात्र निम्नकर्म में लिप्त होकर चौरादि कर्म करने में नहीं चूकता तथा अहङ्काराभिभूत होकर गर्दन उठाकर चलता है तथा पूछे जाने पर अपने को ठाकुर बताता है ।[1] स्नान, दान, व्रत व श्राद्धादि में निष्कारण जलता हुआ अत्याधुनिक समय में भी प्रचलित गाली का प्रयोग करता हुआ वह छात्र सभी दुष्कर्मों को करता है ।[2]

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र ने छात्र को पापकारी एवं विकारी बताते हुए उसे कुमारी का रमण करने वाला तथा खिन्नतापूर्ण दिन व्यतीत करने वाला कहा है ।[3] इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में छात्रों की स्थिति बहुत शोचनीय थी तथा उनकी दुश्चरित्रता व दुष्टता के कारण समाज के अंकुश का भी अभाव प्रतीत होता है । कविवर की इस प्रकार की रचना से यह स्पष्ट होता है कि वे छात्रों की इस शोचनीय दशा से चिन्तित थे तथा उनके दोषों को उनके समक्ष रखकर उनके सुधार हेतु प्रयास भी किया जो इनके साहसपूर्ण कार्य का परिचायक है ।

---

1. चाक्रिकः शिक्षितां यातश्चौरः कर्मकरैर्धृतः ।
   गौडो गर्वोन्नतग्रीवष्ठक्कुरोऽस्मीति भाषते ॥ — देशोपदेशः 6/36.

2. स्नाने दाने व्रते श्राद्धे निष्कारणरुषाज्वलन् ।
   मातरं चौदयामीति वदन् सर्वं करोति सः ॥ — वही, 6/44.

3. व्रजति दिनमखिन्नः सत्रपां सत्रपालीं
   रमयति च कुमारीं दन्तरूपो विरूपः ।
   क्षपयति भजमानः स्वां कुलालीं कुलालीं
   विलसति मरुच्चट्टः पापकारी विकारी ॥ — वही, 6/45.

दुर्जनों पर अधिक्षेप

कविवर क्षेमेन्द्र ने समाज शोषकों में मुख्य अङ्ग दुर्जनों पर भी तीखा व्यंग्य किया है । अन्य अनेक कवियों व नीतिकारों ने भी दुर्जनों की भर्त्सना की है । दुर्जन बहुत ही स्वार्थी वृत्ति का तथा बहुत ही सङ्कीर्ण मानसिकता का होता है । यह सज्जनों का सहजद्वेषी होता है । राजर्षि कवि भर्तृहरि ने दुष्टों को प्राप्त विद्या, धन व शक्ति को क्रमशः विवाद, मद व दूसरों को कष्ट पहुँचाने का हेतु बताते हुए उनकी कटु निन्दा की है ।[1] महाकवि बाणभट्ट ने तो दुष्टों को सभी जनों के भय का हेतु माना है ।[2]

कविवर क्षेमेन्द्र ने दुष्टों को बहुमायावी बताते हुए व्यङ्ग्य रूप में नमस्कार किया है ।[3]

गीता के योगिजन्य भावों से साम्य रखते हुए भावों को दुष्टों के प्रति सकेंत करते हुए सबको समान भाव से ठगते हुए निर्वाण की प्राप्ति में सहायक बताया है ।[4]

---

1. विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परिपीडनाय ।
   खलस्य साधोर्विपरीतमेतद् ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ॥ भर्तृहरिनीतिशतक
2. असज्जनात् कस्य भयं न जायते । कादम्बरी कथामुखम् श्लोक 5.
3. सदा खण्डनयोग्याय तुषपूर्णाशयाय च ।
   नमोऽस्तु बहुबीजाय खलायोलूखलाय च॥ देशोपदेशः 1/5.
4. समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
   वृत्तिच्छेदकृताभ्यासः खलो निर्वाणदीक्षितः ॥ वही, 1/6.

दुष्ट व्यक्ति मूर्ख होते हुए भी विद्वान् होता है क्योंकि वह स्वगुण वर्णन में शेषवत् तथा परनिन्दा में मानो बृहस्पति तुल्य होता है ।[1]

'खल' शब्द में प्रयुक्त दोनों अक्षरों के माध्यम से कविवर ने उन्हें बड़े लोगों के मध्य में असम्भव कार्यों को करने वाला बताया है ।[2]

वस्तुतः खल व्यक्ति सबके दोष को कहता है किन्तु कोई भी दुष्ट के दोष को नहीं कहता जबकि दुष्ट ही वास्तविक दोषी है ।[3] इससे दुष्टों के प्राबल्य का ज्ञान होता है ।

कविवर ने दुःख व्यक्त करते हुए दुष्ट प्रकृति के राजा के होने पर, जिससे राज्य की सम्पूर्ण प्रजा का सम्बन्ध है, क्या स्थिति होगी ? अर्थात् बहुत ही दुःखद स्थिति होगी । जब एक सामान्य दुष्ट से अनेक जीव त्रस्त होते हैं तो राजा के दुष्ट स्वभाव होने पर सम्पूर्ण प्रजा कहाँ जायेगी ?[4] नीतिदर्पणकार चाणक्य ने दुष्टों

---

1. अहो बत खलः पुण्यैर्मूर्खोऽप्यश्रुतपण्डितः ।
   स्वगुणोदीरणे शेषः परनिन्दासु वाक्पति. ॥ देशोपदेशः 1/9.
2. खचित्रमपि मायावी रचयत्येव लीलया ।
   लघुश्च महतां मध्ये तस्मात् खल इति स्मृतः ॥ वही, 1/16.
3. खलो वक्त्येव सर्वस्य दोषं वक्ति खलस्य कः ।
   दोषो मलिनवस्त्रस्य कदा केन विचार्यते ॥ वही, 1/15.
4. खलेन धनमत्तेन नीचेन [illegible]
   पिशुनेन पदस्थेन हा प्रजे [illegible] ॥ वही, 1/17.

को सर्प से श्रेयस्कर बताया है ।[1] इसी तरह कविवर क्षेमेन्द्र ने भी दुष्ट और सर्प से तुलना करते हुए सर्प को अच्छा माना है ।[2]

इस प्रकार दुष्टों पर बहुत ही तीखे अधिक्षेप करते हुए कविवर ने उन्हें गधा इत्यादि विशेषणों से भी अलङ्कृत किया है ।[3]

अन्यत्र भी पुनः सर्प से उपमित करते हुए कविवर ने दुष्ट को निष्कारण हिंसक बताया है ।[4]

दुष्ट द्वारा अर्जित सद्वस्तुयें भी दोषरूप में प्रयुक्त होती हैं । इनके द्वारा उपार्जित विद्या भी काले नाग की प्रदीप्त मणि की भाँति लोगों के उद्वेग का कारण

---

1. दुर्जनस्य च सर्पस्य वरं सर्पो न दुर्जनः ।
   सर्पो दंशति काले तु दुर्जनस्तु पदे पदे ॥ चाणक्यनीतिदर्पणः 3/4.

2. भग्नदन्त इव व्याल श्रेयान् मूर्खो वरम् ।
   पक्ष्मानिव कृष्णाहिर्न त्वेव खलपण्डितः ॥ देशोपदेशः 1/18.

3. दूषणानुगतो नित्यं जनस्थानविनाशकृत ।
   दुर्मदो विबुधद्वेषी पुरुषादः खरः खलः ॥ वही, 1/19.

4. निष्कारणनृशंस्य शौर्य छिद्रमनुध्यते [illegible]
   यः सर्प इव संनद्धः प्र[illegible] दर्पदलनम् 5/22.

होती है क्योंकि ये सभाओं में विवाद करते हैं एवं इन्हें दूसरों का यश शूल सदृश आकुल करता है । ये क्रोध से मलिन नेत्रों वाले तथा द्वेष से उष्ण निःश्वास वाले होते हैं ।[1]

पूर्वकाल में भी सभी मनीषियों द्वारा सहजद्वेषी दुष्टों की भर्त्सना हुई है । कविवर क्षेमेन्द्र ने भी अपनी व्यङ्ग्यप्रधान, कटु एवं तीक्ष्ण शब्दों में दुर्जनों पर अधिक्षेप किया है जो वस्तुतः दुर्जनों का नग्न चित्रण ही है । क्षेमेन्द्र के अधिक्षेप का प्रयोजन सहजद्वेषी द्वारा त्रस्त सीधे-सादे लोगों को दुष्टों से बचाना ही आभासित होता है। यदि दुष्टों में अपने प्रति व्यङ्ग्यात्मक दोषों को जानकर सुधार की प्रवृत्ति होती है तो समाज के सरल लोग उनके दंश से बच सकते हैं ।

<u>कुट्टनी पर अधिक्षेप</u>

कुट्टनी व विट जो वस्तुतः वेश्याओं से सम्बन्धित पात्र हैं, पर कविवर क्षेमेन्द्र ने अधिक्षेप किया है । कुट्टनी वेश्याओं के साथ में रहकर उनके सम्पर्क में आने वाले कामुकों को वेश्याओं के प्रति आकर्षण उत्पन्न कर उनके धन का शोषण करने में सहायता करती है । वह वेश्याओं के संरक्षण का भी कार्य करती है । इनके कापटिक व्यवहार व प्रच्छन्न प्रयोजन को कविवर ने उजागर किया है । कुटिला

---

1. ये संसत्सु विवादिनः परयशः शल्येन शूलाकुलाः,
   कुर्वन्ति स्वगुणस्तवेन गुणिनां यत्नाद् गुणाच्छादनम् ।
   तेषां रोषकषायितोदरदृशां द्वेषोष्णनिःश्वासिनाम्
   दीप्ता रत्नशिखेव कृष्णफणिनां विद्या जनोद्वेगभूः ॥ दर्पदलनम् 3/14.

कुट्टनी हालाहल से युक्त वेश्यारतिनिधान के क्षयरक्षा सर्पिणी की भाँति है ।[1] कुट्टनी प्रतीपचारिणी व घोर कष्टदायिनी भी होती है ।[2] कुट्टनी वस्तुतः बह्वासक्त कामी को धन शोषण करने के बाद डराने व विभिन्न मायावी कार्यों से भगाने का भी कार्य करती है । वह धनी कामुक को ही धन प्राप्तार्थ प्रेम करती है तथा विभिन्न ठगी के तरीकों से उसे जाल में फँसाने का कार्य करती है ।[3] इसीलिए कविवर क्षेमेन्द्र ने विश्व की कण्टकरूपा ताडका व पूतना का क्रमशः राम व कृष्ण द्वारा मारे जाने के बाद विश्वकण्टकरूपा कुट्टनी के विनाश न किये जाने पर चिन्ता व्यक्त किया है ।[4] इसे कुत्ते के पूँछ व बकरी के सींग आदि की भाँति व्यर्थ माना गया है ।[5] कुट्टनी पिशाचिनी सदृश एवं कभी न सन्तुष्ट न होने वाली

---

1. हालाहलोल्वणां कालीं कुटिलां कुट्टनीं नुमः ।
   वेश्यारतिनिधानस्य क्षयरक्षामहोरगीम् ॥ देशोपदेशः 4/1.

2. न कान्तं न कलावन्तं न शूरं सहते सदा ।
   प्रतीपचारिणी घोरा राहुच्छायेव कुट्टनी ॥
   नापेक्षते परिचयं नोपकारं स्मरत्यपि ।
   सर्वदैव विरागान्ता खलमैत्रीव कुट्टनी ॥ वही, 4/6-7.

3. सधनं कामुकं दृष्ट्वा विलोक्यानिशमागतम् ।
   जिह्वां प्रसार्य निर्याति कुट्टनी कार्यगौरवात् ॥ वही, 4/16.

4. रामेण ताटका मिथ्या हता कृष्णेन पूतना ।
   विश्वकण्टकतां याता निहता किं न कुट्टनी ॥ वही, 4/10.

5. श्वपुच्छैश्छागशृङ्गैश्च व्यालैरुद्गलैः खलैः ।
   कुट्टनीहृदयान् मन्ये कौटिल्यमुपजीव्यते ॥ वही, 4/13.

तथा निकृष्ट कार्यों मे सदा लिप्त रहने वाली होती है ।[1]

कविवर क्षेमेन्द्र ने 'समयमातृका' नामक रचना में कुट्टनी का विस्तृत वर्णन किया है । इसमें तो कुट्टनी का बृहद् रूप वर्णित है । कुट्टनी जो नापित के कहने पर कलावती वेश्या को विभिन्न ठगी के उपायों को बताती है, गोदी में खोपड़ी लिये हुए वस्त्राच्छादित प्रेतात्मा की भाँति प्रतीत होती है ।[2] वह सदैव कुछ प्राप्त करने की इच्छा वाली ही होती है । सब कुछ ग्रहण कर लेने पर भी और कुछ लेने के लिए वह सदैव मुख फैलाये रहती है अर्थात् उसमें सन्तोष का स्पर्शमात्र भी नहीं । वह त्रिलोकी को नापने के लिए अङ्क अर्थात् मध्य में सहस्रों अङ्क वाली अर्थात् गम्भीरस्थल वाली कलि की तुला की भाँति थी ।[3]

कुट्टनी वस्तुतः अपनी युवावस्था में वेश्या होती है और वृद्धत्व प्राप्त कर लेने पर वह कुरूपा वेश्याओं की माता के रूप में कार्य करती है । कलावती

---

1. हरत्यपक्वमनिशं पक्वं गिलति लाघवात् ।
   बहूच्छिष्टं विधत्ते च लुण्ठिताकुट्टनी नृणाम् ॥
   कामिनः सप्रयत्नस्य बन्धकीभोजकारिणा ।
   न तृप्यति महाकाली महिषस्यापि कुट्टनी ॥ देशोपदेश 4/20-21.
2. समयमातृका 4/2.
3. सर्वस्वग्रहणेनापि लम्बमानमुखी सदा ।
   तुलेवाङ्कसहस्राङ्का त्रैलोक्यतुलने कलेः ॥ समयमातृका 4/4.

वेश्या को वह कुट्टनी माया एवं प्रप च की शिक्षा देती हुई कहती है कि इसी माया व प्रप च के ही माध्यम से वेश्याओं को धन की प्राप्ति होती है ।[1] वह विनाशिनी क्षीण व्यसनी मूढ को कलहादि के लिए भी प्रेरित करती है तथा लोगों के सर्वस्व का हरण कर भी असन्तुष्ट रहने वाली कामियों के विघ्न के रूप में कुट्टनी किसके द्वारा निर्मित की गयी ?[2] अर्थात् कविवर को कुट्टनियों की संसार में उपस्थिति सह्य नहीं ।

विटों पर अधिक्षेप

कविवर क्षेमेन्द्र ने वेश्या के रक्षक के रूप में कपट व दुष्टता के प्रतीक विटों पर अधिक्षेप किया है । कुट्टनी, विट व चेटादि सम्बन्धी सूक्ष्म विशेषताओं पर किये गये अधिक्षेप को पढ़कर आभास होता है कि कविवर क्षेमेन्द्र ने समाज को दूषित करने वाले लोगों के बारे में विशेष जानकारी प्राप्त किया होगा तब कहीं उन पर कटु शब्दों में बौछार किया होगा ।

---

1. मुग्ध: प्रत्ययमायाति प्रत्यक्षेऽप्यन्यथा कृते ।
   मायाप्रपञ्चसारश्च वेश्यानां विभवोद्भव: ॥ समयमातृका 4/37.

2. क्षीणं व्यसनिनं मूढं दुर्दशैव विनाशिनी ।
   कुट्टनी प्रेरयत्येव सपत्नकलहादिषु ॥
   सर्वस्वेनाप्यसन्तुष्टा रक्षा स्नेहशैतैरपि ।
   निर्मिता कामिनां विघ्न: कृतघ्ना केन कुट्टनी ॥
   - देशोपदेश 4/31 व 4/33.

वस्तुतः समाज के वेश्यासक्तों के धन-शोषण में विटों की भी अहम् भूमिका थी । कविवर ने गुणहीन, दोषयुक्त व कृष्णपक्ष के कुटिल चन्द्रमा के सदृश गुणों वाले विट को व्यङ्ग्य रूप में प्रणाम किया है ।[1] विट के लक्षणों[2] को भी कविवर ने बताया है ताकि सत्पुरुष उनके चंगुल से दूर रहें और फँसे लोग उबरने का प्रयास करें। विटों के कुकृत्यों व उपहसनीय कार्यों पर वीभत्स रूप में व्यङ्ग्य वर्णित है ।[3] विट की महत्ता सर्वथा त्याज्य वेश्याओं की कृपाप्राप्ति पर ही निर्भर करता है । वह रंग-बिरंगे वस्त्रों को धारण कर वेश्याओं के सम्भोग के सौभाग्य से इतराता भी है।[4] बूढ़े विटों पर भी कविवर के तीखे व्यङ्ग्य है । वृद्ध विट तो युवा विटों की अपेक्षा कहीं अधिक दुष्ट स्वभाव वाले होते हैं । वे लोगों को ठगने में अपेक्षाकृत अधिक

---

1. क्षीणाय गुणहीनाय सदोषाय कलाभृते ।
   विटाय कृष्णपक्षेन्दुकुटिलाय नमो नमः ॥ देशोपदेश 5/1.

2. रूक्षैः पश्चात् पुरः स्निग्धैः कचैः कृत्रिमकुञ्चितैः ।
   शिरो विलोलयन् ब्रूते वेश्यां केशधनो विटः ॥ वही, 5/18.

3. वेश्याभिस्थूत्कृतमुखः सुजनेन विवर्जितः ।
   अमङ्गलाकृतिरिव भ्राम्यतेऽविरतं विटः ॥ वही, 5/6.

4. विलेपनाङ्कितपटः स्वदत्तनखमण्डितः ।
   वेश्यासम्भोगसौभाग्यं याति प्रकटयन् विटः ॥ वही, 5/14.

निपुण होते हैं । वे कामुकों को रसायन, योगशास्त्र व गन्धयुक्ति कथाओं के माध्यम से ठगते हैं ।[1] उनके ठगी के कार्य बहुत ही साहस एवं आधिपत्यपूर्ण होते हैं । मूढ कामियों को तो वे कल्पवृक्ष सदृश मानते हैं ।

विट वस्तुत: काँटेदार जाल की भाँति होते हैं जो वेश्या को आवृत किये रहते हैं । कुछ निर्धन विट धनी व्यक्तियों और उनके लड़कों को बहकाकर वेश्याओं के पास ले जाते हैं और उन वेश्याओं तथा उन लड़कों एवं व्यक्तियों से भी पैसा लेकर अपना कार्य चलाते हैं । पैसा समाप्त होने पर अथवा अपना स्वार्थ सिद्ध न होते देखकर वे शिकायत करके उन व्यक्तियों को उनके अभिभावकों व पारिवारिक सदस्यों के कठोर नियंत्रण में रखवा देते हैं । इसका संकेत समयमातृका के एक पद्य से मिलता है जिसमें कुट्टनी द्वारा वणिक् पुत्र धूर्त विटों के चंगुल से मुक्त होने के लिए कपटपूर्ण सलाह दे रही है ।[2] विट दु:ख, क्रोध, विस्मय व लज्जादि विभिन्न मनोविकारों

---

1. टक्कराकोटिटाङ्कारविस्फुटन्मस्तको रटन् ।
   खल्वाट: शङ्कितो याति वेश्यावेश्म जरद्विट: ॥
   रसायनैर्बिलज्ञानैर्योगशास्त्रैरसङ्गतै: ।
   गन्धयुक्तिकथाभिश्च मुग्धान् भुङ्क्ते जरद्विट: ॥ देशोपदेश 5/23 व 27

2. भुक्त्वा पीत्वा भवत: परधनवर्गा: स्ववित्तपरिहीणा: ।
   धूर्तास्त्वामेव पितुर्बन्धनयोग्यं प्रयच्छन्ति ॥ समयमातृका 8/25.

से युक्त होते हुए तिरस्कृत भी किये जाते हैं तथा कभी-कभी कामुकों को शूल-सदृश भी लगते हैं ।[1] ये अपने बहुत वैभव के भक्षण के बाद दूसरों के भी धन-सम्पत्ति का विनाश करने वाले तथा सर्वदा वेश्याओं के वेश व मुखादि के सौन्दर्य की प्रशंसा करते रहते हैं ।[2]

इस प्रकार विटों के भी शोषणपूर्ण कार्यों के वर्णन को देखकर इनकी शोचनीय दशा का ज्ञान होता है । कविवर क्षेमेन्द्र ने समाज के बहुधा शोषकों पर तीखा प्रहार किया है । विटों को भी कविवर ने समाज के सर्वाधिक दूषण के केन्द्र एवं वेश्याओं के प्रच्छन्न प्रयोजन की सिद्धि में पूर्णरूप से सहायक के रूप में चित्रित किया है ।

नाना धूर्तों पर अधिक्षेप

कविवर क्षेमेन्द्र ने वैद्य, ज्योतिषी व दवा-विक्रेता आदि की धोखाधड़ी पर बहुत तीखा व मनोरंजक व्यङ्ग्य किया है जो आजकल भी पूर्णतः प्रासङ्गिक है । हम उस वैद्य का वर्णन पाते हैं जो मिथ्या-चिकित्सीय औषधियाँ रखता है और जो अनेकानेक रोगियों के धन हरण के साथ ही साथ उन्हें मृत्यु के घाट उतार चुका है, पर

---

1. इति दुःखकोपविस्मयलज्जाकुलिताः कथां मिथः कृत्वा ।
   कुसुमारामभ्रष्टा इव मधुपास्ते विटाः प्रययुः ॥ समयमातृका 8/49.

2. भक्षितनिजबहुविभवाः परविभवक्षपणदीक्षिताः पश्चात् ।
   अनिशं वेश्यावेशस्तुतिमुखरमुखा विटाश्चिन्त्याः ॥ कलाविलास 9/39.

अन्त में महान् सफलता उसका वरण करती है और वह बहुत ही प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है ।[1] वैद्यों पर व्यङ्ग्य करते हुए कहा गया है कि वे रोगी के सम्पूर्ण धन का हरण करने वाले होते हैं जबकि ज्ञान चूर्ण के आधे श्लोक का ही रहता है ।[2] नेत्रचिकित्सा का वैद्य कवि ने उसे कहा है जो सबको अन्धामात्र करने में ही सक्षम होता है ।[3]

वैद्यों की हँसी उन्होंने बहुत ही उपयुक्त भाषा में की है । समाज में फैले नीम-हकीम एवं आतुर व्यक्तियों से भी मोलचाल करके धन लेने वाले वैद्यों पर उनकी लेखनी तीक्ष्णता से प्रयुक्त है । समयमातृका में कलावती आतुर व्यक्तियों की सम्पत्ति से युक्त वैद्याधम द्वारा अनुपयुक्त चिकित्सा द्वारा अपनी नानी के वध को

---

1. विविधौषधपरिवर्तैर्योगैर्जिज्ञासया स्वविद्यायाः ।
   हत्वा नृणां सहस्रं पश्चाद् वैद्यो भवेद् सिद्धः ॥ कलाविलासः 9/4.

2. आतुर धनसम्पूर्ण -
   चूर्णार्धश्लोकपाठपाण्डित्यः ।
   वैद्यो गृहमेति गुरोः
   शिष्यधनव्याधिभस्मस्य ॥ देशोपदेशः 8/33.

3. चक्षुर्वैद्योऽयमायातस्पस्वी सर्वसंश्रयः ।
   किंशास्त्रवर्तिभिर्येन सर्वमन्धीकृतं जगत् ॥ नर्ममाला 3/59.

अपने मित्र से बताया है ।[1]

अन्यत्र भी वैद्यों के शोषण पर व्यङ्ग्य वर्णन प्राप्त होता है । वैद्य को यमराज का भाई बताते हुए नमस्कार करते हुए कवि ने उसे धन एवं प्राण दोनों का हर्त्ता बताया है ।[2]

कविवर क्षेमेन्द्र ने भी उस वैद्य को नमस्कार किया है जो विद्याहीन होकर सर्वत्र अनेक लोगों के मृत्यु का कारण बनता है ।[3]

जब वह वैद्याधम रोगिस्वरूप मृगसमूह की मृगया के लिए अपने घर से निकलता है, तब मार्ग में विटों एवं चेटों के द्वारा "यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल एवं सबके प्राण हरण करने वाले । आपको नमस्कार है" इत्यादि

---

1. सा सखे करभग्रीवा मातुर्माता स्थिरस्थिति: ।
   व्याली गृहनिधानस्य हता वैद्याधमेन मे ॥
   योऽसाववद्यविद्या विद्वैद्य: सद्य: क्षयोद्यत: ।
   दर्पादातुरवित्तेन वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ समयमातृका 1/27-28.

2. वैद्यराज नमस्तुभ्यं यमराज सहोदर ।
   यमस्तु हरति प्राणान् त्वं च प्राणान् धनानि च ॥

3. नमोविद्याविहीनाय वैद्यायावद्यकारिणे ।
   निहतानेकलोकाय सपर्यैकापमृत्यवे ॥ नर्ममाला 2/68.

स्तुतिवाक्यों से भी प्रणाम किया जाता है ।[1] वस्तुत: वह तो अर्थ व प्राण का चिकित्सक है, वह व्याधि का चिकित्सक नहीं है ।[2] वैद्य कालकूट, सर्प या वेताल ही है जो आयुष्व वायु का क्षय करने वाला है ।[3]

यदि नगरोत्सव की यात्रा से विवाहादि में अतिभोजन से जनता मन्दरोग से ग्रस्त हो तो वह वैद्य के शनि का ही फल है ।[4] इसी प्रसङ्ग में कविवर ने

---

1. स रोगिमृगवर्गाणां मृगयानिर्गत. पथि ।
   इत्यादिभि: स्तुतिपदैर्विटचेटै. प्रणम्यते ॥
   यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ।
   वैवस्वताय कालाय सर्वप्राणहराय च ॥   समयमातृका 1/38-39.

2. चिकित्सकोऽर्थप्राणानां व्याधीनामचिकित्सक. ।
   आजीवमीश्वर: शूली येन न त्यज्यते जन: ॥   नर्ममाला 2/71.

3. स वैद्य: कालकूटो वा व्यालो वेताल एव वा ।
   भूयसा याति मासेन य: क्षिप्रमनुकूलताम् ॥   वही, 2/72.

   स वैद्य: एव कुपितो वायुरायु:क्षयङ्कर: ।
   हस्तस्पर्शेन त्रिमलक्षालक: क्षपितेन्द्रिय. ॥   वही, 2/73.

4. नगरोत्सवयात्रासु   विवाहेष्वतिभोजनाद्..।
   जनता याति यन् मान्द्यं तद् वैद्यस्य शनै: फलम् ॥ वही, 2/75.

नीतिपूर्ण तथ्य रखते हुए कहा है कि विद्याहीन वैद्य, प्रभुतासम्पन्न कायस्थ व दुराचारी गुरु प्रजा के क्षय के हेतु हैं ।[1]

कविवर क्षेमेन्द्र ने तत्कालीन वैद्यों द्वारा स्त्री-रोगियों के रोग निरीक्षण के व्याज से गुह्याङ्गस्पर्शी व स्तनस्पर्शी जैसे प्रच्छन्न प्रयोजन का भी पर्दाफाश किया है ।[2]

इस प्रकार कविवर ने वैद्यों पर बहुत ही तीखा व्यङ्ग्य करते हुए उनके कपटपूर्ण अश्लील हरकतों को भी सबके समक्ष रख दिया है । वस्तुतः इस तरह का वर्णन कविवर की गहन सामाजिक अनुभव का ही फल हो सकता है ।

इसी प्रकार की आधुनिकता को लिए हुए वर्णन उस ज्योतिषी का है जो आकाश सम्बन्धी भविष्य कथन को कहते हुए अपने पीठ पीछे विविध लोगों द्वारा

---

1. विद्याविरहिता वैद्याः कायस्थाः प्रभविष्णवः ।
   दुराचाराश्च गुरवः प्रजानां क्षयहेतवः ॥ नर्ममाला 2/77.

2. गुह्याङ्गस्पर्शकृत स्त्रीणां बह्वाशी जीवितापह. ।
   नृणां त्रिदोषकृत् सत्यं वैद्य एव न तु ज्वरः ॥ वही, 2/76.

   उपसृत्य स पस्पर्श स्तनौ तस्याः सुसंहतौ ।
   कठिनौ सततस्पर्शौ खल. खलतराविव ॥ वही, 2/78.

क्रीडासक्ता गृहिणी के बारे में नहीं जानता है ।[1]

वह ज्योतिषी विभिन्न सरल लोगों को उनके मनोऽनुकूल विचारों को कहते हुए उन्हें विश्वस्त कर धनलाभ करता है । वह ग्राहक की दुर्बलता में विविध रोग बताकर मन्त्र द्वारा निदान की भी बात करता है । इस प्रकार साधारण ज्ञान से युक्त होता हुआ वैद्यक व ज्योतिषशास्त्र दोनों का ज्ञानी बनने का दावा करता है ।[2] वह स्त्रियों को भूत-पिशाचादि से ग्रस्त बताकर उन्हें नग्नादि कर पिशाचमुक्त करने का उपाय बताता है ।[3] इस प्रकार ज्योतिषी साधारण कपटपूर्ण ज्ञान से युक्त होकर-ज्योतिष की गणना करता हुआ मूर्खों को ठगने का कार्य करता है ।[4] वह जनश्रुति से वधू के चरित्र को जानता हुआ झूठे राशिचक्रादि बनाकर अन्त

---

1. गणयति गगने गणकश्चन्द्रेण समागमं विशाखायाः ।
   विविधभुजंगक्रीडासक्तां गृहिणीं न जानाति ॥ कलाविलास 9/6.

2. इति साधारणज्ञानमन्त्रवैद्यकमिश्रितम् ।
   ज्योतिः शास्त्रं विगणयन् यो मुष्णाति जडाशयान् ॥ नर्ममाला 2/87.

3. दुर्निवारश्च नारीणां पिशाचो रतिरागकृत् ।
   पुनः शून्यगृहे स्नाता गुह्यकेन निरम्बरा ।
   गृहीतेत्यत्र पश्यामि चक्रे शुक्रसमागमात् ॥ वही, 2/91.

4. इति साधारणज्ञानमन्त्रवैद्यकमिश्रितम् ।
   ज्योतिःशास्त्रंविगणयन् यो मुष्णाति जडाशयान् ॥ वही, 2/87.

में धीरे-धीरे कहता हुआ स्पष्ट करता है कि वह वधू रतिकाम से पीड़ित है ।[1]

यही स्थिति प्रमाणित औषध के उस विक्रेता की है जो अपना सिर ताँबे की पतीली के समान केशहीन होते हुए भी गंजेपन की अचूक चिकित्सा की प्रत्याभूति देने के लिए तैयार है और जिसको ग्राहक भी मिल जाते हैं ।[2]

कविवर क्षेमेन्द्र ने स्वर्णकारों पर भी खुले शब्दों में तीक्ष्णता से व्यङ्ग्य किया है जो विभिन्न प्रकार से सरल लोगों की सम्पत्ति का हरण करता है । लोकप्रचलित बात कहते हुए कविवर ने स्वर्णकार को पापी व चाण्डाल इत्यादि शब्दों द्वारा धिक्कारा है ।[3]

---

1. प्राड्नियोगिवधूवृत्तं जानन्नपि जनश्रुतम् ।
   धूर्तो धूलिपटे चक्रे राशिचक्रं मुधैव सः ॥
   ततोऽवदन् मन्दमन्दं प्रोत्क्षिप्तभ्रूलतो मुहुः ।
   इयमापाण्डुरमुखी रतिकामेन पीडिता ॥ नर्ममाला 2/88 व 90.

2. ताम्रघटोपमशीर्षो धूर्तो हि रसायनी जराजीर्णः ।
   केशोत्पादनकथया खल्वाटानेव मुष्णाति ॥ कलाविलास 9/9.

3. सारं सकलधनानां संपत्सु विभूषणं विपदि रक्षा ।
   एते हरन्ति पापाः सततं तेजः परं हेम ॥
   सहसैव दूषयन्ति स्पर्शेन सुवर्णमुपहतच्छायम् ।
   नित्याशुचयः पापाश्चण्डाला हेमकाराश्च ॥ वही, 8/2-3.

स्वर्णकारों की विभिन्न मिश्रण वस्तुओं का उल्लेख भी किया गया है ।[1] वह सरल लोगों के स्वर्ण को हरण करने के विविध उपायों को अपनाता हुआ स्वर्ण-निर्मित आभूषणों को बदल लेने की भी चालाकी का भी व्यङ्ग्यपूर्ण वर्णन किया है जो कविवर के सूक्ष्म निरीक्षण का बोध कराता है ।[2] ये स्वर्णकार चौंसठ कलाओं से युक्त तथा ग्राहक के सामने ही उनके धन को चुराने में सक्षम हैं[3] तथा रसिक धनी को विनष्ट करने में भी सक्षम हैं ।[4]

इसके अतिरिक्त कविवर क्षेमेन्द्र ने समाज के सभी वर्गों, जातियों व पेशेवरों में विद्यमान दोषों पर तीखा व्यङ्ग्य किया है । उन्होंने गुरु, कुलवधू, भट्ट, वणिक्, कवि, द्यूतकर, वैणिक, निर्गुंट, पण्डित, लेखक व जटाधर आदि पर अधिक्षेप किया है ।

---

1. द्विपुटा स्फोटविपाका सुवर्णरसपायिनी सुताम्रकला ।
   सीसमलकाचचूर्णग्रहणपरा षट्कला मूषा ॥ कलाविलास 8/6.

2. उज्ज्वलनेऽपि च तेषां पातनमतिसुकरमरमकाले च ।
   सदृशविचित्राभरणे परिवर्तनलाघवप्रसारश्च ॥ वही, 8/16.

3. एता हेमकराणां विचारलभ्याः कलाश्चतुःषष्टिः ।
   अन्या गूढाश्च कलाः सहस्रनेत्रोऽपि नो वेत्ति ॥ वही, 8/19.

4. प्रथमं स्ववित्तमखिलं कनकार्थी भस्मसात् कृत्वा ।
   पश्चात् सधनान् रसिकान् विनाशयत्येष वर्णिकानिपुणः ॥ वही, 9/7.

संन्यासियों पर भी तीखा व्यङ्ग्य करते हुए क्षेमेन्द्र ने उनके कपटपूर्ण बाह्य भेषों को निरर्थक बताया है । इनके सम्बन्ध में विचार कर कविवर पाते हैं कि इन्होंने जिस वस्तु का परित्याग किया है वह केवल इनके मुड़े हुए सिरों का केशमात्र है । ये धूल के रंग के पीले परिधान धारण करते हैं, जो क्षेमेन्द्र को इनके हृदय के कालुष्य का प्रतीक प्रतीत होते हैं ।

इनके अतिरिक्त कविवर ने कुलवधू, धातुवादी, द्युतकर, वैणिक, निर्गुंट, पण्डित, लेखक, कवि व जटाधर आदि लोगों के दूषित पक्षों पर भी अधिक्षेप किया है । इस प्रकार के लोगों पर संक्षिप्त विवेचन है । तीन या चार पद्यों में ही प्रत्येक के बारे में अधिक्षेप किया गया है ।

<u>दम्भी व मदपूर्ण तथा अहंकारी लोगों पर अधिक्षेप</u>

कविवर क्षेमेन्द्र ने लौकिक जीवन की विभिन्न उपलब्धियों पर अहङ्कार करने वाले लोगों पर तो बहुत तीखा व वास्तविक व्यङ्ग्य किया है ।

कलाविलास का नायक मूलदेव है जो समस्त चालाकियों का कल्पित मूर्तीकरण है । यह युवक चन्द्रगुप्त को उपदेश देता है । इससे हमें यह पता लगता है कि धूर्तता की महान् आत्मा आकाश से अवतरित हुई है और संन्यासियों, चिकित्सकों,

---

1. सरागकाषायकषायचित्तं शीलांशुकत्यागदिगम्बरं वा ।
   लौल्योद्भवदम्भसम्भरप्रहासं व्रतं न वेषोदभ तुल्यवृत्तम् ॥ दर्पदलनम् 7/13.

भृत्यों, गायकों, स्वर्णकारों, व्यवसायियों व अभिनेताओं आदि के बीच शासन करती है। वास्तव में पशु और वनस्पति समुदाय भी इसका अनुसरण करते हैं। दम्भी की गति किसी के द्वारा भी नहीं जानी जा सकती।[1] अनेक प्रकार के दम्भियों का भी उल्लेख मिलता है। कविवर ने दम्भियों के विभिन्न भेद बताये हैं।[2] दम्भियों के लक्षण भी बताये गये हैं और उनका स्वरूप उपस्थित किया है।[3]

दम्भी धूर्त वस्तुत: बहुत ही मायावी व बहुरूपों वाले होते हैं तथा उनके पारिवारिक सदस्य भी इन्हीं की ही कोटि के होते हैं। दम्भी के माता पिता व स्त्री तथा पुत्रादि भी क्रमश: लोभ, माया, कुटिलता व दम्भयुक्त होते हैं।[5]

---

1. मत्स्येवाप्सु सदा दम्भस्य ज्ञायते गति: केन।
   नास्यकरौ न च पादौ न शिरो दुर्लक्ष्य एवासौ॥ कलाविलास 1/43.

2. व्रतनियमैर्बकदम्भ: संवृतनियमैश्च कूर्मजो दम्भ:।
   निभृतगतिनयननियमैर्घोरो मार्जारजो दम्भ:॥
   बकदम्भो दम्भपतिर्दम्भनरेन्द्रश्च कूर्मजो दम्भ:।
   मार्जारदम्भो एष प्राप्तो दम्भेषु चक्रवर्तित्वम्॥ वही, 1/48-49.

3. नीचनखश्मश्रुकचश्चूली जटिल: प्रलम्बकूर्चो वा।
   बहुमृत्तिकापिशाच: परिमितभाषीप्रयत्नपादत्र:॥ वही, 1/50.

4. खल्वाट: स्थूलवपु: शुष्कतनुर्मुनिसमानरूपो वा।
   शाटकवेष्टितशीर्षश्चैत्योन्नतशिखरवेष्टनो वापि॥ वही, 1/63.

5. लोभ: पितातिवृद्धो जननी माया सहोदर: कूट:।
   कुटिलाकृतिश्च गृहिणी पुत्रो दम्भस्य हुंकार:॥ वही, 1/64.

कविवर ने मद को ही सम्पूर्ण लोगों का एकमात्र शत्रु माना है जिसके शरीर में प्रवेश से व्यक्ति न सुनता है और न देखता ही है ।[1] सत्युग में दम [इन्द्रियनिग्रह] की प्रधानता थी किन्तु कलयुग में उस शब्द के विपरीत शब्द मद की प्रधानता है ।[2] मद के अनेक हेतुओं का कविवर ने उल्लेख किया है । दर्पदलनम् नामक ग्रन्थ में तो मद के सात हेतु कुल, वित्त, श्रुत, रूप, शौर्य, दान व तप बताये गये हैं, किन्तु 'कलाविलास' में उन्होंने शौर्य, रूप, श्रृंगार, कुलोन्नति, वैभव व मद्यमद आदि का उल्लेख करते हुए यह स्पष्ट किया है कि सभी मद दम्भी पुरुष को गर्त में ले जाने में सहायक हैं । उन्होंने बहुत ही सूक्ष्म भाव प्रस्तुत करते हुए कहा है कि शौर्य, रूप, काम व वैभव आदि मदों से युक्त पुरुष क्रमशः भुजा, दर्पण, स्त्री का दर्शी होते हुए अन्धा हो जाता है ।[3]

---

1. एकः सकलजनानां हृदयेषु कृतास्पदो मदः शत्रुः ।
   येनाविष्टशरीरो न श्रृणोति न पश्यति स्तब्धः ॥ कलाविलासः 6/1.

2. विजितात्मनां जनानामभवद् यः कृतयुगे दमो नाम ।
   सोऽयं विपरीततया मदः स्थितः कलियुगे पुंसाम् ॥ वही, 6/2.

3. शौर्यमदो भुजदर्शी रूपमदो दर्पणादिदर्शी च ।
   काममदः स्त्रीदर्शी विभवमदश्चैव जात्यन्धः ॥ वही, 6/6.

मद्यमद तो पुरुष को पूर्णतः निष्क्रिय बना देती है। गीता के बहुचर्चित समदर्शी की भावनायुक्त श्लोक[1] के आधार पर कविवर ने मद्यमदी को भी समदर्शी बताते हुए बहुत ही मनोरंजक व्यङ्ग्य किया है।[2]

इसी समदर्शी भाव में मधमदयुक्त व्यक्ति स्व व पर बुद्धि से परे होकर अपनी पत्नी को परपुरुष द्वारा संसक्त देखता हुआ भी कुछ नहीं कर पाता है।[3]

इस प्रकार कविवर ने मद के दोषों व मदपूर्ण लोगों के दूषित कार्यों का व्यङ्ग्यरूप में वर्णन कर सज्जनों को भी अप्रतिम उपकार किया है। इस प्रकार के वर्णन दुर्जनों के सुधार व सज्जनों द्वारा इन दोषों से दूर रहने के लिए प्रेरणादायक हैं।

इस प्रकार कविवर क्षेमेन्द्र द्वारा समाज के शोषकों व दूषित पक्षों पर किये गये अधिक्षेपों का व्यङ्ग्यपूर्ण वर्णनों से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में दूषित पक्ष दबने के बजाय उठा हुआ था। इनके द्वारा किये गये अधिक्षेप बहुत ही तीखे व

---

1. विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
   शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥ गीता, 5/18
2. विद्यावति विप्रजने गवि हस्तिनि कुक्कुरे श्वपाके च।
   मधमदः समदर्शी स्वपरविभागं न जानाति॥ कलाविलास 6/16.
3. परपतिचुम्बनसक्तां पश्यति दयितां न याति संतापम्।
   क्षीबोऽतिगाढरागं पीत्वा मधु वीतरागः किम्॥ वही, 6/19.

हृदय में चुभने वाले हैं । कहीं-कहीं इनके द्वारा किये गये व्यङ्ग्य अश्लील भी हैं किन्तु इसके बावजूद भी इनकी भावना समाज-सुधार की प्रतीत होती है । कवि दण्डी व सोमदेव की भाँति क्षेमेन्द्र भी अपदेशपरक काव्य-रचना के लिए प्रमुखत. प्रसिद्ध हैं । उन्होंने राजनीतिक व सामाजिक व्यङ्ग्य किये हैं किन्तु उनका उद्देश्य हास्य की सर्जना ही नहीं अपितु समाज-सुधार व सांस्कृतिक पुनर्निर्माण ही था जिसे कविवर ने स्वत: कहा है ।[1] कविवर ने समाज में प्रसृत दूषित लोगों, तरीकों, प्रथाओं व व्यवसायों पर, गृध्र-दृष्टि से अवलोकन कर, तीखा व्यङ्ग्य व अधिक्षेप लिखा, जिसके माध्यम से तत्कालीन समाज के काले पक्षों का पूर्णत: पर्दाफाश हुआ और उनके नग्न चित्र सबके समक्ष उजागर हुए । इस तरह उनके अधिक्षेप व हास्य-व्यङ्ग्य उपयुक्त व प्रभावकारी हुए हैं ।

----------::0:.----------

---

1. इत्युद्देशनिदर्शनेन विविधं यत् किंचिदुक्तं मया,

तत् सर्वं स्मितकारिणं सहृदया: शृण्वन्तु सन्त: क्षणम् ।

क्षेमेन्द्र: प्रणतिं करोति न पटुर्लोकोपहासेष्वलं

किन्त्वेष व्यपदेशत: प्रतिपदं देशोपदेश: कृत: ॥ देशोपदेश: 8/52.

अध्याय - षष्ठ

क्षेमेन्द्र के काव्यों की साहित्यिक समालोचना

रस, भाव, अलङ्कार, रीति, छन्द एवं भाषा-शैली आदि

कविवर क्षेमेन्द्र की भाषा बहुत ही मधुर, सरस एवं सुबोध है । उसमें न तो कहीं पाण्डित्य का प्रदर्शन है और न शब्दों का अनावश्यक प्रयोग कर चमत्कार उत्पन्न करने का व्यर्थ प्रयास ही है । उनकी भाषा में प्रवाह है तथा पदावली इतनी स्निग्ध है कि कहीं भी अनमेल शब्दों का प्रयोग नहीं दीखता । इस प्रकार उनके काव्य अत्यन्त मधुर व सुकुमार बन गये हैं । कुछ उदाहरण ही इस तथ्य को पुष्ट करने में समर्थ हैं ।[1] कवि का काव्यक्षेत्र अति विस्तृत था । महर्षि व्यास के बाद शायद ही कोई ऐसा कवि होगा जिसने इतने विशाल साहित्य की रचना की हो । उन्होंने विभिन्न विषयों को लिखने में विभिन्न दृष्टिकोण अपनाए, अतः उनकी शैली को सामान्य शब्दों में बतलाना सरल कार्य नहीं । देशोपदेश व नर्ममाला में कवि की शैली सरल एवं साधारण है किन्तु औचित्यविचारचर्चा, कविकण्ठाभरण व सुवृत्ततिलक इत्यादि समालोचनात्मक प्रबन्धों में यह शैली उत्कृष्ट, आकर्षक तथा विषयानुकूल है। औचित्यविचारचर्चा एवं कविकण्ठाभरण में कवि ने आदर्श शैली की कल्पना की है । कविकण्ठाभरण में आचार्य क्षेमेन्द्र ने शब्द कालुष्य एवं पुनरुक्ति को काव्य का दोष

---

1. क. तरलवलनलीलामित्रनेत्रत्रिभागैः ।
   श्रवणकुवलयस्य क्लैव्यमापादयन्ती ।
   अमृतहरणहेता दृप्तदैत्येश्वराणां
   हृदयहरणसज्जा सा समीपं जगाम् ॥ दशावतारचरित 2/30.

2. तस्याधरे चुम्बनलालसेवकण्ठे हठालिङ्गनसस्पृहेव ।
   हृदिस्तनन्यासमुत्सुकेव पपात दृष्टिः सहसैव तासाम् ॥ दर्पदलनम् 7/49.

बतलाया है । औचित्यविचारचर्चा के अनुसार शैली में औचित्य को परमावश्यक बताया गया है । कवि व लेखक को व्यर्थ के उपसर्गों एवं अव्ययों के प्रयोग से बचना चाहिए । आचार्य क्षेमेन्द्र ने दो पर्यायवाची शब्दों का अर्थ समान नहीं माना है क्योंकि प्रत्येक शब्द उपयुक्त स्थान में औचित्यानुसार प्रयुक्त होता है । उन्होंने कारक, क्रिया, लिङ्ग, वचन, विशेषण तथा प्रत्यय तक के प्रयोगों के औचित्य का प्रतिपादन करते हुए कालिदास व बाण जैसे महान् कवियों के काव्यों में भी दोष दिखाये हैं । यहाँ तक कि उन्होंने अपनी कविता के भी दोषों को दिखाया है । अतः स्पष्ट है कि आचार्य क्षेमेन्द्र उदार निष्पक्ष तथा सहृदय समालोचक थे । प्रो० कीथ के शब्दों में क्षेमेन्द्र कवि की अपेक्षा आलोचक के रूप में अधिक निखरे हैं ।[1] अतः आचार्य क्षेमेन्द्र संस्कृत-साहित्य-शास्त्र के गिने-चुने अनुपम आचार्यों की पंक्ति में उन्नत स्थान पाने के अधिकारी हैं ।

डा० ह्वूलर ने क्षेमेन्द्र की 'बृहत्कथामञ्जरी' पर निबन्ध लिखते हुए क्षेमेन्द्र की शैली को दुर्बोध एवं दुरूह बतलाया है ।[2] परन्तु डा० एम०वी०एमिनि ने लेवी महोदय का समर्थन करते हुए डा० ह्वूलर की इस आलोचना को निराधार बतलाया है ।[3] एमिनी महोदय के अनुसार बृहत्कथामञ्जरी के सम्बन्ध में यह कथन सत्य भी

---

1. Prof. Keith - History of Sanskrit Literature, p. 397.

2. Whuler - Indane Entiquery Part I, p. 302.

3. M.V. Eminy - General of American Oriental Society, Part 53, on page 144.

हो सकता है क्योंकि इस समय कवि क्षेमेन्द्र कविता करने का अभ्यास ही कर रहे थे । कविकण्ठाभरण में क्षेमेन्द्र ने स्वयं भी अपने से पूर्व के सकल काव्यों को पुन: लिखकर अभ्यास करना तरुण कवियों के विकास का साधन बतलाया है । इसके अतिरिक्त बृहत्कथामञ्जरी कवि की प्रारम्भिक रचनाओं में से एक है । इसलिए अभी कवि क्षेमेन्द्र की शैली का पूर्ण विकास नहीं हो पाया था । इस ग्रन्थ में कवि का प्रयोजन प्रवाहपूर्ण, अभिराम एवं सजीव वर्णन प्रस्तुत करना नहीं था, बल्कि यत्र-तत्र कुछ रोचक व चमत्कारोत्पादक, प्रभावपूर्ण वर्णनों को जोड़ना तथा स्थान-स्थान पर काव्य के आदर्शों को पिरोना ही कवि को अभीप्सित था । अत: इस ग्रन्थ को ही क्षेमेन्द्र की शैली का मापदण्ड बनाना उचित नहीं । बाद की रचनाओं दर्पदलन, कला-विलास व दशावतारचरित इत्यादि की सीधी पीढ़ी सरल सुबोध एवं सुकुमार शैली को देखकर डॉ० ह्वूलर की इस आलोचना की निस्सारता प्रकट हो जाती है ।

महाकवि क्षेमेन्द्र ने प्राय: महाकाव्यों की शैली का अनुकरण किया है । उनकी शैली में महाकवि वाल्मीकि एवं महर्षि व्यास की शैली जैसी नवीनता, मधुरता एवं ओजस्विता इत्यादि काव्य-गुण विद्यमान हैं । अलङ्कारशास्त्र की दृष्टि से क्षेमेन्द्र की शैली वैदर्भी रीति की है जिसका लक्षण[1] दण्डी ने किया है । क्षेमेन्द्र की

---

1. श्लेष: प्रसाद: समता माधुर्य सुकुमारता ।
   अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोज: कान्ति:समाधय: ।
   इति वैदर्भमार्गस्य प्राणा: दशगुणा: स्मृता: ॥ काव्यादर्श 1/41.

शैली वैदर्भी मार्ग के दसों गुणों से पूर्ण है । उनकी कविता में श्लेष प्रचुर मात्रा में मिलते हैं परन्तु वे कठिन नहीं । उनके विभिन्न काव्यों में श्लेषात्मक पद्य[1] अपनी अनुपम छटा से परिपूर्ण होकर सहृदय पाठकों को रससिक्त कर देते हैं ।

कवि की शैली सरस, मधुर व सुकुमार होने के साथ ही साथ ओज व कान्ति से युक्त भी है ।[2]

---

1. अ. मार्गणापूरणासक्तिविस्तीर्णगुणसंततिः ।
स्वचापतुल्यस्त्रैलोक्यमजयल्लीलया बलिः ॥ दशावतारचरित 5/7.

ब. विभ्रतोऽन्तर्गतरसां कुसुमेषु रुचिं नवाम् ।
जटावल्कलभारस्ते तरोरिव न शान्तये ॥ दर्पदलनम् 3/93.

स. कमलपल्लववारिकणोपमं किमिव याति सदा निधनं धनम् ।
कलमकर्णचलाचलचंचलं स्थिरतराणि यशांसि न जीवितम् ॥

– सुवृत्ततिलकम् 2/18.

2. अ. आशाकाशावकाशप्रविसृतवपुषा व्याप्तनिःशेषविश्वः
श्वासोल्लासावहेलातुलतरलतरोत्ताल कल्लोलभाग्भिः ।
शुण्डोच्चण्डाभिघातस्फुटितमपि पुनः स्फाटिकस्फारवार्भिः
चक्रेमत्स्यावतारस्त्रिभुवनमिव यः कस्य देवस्स जेयः ॥ दशावतारचरित 4/43

ब. भस्मस्मेरशरीरता पृथुजटाबन्धः शिरो मुण्डनं
कुण्डीदण्डकमण्डलुप्रणयिता चर्माक्षसूत्रग्रहः ।
काषायव्यसनं निरम्बररुचिः कंकालमालाधृतिः
कामक्रोधवशादिशेषरुचिरं सर्वं वृथैव व्रतम् ॥ दर्पदलनम् 7/68.

महाकवि क्षेमेन्द्र अलङ्कार विनिवेश में भी अत्यन्त कुशल हैं। यद्यपि उन्होंने अलङ्कार को काव्य के केवल वाह्य-सौन्दर्य में सहायक ही माना है तदपि उन्होंने श्लेष, यमक, अनुप्रास, रूपक, उपमा व उत्प्रेक्षा तथा अर्थान्तरन्यास इत्यादि अलङ्कारों का समुचित प्रयोग किया है। उनकी उपमायें प्रायः दैनिक जीवन से सम्बन्धित हैं। यद्यपि इनकी उपमायें[1] उपमासम्राट महाकवि कालिदास की भाँति अमूल्य व भड़कीली नहीं हैं, तथापि मनोहारी हैं।

श्लेषानुप्राणित उपमा की भी छटा दर्शनीय है :-

बिभ्रतोऽन्तर्गतरसां कुसुमेषुरुचिं नवाम्।
जटावल्कलभारस्ते तरोरिव न शान्तये॥ दर्पदलनम् 3/93.

----- दर्पात्कोपात्परिणतजटासूत्रबन्धाच्च मोहा-
दन्तः सीदत्सरसविषयास्वादसंवादसंगात्।
आशापाशव्यसननिचयाद्वासनालीनदोषात्
नैषां मुक्तिर्भवति तपसा कायसंशोषणेन॥ दर्पदलनम् 7/69.

1\. अ. विद्या श्रीरिव लोभेन द्वेषेणायाति निन्द्यताम्।
भाति नम्रतयैवैषा लज्जयेव कुलाङ्गना॥ वही 3/6.

ब. मदेन विद्या कपटेन मैत्री लोभेन लक्ष्मीरिवलुप्तशोभा॥ दशावतारचरित 7/5!

स. कुलं कुतनयेनेव लोभेनेव गुणोदयः।
ऐश्वर्यं दुर्नयेनेव शौर्यं दर्पेण नश्यति॥ दर्पदलनम् 5/28.

उत्प्रेक्षा अलङ्कार के भी प्रयोग से युक्त पद्य का सौन्दर्य सराहनीय है ।[1]

कवि द्वारा समासोक्ति अलङ्कार की छटा के माध्यम से एक पद्य[2] में लताओं पर नायिका का आरोप किया गया है जो जँभाई और निश्वास से आकुल है और जिसमें कामदेव सम्बन्धी कम्परूप सहचारिभाव विद्यमान है ।

अर्थान्तरन्यास के प्रयोग में तो कविवर क्षेमेन्द्र बहुत ही दक्ष हैं । 'चारुचर्या' नामक शतक काव्य के प्रायः पद्य अर्थान्तरन्यास की ही छटा से युक्त हैं । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि चारुचर्या अर्थान्तरन्यास पर आधारित रचना ही है ।

1\. अ. तस्याधरे चुम्बनलालसेव कण्ठे हठालिङ्गन सस्पृहेव ।
हृदि स्तनन्याससमुत्सुकेव पपात दृष्टिः सहसैव तासाम् ॥ दर्पदलनम् 7/49.

ब. कल्पान्तैरिव सर्वत्र ग्रस्तस्थावरजङ्गमैः ।
मषीविलिप्तसर्वाङ्गैः कालेनालिङ्गितैरिव ॥ नर्ममाला 1/21.

2\. तस्य प्रवेशे वदनाधिवासलोभभ्रमद्भृङ्गगणाञ्चितानाम् ।
अभूत्सजृम्भश्वसनाकुलानां मुहुर्लतानां कुसुमेषु कम्पः ॥

– दर्पदलनम् 7/44.

अनेक उदाहरणों[1] से इनकी तद्विषयक दक्षता स्पष्ट हो जाती है ।

अन्योक्ति अलङ्कार के प्रयोग में सूक्ष्मदर्शी कवि क्षेमेन्द्र का सौन्दर्य द्रष्टव्य है । जहाँ प्रातःकाल में नवीन पौधे से उत्पन्न कली के रूप में कमल कान्ताओं के स्तनों के सदृश प्रतीत होता है । क्रमशः मध्याह्न व सन्ध्या जो वस्तुतः युवावस्था व वृद्धावस्था के प्रतीक के रूप में है, कमलवत् कान्ता-स्तन भी गतिशील है ।[2]

---

1. अ. बाल्ये भूमितलेऽर्पिता तदनु च क्लिष्टा वने भीषणे,
   पौलस्त्येन हृता भयक्षतधृतिर्बद्धाथ लङ्कावने ।
   लब्धा शुद्ध्यनले च्युता पुनरपि त्यक्ता सती जानकी
   संसारे सतताश्रुपातिनि नृणां धिङ्नित्यदुःखस्थितिम् ॥

   - दशावतारचरित 7/264.

   ब. हितोपदेशं श्रुत्वा तु कुर्वीत च यथोचितम् ।
   विदुरोक्तमकृत्वा तु शोच्योऽभूत् कौरवेश्वरः ॥ चारुचर्या श्लोक 59.

   स. ब्रह्मचारी गृहस्थः स्याद् वानप्रस्थो यतिः क्रमात् ।
   आश्रमादाश्रमं याता ययातिप्रमुखा नृपाः ॥ - वही, श्लोक 92.

   द. गुणवत्कुलजातोऽपि निर्गुणः केन पूज्यते ।
   दोग्ध्री कुलोद्भवा धेनुर्बन्ध्या कस्योपयुज्यते ॥ - दर्पदलनम् 1/13.

2. प्रातर्बालतरोऽथ कुड्मलतया कान्ताकुचाभः शनै-
   र्हेलाहासविकाससुन्दररुचिः सम्पूर्णकोपस्ततः ।
   पश्चान्म्लानवपुर्विलोलशिथिलः पद्मः प्रकीर्णोऽनिलै-
   स्तस्मिन्नेव दिने स पङ्ककलिलक्लिन्नस्तटे शुष्यति ॥ वही, 4/73

रूपकालङ्कार के माध्यम से भी कविवर क्षेमेन्द्र काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि करने में पूर्णतः दक्ष हैं । इनके रूपक[1] प्रयोग वस्तुतः मनोहारी हैं ।

शब्दालङ्कारों के भी प्रयोग में क्षेमेन्द्र अति निपुण हैं । उनके काव्यों में अनुप्रास की छटा दर्शनीय है ।[2]

ध्वनि-साम्य में तो क्षेमेन्द्र विशेषतया दक्ष हैं । उदाहरण[3] से इनकी तद्-विषयक दक्षता सिद्ध है ।

कविवर के काव्यों को पढ़ते समय उनके पद्यों में समाविष्ट सङ्गीत का

---

1. अ. पाण्डित्यं यन् मदान्धानां परोत्कर्षविनाशनम् ।
   मात्सर्यपांसुपूरेण मातङ्गस्नानमेव तव् ॥ चतुर्वर्गसंग्रह 1/6.

   ब. सततानुरक्तदोषा मोहितजनता बहुग्रहाश्चपला: ।
   सन्ध्याः स्त्रियः पिशाच्यो रक्तच्छायाहराःक्रूराः॥ कलाविलास 3/29.

2. पाणिस्थितश्यामयूरपिच्छच्छायाच्छटाविच्छुरितोऽस्य कण्ठः ।
   रराज लीनान्तरकालकूटमिषाग्निनेवार्पितधूमलेखः ॥ दर्पदलनम् 7/33.

3. वलत्कुटिलकल्लोलकुल्याकलकलाकुलाम् ।
   द्राक्षासुशीतलतलस्थलीशय्याश्रयाध्वगाम् ॥ दशावतारचरित 8/144.

अनुभव होता है और उसमें ताल एवं लय की प्रचुरता दिखाई पड़ती है । उदाहरण[1] से इस कथन की पुष्टि हो जाती है ।

कविवर क्षेमेन्द्र के काव्यों में कोमलकान्तपदावली, सरस प्रवाह व सुमधुर भावों का संगम है । एक ही उदाहरण[2] इस कथन के प्रमाण में सहायक है ।

कवि शब्दकोश अति विशाल था । साथ ही वे जानते थे कि किस स्थान में किस शब्द का प्रयोग करना चाहिये, अतः उनके वर्णनांश सर्वोत्तम हैं । कथा लिखने में क्षेमेन्द्र अत्यन्त दक्ष हैं । इनमें कलापक्ष की इतनी प्रधानता है कि वे अपने आख्यानों के वर्ण्य पदार्थों पर ही आश्रित रहते है, उन्हें भव्य वर्णनों से सजाते हैं तथा पाठकों पर चिरस्थायी प्रभाव डालते हैं । इनकी कथाओं में चरित्र की प्रधानता है । कवि हृदयग्राही अवतरणों को अपने काव्य-कौशल से एक चिरन्तन वस्तु बना देता है । इनकी मंजरीत्रय व बौद्धावदानकल्पलता इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं । अवदान कल्पलता

---

1. तालीतालतमालसालकदलीपथ्यामलीश्यामलं
   खर्जूरार्जुनसर्जविल्ववकुलप्लक्षाक्षलिक्षाकुलम् ।
   पर्यन्ते स ददर्श हर्षजननं स्फीतोपदेशं गवां
   निःश्वभ्रस्थलपुष्पशष्पशबलं निःसंकुलं गोकुलम् ॥ दशावतारचरित 8/149.

2. ललितविलासकलासुखखेलनललनालोभनशोभनयौवनमानितनवमदने,
   अलिकुलकोकिलकुवलयकज्जलकालकलिन्दसुताविवलज्जलकालियकुलदमने ।
   केशिकिशोरमहासुरमारणदारुणगोकुलदुरितविदारणगोवर्धनधरणे,
   कस्य न नयन युगं रतिसज्जे मज्जति मनसिजतरलतरंगे वररमणीरमणे ॥ वही, 8/173.

में जलते शव को देखते हुए गौतम बुद्ध का वर्णन संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ वर्णनांशों में अनुपम वर्णन माना जाता है । दर्पदलन के सातों मदहेतुओं से सम्बन्धित वर्णन इनके काव्य - कौशल को सिद्ध करने में पूर्णत: सहायक हैं ।

अपनी तीव्र बुद्धि एवं सूक्ष्मावलोकन के कारण कविवर क्षेमेन्द्र तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों तथा मानवीय नैतिक दुर्बलताओं से भलीभाँति परिचित थे, जिनका उन्होंने तीक्ष्णता के साथ उपहास किया है । उनके उपहासों में आधुनिकता व सार्वलौकिकता का पुट है । हास्य-कथा के तो वे सम्राट ही हैं । आलोचक इनके वर्णन व चरित्र-चित्रण पर रीझ जाता है । इनके हास्योत्पादक चित्रण व तीक्ष्ण मनोरंजक चुटकुले संस्कृत-साहित्य की अमूल्यनिधि हैं । उनकी रचनाओं में मानव चरित्र की दुर्बलताओं तथा विचित्रताओं पर किये गये व्यङ्ग्य[1] दर्शनीय हैं ।

1\. अ. शौर्यमदो भुजदर्शी रूपमदो दर्पणादिदर्शी च ।
कामम्द: स्त्रीदर्शी विभवमदश्चैव जात्यन्ध: ॥ कलाविलास 6/6.

ब. छात्र: प्रवृत्त: पाण्डित्ये वृद्धकीरजिगीषया ।
कष्टेन जानात्योंकारं स्वस्तिज्ञाने कथैव का ॥ देशोपदेश: 6/7.

स. गृहिणी दर्पणपरा राजमार्गावलोकिनी ।
बभार तद्विरहिता भूपाललनामदम् ॥ नर्ममाला 2/143.

द. लोभ: प्रभूतवित्तस्य राग: प्रव्रजितस्य च ।
न यया शान्तिमायाति किं तयाऽलौकिकविद्यया ॥ दर्पदलनम् 3/42.

कभी कभी उनके व्यङ्ग्य लोकोक्तियों का रूप धारण कर लेते हैं । उनके ग्रन्थ असंख्य सूक्तियों एवं लोकोक्तियों से पूर्ण हैं । दशावतारचरित तो इन उक्तियों[1] का भण्डार ही है ।

उनकी रचना का उद्देश्य जनता का सुधार कर चरित्र निर्माण करना है, न कि जनता को आघात पहुँचाना । उनके निन्दोपाख्यानों एवं व्यङ्ग्यात्मक चित्रणों में सुधार की गहरी भावना अन्तर्निहित है । इस दृष्टि से उनकी तुलना आंग्ल साहित्य के कवि एडीसन से की जा सकती है, जो व्यङ्ग्य करने में नहीं हिचकते, परन्तु सदैव यह ध्यान रखते हैं कि वह घातक न हो । क्षेमेन्द्र के व्यङ्ग्य रचनात्मक हैं, जिसका प्रमाण हमें कलाविलास के दसवें अध्याय में मिलता है । इसी सुधार की भावना से प्रेरित होकर लिखे गये 'कलाविलास' 'चतुर्वर्गसंग्रह', 'चारुचर्या',

---

1. अदानभोगेन धनोदयेन किं मदस्पृशा द्वेषजुषा श्रुतेन किम् ।
   सदम्भसंभारवता व्रतेन किं विषद्विमानेन कुजीवितेन किम्॥ दशावतारचरित 3/7

   साभिमानमसम्भाध्यमौचित्यच्युतमप्रियम् ।
   दुःखावमानदीनं वा न वदन्ति गुणोन्नताः॥ वही, 4/21.

   प्रायः प्रभूणां विपरीत चेष्टाः ॥ वही, 7/41.

   तथा

   प्रायः प्रभूणामतिसन्निकर्षः क्षुराग्रधारे नवपादचारः ॥ वही, 7/151.

'नीतिकल्पतरु', 'समयमातृका' तथा 'सेव्यसेवकोपदेश' जैसे लघुकाव्य लोकव्यवहार के परिज्ञान के लिए नितान्त उपादेय तथा सरस ग्रन्थ हैं ।

परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि क्षेमेन्द्र की शैली पूर्णतया निर्दोष है । यद्यपि कविवर क्षेमेन्द्र ने अलङ्कारों को वाह्य सौन्दर्य-विधायक ही बताया है तथा औचित्य को ही काव्य का जीवितभूत तत्त्व स्वीकार किया है, परन्तु उनकी रचनाओं से स्पष्ट है कि वे औचित्य का पूर्ण निर्वाह नहीं कर सके तथा शब्दालङ्कारों के मोह से न बच सके । उनके कुछ पद्य ऐसे प्रतीत होते हैं मानो कवि तत्सम्बन्धी अलङ्कारों का उदाहरण प्रस्तुत कर रहा है । जैसे अधोलिखित पद्य द्रष्टव्य है ।[1]

औचित्य के सबल समर्थक आचार्य क्षेमेन्द्र द्वारा उर्वशी के नृत्य प्रसंग में समासबहुल संयुक्त वर्णों की मूर्धन्यवर्ण प्रधान यह शब्दावली[2] उचित नहीं प्रतीत होती।

---

1. अ. घोरैर्घुरद्व्याघ्रघनप्रघोषैरिवोच्चरोमाञ्चचयान्वितानाम् ।
   विशंकटैरुत्कटकंटकानामं व्याप्तं समूहैः खदिरद्रुमाणाम् ॥ दशावतारचरित 7/[illegible]

   ब. क्षमान्तोत्क्षेपात्तिवेगप्रसरदनलसोल्लासकैलाशकम्प-
   क्षोभेविभ्यद्भवानीनिभृतभुजलतालिंगितश्चन्द्रचूडः ।
   दाशास्यैर्हर्षहासं व्यभजत चरणाकुचिंतांगुष्ठपीडा
   व्रीडानिर्भुग्नमीलन्नयनगलगलद्गर्गरोग्रुदाररावैः ॥ वही, 7/40.

2. उत्साहोद्धतविभ्रमाभ्रमरकन्यावृत्तहारान्तर-
   त्रुट्यत्सूत्रविमुक्तमौक्तिकभरःसक्तः स्तनोत्सङ्गयोः ।
   वक्त्रेन्दुच्युतसन्ततामृतकणाकारश्चकार क्षणं
   तस्या नृत्तरसश्रमोदितघनस्वेदाम्बुबिम्बश्रियम् ॥ दर्पदलनम् 4/24.

इनकी भाषा भी किन्हीं स्थलों पर क्लिष्ट एवं दुर्बोध भी है । वे अप्रसिद्ध शब्दों[1] का भी व्यवहार करते हैं ।

अतिशय पाण्डित्य से मण्डित 'समयमातृका' की क्लिष्ट भाषा से प्रारब्ध काव्य का निर्वाह भले ही हो गया हो किन्तु भाषा में न तो प्रवाह है और न प्रसाद ही । इसके लिए तो 'देशोपदेश' व 'नर्ममाला' की सरल शब्दावली अपेक्षित थी । भाषा के क्लिष्ट एवं दुर्बोध होने के प्रमाण में कुछ उदाहरण[2] पर्याप्त हैं ।

छन्द सम्बन्धी विषय पर विचार करने पर स्पष्ट होता है कि कविवर क्षेमेन्द्र ने छन्द सम्बन्धी एक ग्रन्थ ही दिया है जो 'सुवृत्ततिलक' नाम से जाना जात है । इसमें 27 छन्दों के बारे में विशद विवेचन है । इन छन्दों के साथ ही साथ इसमें कवि ने स्वत: की रचनाओं से उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं । वैसे उन्होंने अपने

---

1. तुरुती, घट्टरमाला - समयमातृका

   दिविर ---------- नर्ममाला, देशोपदेश, समयमातृका

2. निष्कासितुं हृदयसंचिततीव्रवैरे

   संदर्शितप्रकटकूटधनोपचारे ।

   लोभात्त्वयानपचयै. पुनरावृतेव ॥१॥

   प्राप्त: किमु प्रसभमर्थवशादनर्थ: ॥ समयमातृका 1/20.

   कैर्नित्यसंभवनिजं वणिजं त्यजन्त्या

   यान्त्या तृणज्वलनदीप्तिनियोगलक्ष्मीम् ।

   नष्टे सुवलविभवे विरते पुराणे

   जातस्तवस्तबकितोभयलाभभङ्ग: ॥१॥ वही, 1/21.

पूर्वकालीन प्रमुख कवियों से सम्बन्धित एक-एक छन्द को प्रमुखता दिया है तथा अभिनन्द, पाणिनि, भारवि, रत्नाकर, कालिदास व राजशेखर के लिए क्रमशः अनुष्टुप्, उपजाति, वंशस्थ, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता व शार्दूलविक्रीडित छन्दों को प्रमुख माना है[1] किन्तु क्षेमेन्द्र ने अपनी छन्दःप्रियता का उल्लेख नहीं किया है। वैसे उन्होंने प्रायः सभी छन्दों में अपनी रचना की है किन्तु इनके द्वारा अनुष्टुप् छन्द में रचित पद्यों की संख्या अधिक है।

चारुचर्या नामक काव्य के तो सभी पद्य अनुष्टुप् छन्द में ही रचित हैं और भी अन्य ग्रन्थों में इस छन्द में रचित पद्यों की अधिकता है। इसके अतिरिक्त वसन्ततिलका व वंशस्थ तथा शार्दूलविक्रीडित छन्दों में भी रचित पद्यों की संख्या अधिक है। कविवर ने छन्द के नियमों का भलीभाँति पालन भी किया है किन्तु कहीं छन्दों की विचित्रता[2] मालूम होती है।

---

1. सुवृत्ततिलकम् 3/29-35.

2. अ. भाभूतो कुङ्कुमाद्रौ इनइसदृशौ ॥१॥
--- मुसिमुसिलक्षणौ फेनपर्वौ ॥१॥
--- मणिकनकधारौ दिव्यगन्धानुलिप्तौ
संग्रामेण प्रविष्टौ पलुप॥१॥---नौ लभ्यतां राज्यलक्ष्मीः॥ नर्ममाला 2/42.

ब. ननर्त कर्तरीहस्तो भूर्जप्रावरणः कलिः।
भस्त्राकक्ष्याभिधानो यं सर्वभक्षो महासुरः।
जातो जगत्क्षयायेति पिशाचनिचया जगुः॥ वही, 1/25.

कविवर क्षेमेन्द्र ने समाज सुधार की दृष्टि से समाजशोषकों पर तीखा प्रहार किया । उन्होंने समयमातृका में वेश्याओं का विशद विवेचन किया है । इसका प्रमुख उद्देश्य वेश्याओं की कपटपूर्ण धोखाधड़ी से सामान्य अनुभवहीन लोगों को सचेत करना था किन्तु वैसा करने में कहीं कहीं उन्होंने ऐसी बातों का भी वर्णन किया है जो व्यवहार के किंचद् विपरीत मालूम पड़ता है । एक शिशु द्वारा वेश्यासंसर्ग का वर्णन कथमपि औचित्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता । जो बालक शय्या पर स्वयं चढ़ने में असमर्थ होने के कारण चेटी के द्वारा चढ़ाया जाता है ।[1] जो 'बालक रोता है' ऐसा विचारकर स्वयं कलावती के द्वारा ओष्ठ एवं गालों पर काटा नहीं जाता[2] वह कलावती के अधरबिम्ब को किस रस के कारण खण्डित करेगा ? किस सामर्थ्य और पटुता के कारण रात्रि भर अनवरत चटकपक्षी की भाँति सम्भोग कर मतवाली कलावती को खेदक्लान्त करेगा ।[3] ये बातें व्यवहार तथा अनुभव के सर्वथा विपरीत हैं । यह

--- स. गुह्यस्पर्शो रतिश्चेति शीलविध्वंसयुक्तय: ।
इत्थं का नाम न मया कृता शीलपराङ्मुखी ।
नियोगिभार्यालभ्यैव सर्वदा गमनोन्मुखी ॥ नर्ममाला 2/19.

1. आरोपित: स चेट्या खट्वामत्युन्नतां शनै: शिशुक: ।
निश्चलतनुमुहूर्तं धूर्त: स च कृतकसुप्तोऽभूत् ॥ समयमातृका 8/4.

2. रोदिति शिशुरिति दयया यस्य न दशनक्षतं मया दत्तम् ।
तेन ममाधरबिम्बं पश्य शुकेनेव खण्डितं बहुश: ॥ वही, 8/9.

3. खेदक्लान्तामकरोद् गणनातीतै: समारोहै: ॥ वही, 8/7.

वेश्याओं की समाज-विध्वंसक प्रवृत्ति तथा क्रियाओं को प्रदर्शित करना अभीष्ट था तो यह दूसरे प्रकार से भी हो सकता था । उक्त प्रसंग को पढ़ते समय मन में एक विलक्षण उत्तेजक भाव उत्पन्न होता है । वेश्यावर्णन सम्बन्धी ग्रन्थ 'समयमातृका' के उपसंहार में क्षेमेन्द्र ने वेश्या की सत्कविभारती के साथ जो तुलना[1] की है उसको पढ़कर सहृदय पाठक उद्विग्न हो जाता है । वैसे यह वर्णन कवि का कलापूर्ण है जिसमें सच्चे कवि की कविता के विशेषण व गुण पक्षान्तर से वेश्या के गुण व विशेषण रूप में व्यावृत हैं ।

परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि क्षेमेन्द्र वर्णन मनोहर व मंजुल नहीं । सही बात तो यह है कि वे विविध भावों तथा घटनाओं की मधुर अभिव्यञ्जना करने में पूर्ण समर्थ हैं ।

वास्तव में क्षेमेन्द्र की सरल, स्पष्ट, मनोहर, प्रभावपूर्ण एवं चुटकीली शैली उनके सामाजिक चित्रणों व आचरण सम्बन्धी उपदेशों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है । अपनी भाषा, छन्द एवं शैली की सहायता से क्षेमेन्द्र अपने लक्ष्य की पूर्ति में पूर्णतः सफल रहे हैं ।

---

1. सालंकारतया विभक्तिरुचिरच्छाया विशेषाश्रया
   वक्रा सादरचर्वणा रसवती मुग्धार्थलब्धा परम् ।
   आश्चर्योचितवर्णनानवनवास्वादप्रमोदार्चिता
   वेश्या सत्कविभारतीव हरति प्रौढा कलाशालिनी ॥
   – समयमातृका, उपसंहार श्लोक 1.

अलङ्कार योजना की दृष्टि से काव्यों के अलग-अलग विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि क्षेमेन्द्र काव्य के एक कुशल कारीगर हैं, जो सजावट में दक्ष हैं। काव्यों के आधार पर अलग-अलग काव्यगत विशेषताओं का भी विवेचन किया जा सकता है। चारुचर्या, जो सौ पद्यों का बहुत ही लघु काव्य है, के अधिकांश पद्यों में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार की छटा दर्शनीय है। सभी पद्य अनुष्टुभ् छन्द में हैं। इसकी भाषा सरल, सुस्पष्ट एवं उपदेशपरक है। बीच-बीच में उपमा, रूपक, अनुप्रास एवं उत्प्रेक्षा अलङ्कारों की भी छटा दर्शनीय है। इस प्रकार यह लघुतम काव्य बहुत ही सरल, सुस्पष्ट एवं जीवनोपयोगी कार्यों के लिए उपादेय है। इसमें सरल समास रहित शब्दों का प्रयोग है, परिणामतः प्रसाद गुण विद्यमान है।

चतुर्वर्गसंग्रह में पुरुषार्थों का मनोहारी वर्णन है। इसमें अलङ्कारों की छटा दर्शनीय है। उपमा[1], रूपक[2], श्लेष[3], उत्प्रेक्षा[4], एवं अनुप्रास[5] अलङ्कारों का प्रयोग

---

1 चतुर्वर्गसंग्रह 1/5, 2/13, 17, 3/1.

2 वही, 1/6, 14, 22, 23 एवं 3/13

3. वही, 1/18, 2/17.

4 वही, 3/1, 13

5 वही, 1/19, 2/1, 2, 5, 9, 20.

बहुत ही आकर्षक ढंग से हुआ है । पदलालित्य[1], सरल भाषा[2] एवं साभिप्राय शब्द प्रयोग[3] की दक्षता अवलोकनीय है । इसके अतिरिक्त सूक्तियों एवं नीतियुक्त कथनों की भी प्रचुरता है । सूक्ति भी दर्शनीय है ।[4]

दर्पदलन अलङ्कार की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है । इसमें अर्थान्तरन्यास[5], रूपक[6], श्लेष[7], उपमा[8], उत्प्रेक्षा[9], अन्योक्ति[10], दीपक[11] एवं तुल्ययोगिता[12] आदि अलङ्कारों की योजना है । समासोक्ति अलङ्कार प्रयोग को उदाहृत किया जा सकता है -

इति प्रियायाः प्रणयोपपन्न-
माकर्ण्य वाक्यं गिरिशो ब्रवीत् ताम् ।

---

1 चतुर्वर्गसंग्रह, 1/20 एवं 3/1.
2. वही, 4/27.
3. वही, 3/21
4. पाण्डित्यं धर्महीनं शुकसदृशगिरां निष्फलक्लेशमेव । वही, 1/5.
5. दर्पदलन 1/13
6. वही, 1/24, 43, 5/32, 41
7. वही, 1/65, 3/93.
8. वही, 2/12, 87, 3/6, 12, 14, 44, 51, 5/26, 29, 51.
9. वही, 2/21, 3/94, 4/67, 6/64
10. वही, 4/73.
11. वही, 5/27.
12. वही, 2/1.

कुर्वन् विषस्यामलकण्ठकान्तिं

दन्तप्रभाभिः प्रतिभाविहीनम् ॥[1]

किसी-किसी श्लोक में तो अनेक अलङ्कार अपनी सत्ता द्वारा स्वयं को गौरवान्वित करते से प्रतीत होते हैं । यथा -

तस्याधरे चुम्बनलालसेव कण्ठे हठालिङ्गानसस्पृहेव ।
हृदिस्तनन्यासमुत्सुकेव पपात दृष्टिः सहसैव तासाम् ॥[2]

माधुर्य गुण की छटा के साथ ही उत्प्रेक्षा, अनुप्रास एवं श्लेष का सौन्दर्य तथा -

भृङ्गस्वनैराहितहुंकृताभिः पुष्यत्प्रसूनैः प्रसृतस्मिताभिः ।
वाताचितैः पल्लवपाणिभिस्ताः निवार्यमाणा इव मंजरीभिः ॥[3]

में संगीतात्मकता के साथ उत्प्रेक्षा एवं दीपक का सांकर्य सहृदय पाठक को आकृष्ट करता है । इस काव्य में महाकवि क्षेमेन्द्र ने अनुष्टुप् , इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वसन्ततिलका, शिखरिणी, मन्दाक्रान्ता एवं शार्दूलविक्रीडित आदि छन्दों का प्रयोग कर अपनी छन्दोव्युत्पत्ति का परिचय दिया है ।

---

1. दर्पदलन, 7/24

2. वही, 7/49.

3. वही, 7/50.

क्षेमेन्द्र ने यद्यपि कैशिकी वृत्ति को सभी वृत्तियों में श्रेष्ठ माना है और उसका प्रयोग भी किया है[1], तथापि आंशिक रूप से सात्त्वती एवं आरभटी वृत्ति का भी प्रयोग किया गया है । इनके काव्य मे प्रसाद गुण तो सर्वत्र दृष्टिगोचर होता ही है, माधुर्य गुण भी यथा स्थान प्रयुक्त है, किन्तु ओज गुण का प्रयोग यत्र-तत्र प्राप्त होता है । इसमें साधारण सूक्तियों एवं लोकोक्तियों के रूप में कवि का सूक्ष्म पर्यवेक्षण निहित है । सूक्तियों का तो इसमें प्रचुर भण्डार है । कुछ सूक्तियों को सङ्केतित किया जा सकता है ।[2]

सेव्यसेवकोपदेश तो सबसे कम पद्यों का काव्य है । इसमें भी अलङ्कारों का यथोचित प्रयोग हुआ है । इस ग्रन्थ में दो छन्दों का प्राधान्य है । अनुष्टुभ् एवं वसन्ततिलका छन्दों का प्रयोग सर्वाधिक है । इन पद्यों में स्वाभावोक्ति है ।[3]

---

1. तासां मध्ये बभौ कान्ता वृत्तीनामिव कैशिकी ।
   उर्वशी स्वमुखे मैत्रीं वदन्तीवेन्दुपद्मयोः ॥ - दर्पदलन 4/19.

2. दर्पदलन 1/16, 28-34, 55, 62, 63, 65 एवं 66.
   2/4, 23, 29, 30, 32, 39, 57, 69, 92.
   3/2-5, 14, 22, 54, 57, 59, 101, 102, 105, 142, 143.
   4/51.
   5/2, 5, 7, 20, 21.
   6/54.
   7/3, 15, 65

3. सेव्यसेवकोपदेश, श्लोक 7 एवं 20.

सरल भाषा[1] का प्रयोग भी है। यमक[2], रूपक[3], श्लेष[4] एवं उपमा[5] तथा विभावना[6] अलङ्कारों की छटा भी द्रष्टव्य है। इन्होंने इसमे शाब्दिक व्यञ्जना का भी प्रयोग किया है।[7] हास्यापदेशक तथ्य भी उपस्थित है।[8]

कलाविलास में स्वाभाविक वर्णन[9] विद्यमान है। यह काव्य व्यङ्ग्यप्रधान भी है, परिणामतः इसमें मुहावरेदार बोलचाल की भाषा प्रयुक्त है।[10] उपमा[11], रूपक[12], उत्प्रेक्षा[13], तथा श्लेषानुप्राणित उपमा[14] आदि अलङ्कारों की छटा द्रष्टव्य

---

1. सेव्यसेवकोपदेश, श्लोक 39.
2. वही, श्लोक 8
3. वही, श्लोक 11
4. वही, श्लोक 16
5. वही, श्लोक 17 एवं 24.
6. वही, श्लोक 30.
7. वही, श्लोक 9.
8. वही, श्लोक 6.
9. वही, 2/12, 47, 51
10. कलाविलास, 2/23, 45.
11. वही, 1/43, 2/66, 3/17, 19, 7/2
12. वही, 1/47, 48, 2/65, 3/29, 7/9.
13. वही, 1/6, 7, 25, 28, 51, 3/12, 39, 40.
14. वही, 1/1, 29.

है । कहीं अश्लील[1] एवं वीभत्स[2] वर्णन भी प्राप्त होते हैं तो कहीं सरल एवं मधुर भाषा में शुद्धोपदेश प्राप्त होता है । शुद्धोपदेश[3] युक्त कथन से क्षेमेन्द्र के उच्च मानसिक विचारों का ज्ञान होता है । इस काव्य में भी सूक्ति एवं मुहावेरे भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं । सूक्तियों का उल्लेख संकेतित है ।[4]

देशोपदेश एक व्यङ्ग्यप्रधान रचना है । इसमें स्वाभावोक्ति के साथ ही साथ गूढोक्ति एवं वक्रोक्ति के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं, जो क्रमशः इस प्रकार हैं-

सधनं कामुकं धृष्टा विलोक्यानिशमागतम् ।
जिह्वां प्रसार्य निर्याति कुट्टनी कार्यगौरवात् ।।[5]

इसमें कुट्टनी के स्वच्छन्तापूर्ण कार्यों का कितना स्वाभाविक वर्णन है ?

वेश्यायाजघनोद्याने फुल्ले यौवनपादपे ।
दिवानिशं भवत्येव सुवर्णकुसुमोच्चयः ।।[6]

---

1. कलाविलास, 3/48, 49
2. वही, 3/5, 6/20.
3. वही, 1/16, 18, 19, 2/64 तथा 10/1-3, 6, 8.
4. वही, 2/60, 79, 5/35.
5. वही, 4/16.
6. वही, 3/21.

यह पद्य ग्राम्यत्व दोष एवं रूपक अलङ्कार के साथ गूढोक्ति है ।

सर्वस्वेनाप्यसन्तुष्टा रूक्षा स्नेहशतैरपि ।
निर्मिता कामिना विघ्न. कृतघ्ना केन कुट्टनी ॥[1]

यह वक्रोक्ति का सुन्दर उदाहरण है ।

अतिशयोक्ति का भी इस ग्रन्थ में आभास मिलता है । वेश्या के रति-समागम के प्रसङ्ग में कवि ने चरम-सीमा तक व्यङ्ग्य किया है ।

अलङ्कारों की भी योजना कुशलता से की गयी आभासित होती है । उपमा[2], उत्प्रेक्षा[3] एवं अनुप्रास[4] के साथ ही तुल्ययोगिता[5] अलङ्कार की छटा देखने को मिलती है । कहीं-कहीं क्षेमेन्द्र वेश्यादि वर्णन करते हुए इतने क्रोधावेश में लगते हैं कि वाणी से अश्लील शब्द निकलने लगते हैं । उनके व्यङ्ग्यात्मक वर्णन चरम परिणति को प्राप्त करते हैं । उनके द्वारा किये गये भद्दे व्यङ्ग्य और अश्लील तथा

---

1. कलाविलास, 4/33.
2. देशोपदेश, 5/8-11, 7/8, 8/43.
3. वही, 1/1, 22.
4. वही, 1/19, 5/7, 17, 8/47
5. वही, 5/3.

कामोत्तेजक भाव प्राप्त होते हैं ।[1] वैसे शब्दो का प्रयोग साभिप्राय ही करते हैं । अनावश्यक शब्दों का प्रयोग काव्य में नहीं प्राप्त होता है । शब्दों का साभिप्राय का उत्तम उदाहरण विधमान हैं ।[2] किन्हीं स्थानों पर क्षेमेन्द्र पाण्डित्य प्रदर्शन करते हुए भी दिखाई देते हैं ।[3]

नर्ममाला भी एक व्यङ्ग्यप्रधान रचना है, जिसमें क्षेमेन्द्र ने कायस्थों, वेश्याओं आदि पर कटु शब्दों में व्यङ्ग्य की है । उनके इस काव्य में अनुष्टुभ् छन्द में रचित पद्यों का प्राधान्य है । पदलालित्य के भी उदाहरण मिलते हैं ।[4] इस गुण के साथ अश्लील शब्दों का प्रयोग जैसा दोष भी इनके काव्य में अधिकता से प्राप्त होता है।[5] उपमा अलङ्कार का अधिक प्रयोग हुआ है । इसके उदाहरण अनेक पद्यों में द्रष्टव्य हैं ।[6] श्लेषानुप्राणित उपमा[7] का भी उदाहरण प्राप्त होता है । इसके अतिरिक्त उत्प्रेक्षा[8], अनुप्रास[9] एवं रूपक[10] अलङ्कारों का सौन्दर्य विद्यमान है ।

---

1. देशोपदेश, 7/18-20, 8/50-51,
2. वही, 3/36
3. वही, 4/9, 34.
4. नर्ममाला 1/119, 3/23.
5. वही, 1/138, 2/19, 3/44.
6. वही, 1/64, 74, 79, 96, 123, 139.
7. वही, 1/3.
8. वही, 1/21, 2/1
9. वही, 1/23, 118.
10. वही, 1/12.

अतिशय पाण्डित्य से मण्डित समयमातृका की भाषा से प्रारब्ध काव्य का निर्वाह भले ही हो गया हो किन्तु भाषा में न तो प्रवाह है और नहीं प्रसाद ही। जिस उद्देश्य से यह प्रबन्ध लिखा गया उसकी भी भलीभाँति पूर्ति नहीं हो पाती। इसके लिए तो देशोपदेश एवं नर्ममाला की सरल शब्दावली अपेक्षित थी। इतने के बावजू भी समयमातृका न केवल क्षेमेन्द्र के ही, अपितु समस्त उपदेशात्मक हास्य व्यङ्ग्य काव्यों में अनुपम है। अटवी में सरस मधुर निर्झर की भाँति कोमलकान्तपदावली से यह यत्र-तत्र सर्वत्र पाठकों का पूर्ण मनोरंजन करती है। कलावती के श्रृंगार को कवि एक ही श्लोक में बहुत ही मधुरता के साथ अभिव्यक्त करता है -

कपोलेकस्तूरी स्फुटकुटिलपत्राङ्कुरलिपि-
ललाटे कार्पूरं तिलकमलकालीपरिसरे।
तनौ लीना हेमद्युतिपरिचिता कुङ्कुमरुचिः
स तस्याः कोप्यासाल्ललितं मधुरो मण्डनविधिः ॥[1]

लौकिक उपमाओं एवं सूक्तियों के बहुधा प्रयोग तथा हास्य-व्यङ्ग्यपूर्ण उक्ति से परिपूर्ण होने के कारण यह ग्रन्थ पाठकों को श्रावण माह में अरण्य पर्यटकों की भाँति आनन्द प्रदान करता है। रसपेशल वर्णन का रसिक कवि काव्य-कौशल से एक चिरन्तन वस्तु बना देता है।

---

1. समयमातृका 7/10.

रस-विवेचन की दृष्टि से उनके काव्यों में शान्त एवं हास्य रसों का प्राधान्य है। उपदेशपरक काव्यों में शान्त रस का प्राधान्य है जबकि अपदेशप्रधान व्यङ्ग्यात्मक रचनाओं में हास्य रस का। वैसे यत्र-तत्र करुण एवं वीभत्स आदि रसों की भी अनुभूति होती है, किन्तु शान्त एवं हास्य रसों का आधिक्य है। शान्त रस के रूप में चतुर्वर्ग-संग्रह का पद्य उदाहृत किया जा सकता है, जिसको औचित्यविचारचर्चा में शान्त के रस के रूप में उदाहृत किया गया है -

भोगे रोगभयं सुखे क्षयभयं वित्तेऽग्निभूभृद्भयं
दास्ये स्वामिभयं गुणे खलभयं वंशे कुयोषिद्भयम्।
माने ग्लानिभयं जये रिपुभयं काये कृतान्ताद् भयं
सर्वं नाम भवे भवेद् भयमहो वैराग्यमेवाभयम् ॥[1]

हास्य रसानन्द से तो सभी व्यङ्ग्यप्रधान रचनायें परिपूर्ण हैं। वैसे रस के विवेचन में क्षेमेन्द्र ने हास्य, करुण, वीर, वीभत्स आदि का भी स्वरचनाओं से पद्यों के उदाहरण दिया है।

उपर्युक्त विवेचनों के अतिरिक्त क्षेमेन्द्र विरचित शास्त्रीय ग्रन्थों से उनके रस, छन्द, अलंकार, औचित्य एवं अन्य काव्यगत गुण दोषों से सम्बन्धी पूर्णानुभवों का ज्ञान प्राप्त होता है। औचित्यविचारचर्चा में पद, वाक्य, प्रबन्ध, गुण, अलङ्कार, रस, क्रियापद, कारक, लिङ्ग, वचन, विशेषण, उपसर्ग, निपात, काल, देश, कुल, व्रत, तत्

---

1. चतुर्वर्गसंग्रह, 4/7.

तत्त्व, स्वभाव, सारसंग्रह, प्रतिभा, अवस्था, विचार, नाम एवं आशीर्वाद आदि तथ्यों का विवेचन कर अपनी काव्यगत गुणवत्ता को सिद्ध कर प्रमाण दे दी है ।

कविकण्ठाभरण से तो क्षेमेन्द्र कवि शिक्षक हो गये । उन्होंने 'जो ग्रन्थकार काव्य में चमत्कार नहीं उत्पन्न कर सकता है वह कवि नहीं है और जिस काव्य में चमत्कार नहीं वह काव्य नहीं[1], वह अपना सिद्धान्त उदाहरणों के द्वारा मण्डित किया है । चमत्कार के दस भेदों - अविचारित, रमणीय, विचार्यमाणरमणीय, समस्तसूक्त-व्यापी, सूक्तैकदेशदृश्य, शब्दगत, अर्थगत, शब्दार्थगत, अलङ्कारगत, रसगत और प्रख्यात-वृत्तिगत का उद्देश्य करके उनके उदाहरण दिये गये हैं । इससे उनकी काव्यगत अन्तःपैठ का आभास होता है ।

छन्दों से सम्बन्धित काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ सुवृत्ततिलक से कविवर की छन्द-सम्बन्धी दृढज्ञान एवं उदाहरणों से तत्सम्बन्धी प्रयोग की दक्षता का भी ज्ञान प्राप्त होता है । इसमें क्षेमेन्द्र ने छन्दों का विस्तृत विवेचन किया है । अनुष्टुभ् , भुजंग-शिशुसृता, दोधक, द्रुतविलम्बित, हरिणी, इन्द्रवज्रा, कुमारललित, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, नर्कुटक, प्रहर्षिणी, प्रमाणी, पृथ्वी, रथोद्धता, शालिनी, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, श्लोक, स्रग्धरा, स्वागता, तनुमध्या, तोटक, उपजाति, उपेन्द्रवज्रा, विद्युन्माला, वंशस्थ और वसन्ततिलका आदि छन्दों का लक्षणसहित उदाहरण देकर पुष्ट किया गया है । यह विवेचन क्षेमेन्द्र का छन्द सम्बन्धी ज्ञान एवं प्रयोग का प्रमाणपत्र ही है ।

---

1. 'नहि चमत्कारविरहितस्य कवेः कवित्वम्, काव्यस्य वा काव्यत्वम् ।'

कवि

इस प्रकार उपर्युक्त काव्यगत विशेषताओं का विवेचन करने से स्पष्ट है कि क्षेमेन्द्र एक सफल कवि एवं आलोचक हैं जो छन्द, अलङ्कार, गुण, वृत्ति, रीति, रस आदि के ज्ञाता एवं कुशल प्रयोगकर्त्ता भी हैं। वैसे सृष्टि की विशेषता के प्रतिकूल नहीं है अर्थात् इस सृष्टि में जड़-चेतन सभी गुण एवं दोषयुक्त हैं, इस प्रकार क्षेमेन्द्र भी दोषों से बच नहीं पाये हैं। उनके काव्यों में सभी काव्यगत पहलुओं पर विचार करने से गुणाधिक्य की प्रतीति होती है, किन्तु यत्र-तत्र काव्य-दोष भी विद्यमान हैं, किन्तु ये दोष गुणों से अभिभूत ही रहते हैं।

क्षेमेन्द्र एक कथाकार भी हैं। वे कथा गढ़ने में तो बहुत ही कुशल हैं। इनके कथा-कहानी सम्बन्धी तथ्यों पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि वे कवित्त्व गुण-नियुक्त होने के साथ ही स्वकथन की पुष्टि में विभिन्न कथानकों को प्रस्तुत करते हैं।

कलाविलास में वे मूलदेव का कथानक प्रस्तुत करते हैं, जो धूर्तता एवं कपट की मूर्ति ही है। समयमातृका तो एक छोटी सी बात पर बड़ा प्रबन्ध लिखा गया है, जो कवि के लिए प्रशंसा का विषय है। नवयौवना मदोन्मत्ता वेश्या कलावती और वृद्धा कुट्टनी, 'कङ्काली के द्वारा फेंके गये जाल में तत्कालीन कश्मीर भूमि के प्रसिद्ध धनी व्यवसायी शङ्ख का अल्पवयस्क बालक 'पङ्क' का फँसकर सम्पूर्ण सम्पत्ति का अधिकरण-पत्र दे देना तथा कङ्काली का सम्पूर्ण चरित्र, प्रदोषवेलावर्णन, रागभेद-वर्णन आदि भी बहुत विदग्धता के साथ वर्णित हैं, जो कथावस्तु को अग्रसर करने में पूर्ण सहायक बनते हैं। नर्ममाला में गणनापति का कथानक है, जिसे विष्णु द्वारा मारे दैत्यों से जोड़ा गया है-यह क्षेमेन्द्र की कथा सम्बन्धी विशेषता है। दर्पदलन के सातों विचारों में कथानकों का सहारा लिया गया है। पहले कविवर कुल, वित्त, श्रुत, रूप, शौर्य, दान एव तप

सम्बन्धी तथ्यों का विवेचन करते हैं । तत्पश्चात् उन कथित तथ्यों की पुष्टि हेतु कथा शैली को अपनाते हुए कथानक कहते हैं ।

उपदेशात्मक तथ्यों की पुष्टि में ही वे विशेषतः कथानकों का प्रयोग करते हैं । उपदेश के लिए प्रचलित अनेक विधियों में कहानी एक उत्तम विधि है । इस विधि का उदय कब और किस रूप में हुआ ? सिद्धान्ततः इस सम्बन्ध में भले ही कुछ न कहा जा सके, किन्तु विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में भी कहानी के मूल विद्यमान है । त्रिपिटक का जातक अंश कहानी को आधार बनाकर ही लिखा गया है । रामायण और महाभारत में भी यथास्थान कहानियों का निबन्धन हुआ है । पंचतन्त्र जिसकी रचना ईसा की चतुर्थ शताब्दी पूर्व ही हो चुकी थी, एकमात्र कहानियों पर आधारित उपादेय ग्रन्थ है और उपदेशग्रन्थ के रूप में निश्चित ही उपादेय भी है । उसी परम्परा का अनुसरण करते हुए कविवर क्षेमेन्द्र ने कुल विचार में श्रुतनिधि के पुत्र, ब्राह्मणत्व के अभिमानी तेजोनिधि की कथा को उद्धृत किया है, जिसे गर्दभी द्वारा अपनी वास्तविक कुलीनता का पता चलता है । धन के प्रसङ्ग में श्रेष्ठीनन्द के दो जन्मों की कथाओं का हृदयवर्धक चित्रण उपस्थित किया है, जो धन के प्रति मोह के सम्बन्ध में घृणा के भाव को उद्दीप्त करता है । विद्या विचार में उन्होंने भारद्वाज मुनि के पुत्र यवक्रीत का कथानक उद्धृत की है । रूप के प्रसङ्ग में राजा पुरुरवा एवं अश्विनीकुमारों की कथा द्वारा बहुत ही आकर्षक रूप से रूप की असारता प्रतिपादित की गयी है । शौर्य के प्रसङ्ग में इन्द्र आदि के कथानकों में विजयी वीर को कालान्तर में पराजित और बलहीन दिखाते हुए कहानियों के पौर्वापर्य में औचित्य का सुन्दर निर्वाह किया गया है । दान के भी सम्बन्ध में अन्य विचारों की भाँति

क्षेमेन्द्र ने युधिष्ठिर के यज्ञ में उपस्थित स्वर्णनकुल के कथानक को उद्धृत की है, जो महाभारत के अश्वमेध पर्व के अन्तर्गत अनुगीतापर्व में प्राप्त होता है। उपर्युक्त कथानक द्वारा सहृदय पाठक को सात्त्विक, कर्त्तव्य की भावना से प्रेरित तथा स्वयं दुःख उठाकर दान करने की ओर प्रेरित किया गया है। अपने विषय का प्रतिपादन करते हुए प्रत्येक विचारों की भाँति क्षेमेन्द्र ने दर्पदलन के अन्तिम तप विचार में भी कथा शैली की सहायता ली है। भगवान शिव और पार्वती भ्रमण करते हुए तपोवन में पहुँचते है। मुनियों को कठोर तप-साधना में देखकर पार्वतीजी दयार्द्र हो उठती हैं और भगवान शंकर को उन पर कृपा न करने की उलाहना देती हैं।

उपर्युक्त कथानकों के प्रसङ्ग से स्पष्ट है कि क्षेमेन्द्र कथा करने में बहुत ही दक्ष हैं तथा स्वकथन की पुष्टि में कथानकों का चित्रण करने के अतिरिक्त वे अर्थान्तर-न्यास के माध्यम से विभिन्न महाकाव्यों एवं पुराणों के कथानकों की ओर सङ्केत करते हैं। चारुचर्या में उन्होंने अनेक कथाओं की ओर संकेत की है जिससे वे स्वकथनो-पदेश की पुष्टि भी करते हैं। वे इस लघुकाय काव्य में इन्द्र द्वारा वृत्रासुर-वध, श्वेत मुनि को यमराज द्वारा यमपुरी न ले जा पाना, भीष्म द्वारा पिता शान्तनु के हाथों में पिण्ड दान न कर भूमि पर ही रखना, इन्द्र द्वारा गर्भस्थ दिति के पुत्र दैत्यों का विनाश, राजा श्वेत द्वारा परलोक में स्वमांसभक्षण, राजा नल के शरीर में कलियुग का प्रवेश, माण्डव्य ऋषि का शूली पर चढाया जाना, सीता की कामना रखने से रावण का वध, वृष्णिवंश के लोगों का परस्पर तृण-प्रहार से विनाश, जनमेजय को विप्रशाप, हरिश्चन्द्र का चाण्डाल सेवक होना, युधिष्ठिर द्वारा नरक देखना, श्रीराम की सङ्गति से विभीषण द्वारा विशाल राज्य को प्राप्ति, माता के शाप से सर्प-यज्ञ

में नागों का नाश, ययाति द्वारा छोटे विनम्र पुत्र पुरु को चक्रवर्ती सम्राट बनाया जाना, बलि द्वारा स्वयं को बन्धन में डाल देना, कर्ण द्वारा इन्द्र को कुण्डलों का दान, राजा परीक्षित का तक्षक द्वारा ब्राह्मण शाप से भस्म होना, कर्ण द्वारा ब्राह्मण का छद्मवेश धारण कर परशुराम से अस्त्र-विद्या सीखना, दुर्योधन की सेवा से भीष्म द्रोण जैसे महापुरुषों का विनाश, शिबि द्वारा कपोत-रक्षा में श्येन पक्षी को स्वशरीर का अर्पण, देवासुर-संग्राम में देवताओं और दानवों का संहार, उपकार करने वाले नाडीजंघ नामक बगुले को मारकर ब्राह्मण का पतित होना, राजा दशरथ का पुत्र शोक से प्राण छोड़ना, स्वगुण प्रशंसा से ययाति का स्वर्गलोक से पतन, भीम द्वारा कुरुवंश का विनाश, सूर्य एवं चन्द्र का राहु द्वारा ग्रसित होना, भगवान् विष्णु का वामन रूप में बलि से याचना, शिवापमान करने से दक्ष के यज्ञ का विध्वंस, भगवान् कृष्ण द्वारा शिशुपालवध, हनुमान्जी द्वारा श्रीराम कार्य करना, समुद्र-मन्थन, विश्वामित्र द्वारा वशिष्ठ की धेनु का अपहरण, विश्वामित्र द्वारा मेनका अप्सरा को गले लगाना, अश्वत्थामा के वध को जानकर द्रोणाचार्य का प्राणत्याग, भीम द्वारा दुःशासन का रक्तपान, पाण्डु द्वारा शापवश शरीर त्याग, शिव द्वारा भस्मासुर को वरदान, शंकर जी द्वारा ब्रह्मा के चारों मुखों का काटना, द्रोण की शूद्रता एवं विदुर का ब्राह्मणत्व, कच द्वारा शारीरिक क्लेश प्राप्त करना, सीता का राम द्वारा परित्याग, इन्द्रद्युम्न का कच्छप द्वारा प्रशंसित होने पर स्वर्ग-प्राप्ति, व्याडि एवं इन्द्रदन्त द्वारा राजा की राजलक्ष्मी का हरण आदि कथानकों का उद्धरण देकर स्वकथन व उपदेशों को प्रमाणित करने का भी कार्य करते हैं।

इसके अतिरिक्त कार्तवीर्य अर्जुन द्वारा रावण का बाँधा जाना, ऋष्यशृंग का

वेश्या द्वारा आसक्त और श्रृंगारी बनाया जाना, परशुराम को बालरूप राम द्वारा ब्राह्मण समझकर छोडना, भीम द्वारा जरासन्ध का चीडा जाना, भगवान राम द्वारा बालि-वध, शम्बर असुर की पत्नी का अपने दामाद प्रद्युम्न पर कामासक्ति, शिव की नेत्राग्नि में कामदेव का भस्म होना, युधिष्ठिर द्वारा जुए में सर्वस्व हार जाना, राजा नन्द द्वारा मन्त्री शकटार को कैदखाने में डाला जाना, हिरण्यकशिपु के विनाश हेतु भगवान् का खम्भे से प्रकट होना, नहुष द्वारा इन्द्र रूप में अगस्त्यमुनि का अपमान, विदुर की सलाह न मानने से दुर्योधन का विनाश, घी का अधिक भोजन करने से अग्नि को अजीर्ण होना, कुम्भकर्ण की निद्रा, राम, रघु, शिव, पाण्डु आदि का चला जाना, अष्टावक्र मुनि के शरीर की निन्दा से श्रीसुत द्वारा कुरूपता प्राप्त करना, शुक्राचार्य की सुरक्षा से भी दानवों का अन्त में नष्ट होना, चाणक्य द्वारा नन्दवंश का विनाश, रावण-वध हेतु वेदवती का स्वशरीर छोडना, राम की भक्ति से प्रसन्न विश्वामित्र द्वारा अमोघ अस्त्र-शस्त्र देना, राजा द्रुपद से द्रोणाचार्य द्वारा अर्जुन की सहायता से अपना हिस्सा प्राप्त करना, लोमश द्वारा पाण्डव का कृतार्थ होना, अर्जुन द्वारा राजा विराट के यहाँ आजीविका, राजा जनक की निर्लिप्ति, संवर्त के यज्ञ में गुरु वृहस्पति का लज्जित होना, वृहस्पति द्वारा स्वपत्नी का ग्रहण करना, जो चन्द्रमा द्वारा भोगी गयी थीं, वत्सराज उदयन का शत्रु द्वारा छला जाना, सूर्य को स्वतेज करना, धृतराष्ट्र द्वारा पुत्रों का सर्वस्व सौंप का तिरस्कृत होना, शल्य द्वारा कर्ण का प्रतापहीन होना, ययाति का शुक्र-कन्या से विवाह कर म्लेच्छता प्राप्त करना, नन्दी द्वारा रावण को शाप, कौरव-पाण्डव युद्ध में बलराम की भूमिका, बलि की दानशीलता, लक्ष्मणजी द्वारा इन्द्रजित मेघनाद का वध, अगस्त्य द्वारा वातापि

नामक दैत्य का भक्षण, कुरु आदि राजाओं का अन्त में तपोवन जाना, विदुर द्वारा पुनर्जन्म का बीज ज्ञानाग्नि में भस्म करना, मान्धाता की कीर्ति एवं भीष्म की शर शैय्या आदि कथानकों को क्षेमेन्द्र द्वारा काव्य में संकेतित किया गया है । इससे उनकी कथा प्रियता एवं विस्तृत अध्ययन करने का ज्ञान प्राप्त होता है ।

---------.:0::---------

अध्याय - सप्तम

क्षेमेन्द्र के काव्य पर पूर्ववर्ती ग्रन्थों का प्रभाव

मानव स्वभावतः अनुकरणशील प्राणी है । इसी अनुकरण के ही माध्यम से व्यक्ति समाज में रहकर अन्य लोगों के भावों से प्रभावित होने के साथ ही अपने भी भावों के द्वारा अन्य व्यक्तियों के भावों को प्रभावित करता है । यही स्थिति कवि की भी है क्योंकि वह भी तो सामाजिक व्यक्ति है । जिस प्रकार मनुष्य का शारीरिक विकास खाद्य पदार्थों पर निर्भर करता है उसी प्रकार समयानुकूल भावनाओं एवं मानसिक विचारों के आधार पर कवि काव्य की सर्जना करता है । इन भावनाओं की प्राप्ति, उसे अपने समय की विचार-धारा और तत्कालीन प्राप्त साहित्य द्वारा होती है । पूर्वकालीन परम्परागत विचारधाराओं से प्रभावित होना प्रत्येक कवि के लिए स्वाभाविक है ।

वैसे तो कवि अपनी प्रखर बुद्धि व कल्पना-शक्ति द्वारा नवीन एवं अपूर्व संरचना उपस्थित करता है, किन्तु उसमें अन्य कवियों एवं तत्कालीन लोक-स्थितियों की सहायता अपरिहार्य हो जाती है । किसी कवि के लिए काव्य-सर्जना का प्रमुख हेतु शक्ति, लोक, शास्त्र तथा काव्य इत्यादि के निरीक्षण एवं अनुशीलन से होने वाली निपुणता एवं काव्यज्ञों से शिक्षा प्राप्त करके अभ्यास ही है, जिसे आचार्य मम्मट ने कहा है ।[1]

---

1. शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात् ।
   काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥ - काव्यप्रकाश: 1/3.

इस प्रकार काव्य के उद्भव में सहायक तत्त्व संस्कार लोकवृत्त, शास्त्र तथा काव्यादि के निरीक्षण एवं अनुशीलन से प्राप्त निपुणता एवं काव्यज्ञों से शिक्षा प्राप्त करके किया हुआ अभ्यास किसी कवि के लिए परमावश्यक है । काव्य के इन हेतुओं की प्राप्ति भी पूर्ववर्ती काव्यों पर ही निर्भर है । कवि अपनी कवित्व शक्ति की वृद्धि हेतु अपने पूर्ववर्ती कवियों द्वारा रचित साहित्य एवं काव्य का सूक्ष्म अध्ययन तथा मनन करता है अतः उनकी छाया उसके भावों एवं भाषा पर पड़ती ही है ।

दूसरों के द्वारा प्रयुक्त शब्द अथवा अर्थ का ग्रहण कर अपनी रचना में स्थान देना 'हरण', 'चोरी' आदि नामों से जाना जाता है, किन्तु कवि द्वारा अन्य कवि के शब्द व भावों को ग्रहण करना स्वाभाविक ही है । वह अपने को पूर्णतः अलग नहीं रख सकता । इस विषय में कहा भी गया है कि कोई भी ऐसा कवि नहीं है जो चोरी न करता हो तथा कोई ऐसा व्यवसायी नहीं जिसने चोरी न की हो ।[1] कोई कवि उत्पादक होता है तो कोई प्रचारक । इसके अतिरिक्त कोई आच्छादक अर्थात् दूसरे की रचना को छिपाकर अपना बताना तो कोई संवर्गक अर्थात् निर्भय होकर साफ-साफ अन्य की रचना को अपनी बताने वाला होता है । इस प्रकार का हरण एक पद, एक पाद, दो पादों, सम्पूर्ण श्लोक तथा पूर्ण प्रबन्ध रूप से होता है ।

इसी विषय का प्रतिपादन करते हुए आचार्य क्षेमेन्द्र ने कवियों को पाँच वर्गों

---

1. नास्त्यचौरः कविजनो नास्त्यचौरो वणिग्जनः ।
   स नन्दति विना वाच्यं यो जानाति निगूहितुम्॥ - काव्यमीमांसा, एकादशोऽध्यायः

में विभक्त किया है ।[1] जो कवि अन्य कवि की केवल छाया अथवा भावमात्र ग्रहण करता है वह 'छायोपजीवी' कवि है, किन्तु पदक का अनुसरण करने वाला कवि 'पदकोपजीवी' होता है । एक पूर्ण पाद को वैसा ही अपनी कृति में लिखने वाला 'पादोपजीवी' तथा किसी श्लोक को पूर्ण रूप से ग्रहण करने वाला कवि 'सकलोपजीवी' होता है । भुवनोपजीव्य वह कवि है जिसका अनुसरण सम्पूर्ण विश्व करे जैसे व्यास तथा आदि कवि वाल्मीकि । अब हम क्षेमेन्द्र द्वारा गृहीत प्रभाव का पर्यालोचन करते हैं ।

कविवर क्षेमेन्द्र के काव्यों पर हम अनेक पूर्ववर्ती कवियों के काव्यों का प्रभाव देखते हैं । आदि कवि वाल्मीकि, वेदव्यास, महाकवि कालिदास, बाणभट्ट, राजशेखर, हर्ष, भारवि, आनन्दवर्धन व अन्य अनेक पूर्ववर्ती कवियों एवं आचार्यों की रचनाओं का प्रभाव इनके काव्यों पर स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है । कविवर क्षेमेन्द्र तो इस क्षेत्र में इस उदारवादी दृष्टिकोण के थे कि ज्ञानप्राप्ति व कवित्व-विकास हेतु सभी मनीषियों की शिष्यता ग्रहण करनी चाहिये ।

कविवर क्षेमेन्द्र का काव्य-विस्तार अधिक है । इनके विशाल काव्य-सङ्ग्रह को देखने से आभास होता है कि इनका अध्ययन क्षेत्र का विस्तार अधिक था ।

---

1. छायोपजीवी पदकोपजीवी पादोपजीवी सकलोपजीवी ।

भवेदथ प्राप्तकवित्वजीवी स्वोन्मेषतो वा भुवनोपजीव्यः ॥ -कविकण्ठाभरण 2/1.

इन्होंने अपने पूर्ववर्ती काव्यों का अध्ययन विस्तारपूर्वक किया होगा । परिणाम-स्वरूप इनके काव्यों पर पूर्ववर्ती काव्यों का प्रभाव होना स्वाभाविक ही है ।

कविवर की रामायणमञ्जरी, जिसे 'रामायणकथासार' भी कहा जाता है, शुद्ध व सूक्ष्म शैली में वाल्मीकि रामायण का सार ही है । इनकी यह रचना पूर्णतः वाल्मीकि रामायण पर आधारित है । अन्तर केवल यह है कि इन्होंने अपनी भाषा शैली में कथा को संक्षेप में प्रस्तुत किया है । इन्होंने रामायणमञ्जरी में वाल्मीकि की प्रशंसा लिखते हुए कहा है कि वे सर्वोपजीव्य थे ।[1] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रामायणमञ्जरी पर वाल्मीकि रामायण का पूर्णतः प्रभाव है । इसके अतिरिक्त चारुचर्या, दर्पदलनम् आदि ग्रन्थ भी वाल्मीकि रामायण से प्रभावित हैं । चारुचर्या नामक शतकग्रन्थ में क्षेमेन्द्र ने वाल्मीकि रामायण की अठारह कथाओं का उल्लेख किया है । इन कथानक प्रसङ्गों में कुछ प्रमुख हैं ।[2] जैसे राम की सङ्गति से विभीषण

---

1. ज्येष्ठो जयति वाल्मीकिः सर्गबन्धे प्रजापतिः ।
   यः सर्वहृदयालीनं काव्यं रामायणं व्यधात् ॥
   नुमः सर्वोपजीव्यं तं कवीनां चक्रवर्तिनम् । रामायणमञ्जरी, सर्ग 1,
   यस्येन्दुधवलैः श्लोकैर्भूषिता भुवनत्रयी ॥ श्लोक 1 व 3.

2. कुर्वीत संगतं सद्भिर्नासद्भिर्गुणवर्जितैः ।
   प्राप राघवसंगत्या प्राज्यं राज्यं विभीषणः ॥
   औचित्यप्रच्युताचारो युक्त्या स्वार्थं न साधयेत् ।
   व्याजबालिवधेनैव रामकीर्तिः कलङ्किता ॥ चारुचर्या, श्लोक 15, 51.

द्वारा विशाल राज्य की प्राप्ति, भगवान् राम द्वारा बालि का वध करना तथा लक्ष्मणजी द्वारा उग्रतांत्रिक प्रयोग करने वाले इन्द्रजित् मेघनाद का वध इत्यादि । दर्पदलनम् पर भी वाल्मीकि-रामायण का व्यापक प्रभाव है । रामायण के प्रसंग[1] इसमें भी प्राप्त होते हैं । इनकी अन्य रचनाओं दशावतारचरितम् व चतुर्वर्गसंग्रह आदि पर भी रामायण का प्रभाव पड़ा है । रामायण के प्रसंग इन ग्रन्थों में भी प्राप्त होते हैं ।

कविवर क्षेमेन्द्र व्यासजी से बहुत ही प्रभावित थे । इन्होंने भारतमञ्जरी, जिसे महाभारतमञ्जरी भी कहा जाता है, की रचना व्यासकृत महाभारत के आधार ही की है । वस्तुतः इनकी यह रचना महर्षि व्यासकृत महाभारत का संक्षिप्त रूप ही है । इन्होंने भारतमञ्जरी में व्यासाष्टकस्तोत्र लिखा है जिसमें उन्हें सम्पूर्ण शास्त्र सागर बताया है ।[2]

---

1. रामोऽपि साहायकलाभलोभाच्चक्रे कपेः संश्रयदैन्यसेवाम् ।
   शूरप्रतापः शिशिरर्तुनेव कालेन लीढस्तनुतामुपैति ॥ - दर्पदलनम् 5/9.

2. नमो विद्यानदीपूर्णशास्त्राब्धिसकलेन्दवे ।
   पीयूषरससाराय कविव्यापारवेधसे ॥

   नमः सत्यनिवासाय स्वविकाशविलासिने ।
   व्यासाय धाम्ने तपसां संसारायासहारिणे ॥

   - भारतमञ्जरीस्थव्यासाष्टकस्तोत्रम् श्लोक 19-20.

भारतमञ्जरी की रचना करके ही क्षेमेन्द्र ने 'व्यासदास' की उपाधि ग्रहण की, जो कलाविलास के अतिरिक्त सभी ग्रन्थों में पायी जाती है। प्रायः ग्रन्थों के अन्त में इन्होंने ग्रन्थ के नाम के साथ अपरनाम व्यासदास क्षेमेन्द्रविरचित जोड़कर लिखा है।[1] भारतमञ्जरी के अतिरिक्त चारुचर्या, दर्पदलनम्, दशावतारचरितम् व अन्य ग्रन्थ भी पर्याप्तरूपेण व्यासकृत महाभारत से प्रभावित है।

चारुचर्या में महाभारत के सैंतीस कथा प्रसङ्गों का उल्लेख है। सभी सैंतीस प्रसङ्ग महाभारत की ही कथा पर आधारित हैं। उदाहरणस्वरूप कुछ प्रसङ्ग[2] उद्धृत हैं।

दर्पदलनम् नामक ग्रन्थ पर भी महाभारत की कथाओं का पूरा प्रभाव है। महाभारत के अनेक प्रसङ्गों का उद्धरण कविवर द्वारा इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया गया है। एक जगह भरद्वाज पुत्र यवक्रीत व रैभ्यमुनि-पुत्र वधू से सम्बन्धित कथा का उद्धरण कविवर ने यथावत् प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त अन्य च्यवन ऋषि व सुकन्या

---

1. समाप्तमिदं भारतमञ्जरीस्थं व्यासाष्टकस्तोत्रम् कवेर्व्यासदासापरनाम्नः प्रकाशेन्द्र-सूनोः क्षेमेन्द्रस्य - भारतमञ्जरी, पृष्ठ 850.

   इति श्रीव्यासदासापराख्यक्षेमेन्द्रविरचितायां नर्ममालायां तृतीयः परिहासः, समाप्तेयं नर्ममाला। - नर्ममाला के अन्त में।

2. न सञ्चरणशीलः स्यान्निशि निःशंकमानसः।
   माण्डव्यः शूललीनोऽभूच्चौरश्चौरशङ्कया ॥
   परप्राणपरित्राणपरः कारुण्यवान् भवेत्।
   मांसं कपोतरक्षायै स्वं श्येनाय ददौ शिबिः॥ चारुचर्या, श्लोक 9 व 23.

प्रसङ्ग परीक्षित कथा, वृत्रासुर इन्द्रादि कथाओं को ग्रन्थ में समाहित किया है । महाभारत[1] में मुनि द्वारा जटा को अग्नि में हवन करने के प्रसङ्ग से साम्य रखता हुआ भाव दर्पदलनम्[2] में दर्शनीय है ।

इसके अतिरिक्त कविवर क्षेमेन्द्र ने सुवृत्ततिलकम् में भी महाभारत के द्रोणपर्व से श्लोक[3] का उद्धरण दिया है । औचित्य-विचार-चर्चा में भी महाकवि वेदव्यास रचित श्लोक[4] को उद्धृत किया है । कविकण्ठाभरण, जो कवि-शिक्षा का ग्रन्थ है,

---

1. अवलुच्य जटामेकां जुहावाग्नौ सुसंस्कृते,
   ततः समभवन्नारी तस्या रूपेण सम्मिता ।
   अवलुच्य परां चापि जुहावाग्नौ जटां पुनः
   ततस्तं समुपास्थाय कृत्या सृष्टा महात्मना ॥

   - महाभारत वनपर्वान्तर्गत तीर्थयात्रापर्व में यवक्रीतोपाख्यान

2. उत्पाद्य विकटाटोपकोपः प्रौढाग्निपिङ्गलाम् ।
   स जुहाव जटां वह्नौ क्रूरक्रोधघटामिव ॥ दर्पदलनम् 3/114.

3. ततः कुमुदनाथेन कामिनीगण्डपाण्डुना ।
   नेत्रानन्देन चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलङ्कृता ॥

   - सुवृत्ततिलकम् 1/5 एवम् महाभारत द्रोणपर्व 184/46.

4. सत्यं मनोरमा रामाः सत्यं रम्या विभूतयः ।
   किन्तु मत्ताङ्गनापाङ्गभङ्गिलोलं हि जीवितम् ॥ औ०वि०च०, श्लोक 46.

में भी वेदव्यासकृत रचना[1] को उद्धृत किया है जो चित्रपरिचय के प्रसङ्ग में है ।

बृहत्कथा का भी क्षेमेन्द्र की रचनाओं पर अधिक प्रभाव पड़ा है । चारुचर्या नामक ग्रन्थ में बृहत्कथा के प्रसङ्ग[2] मिलते हैं । इसी ग्रन्थ पर ही आधारित बृहत्कथा मञ्जरी की रचना है । यह मञ्जरी पैशाची भाषा में लिखित गुणाढ्य की बृहत्कथा का साढ़े सात हजार श्लोकों का सारसङ्ग्रह है । इसमें कथा को अत्यधिक संक्षिप्त रूप देने के लोभ में शैली दुर्बोध एवं अस्पष्ट हो गयी है । इसीलिए डॉ० ब्यूलर ने कहा है कि क्षेमेन्द्र की शैली में वह प्रवाह एवं सौन्दर्य नहीं है, जो हमें सोमदेव द्वारा लिखित गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' के सारसङ्ग्रह कथासरित्सागर में मिलता है ।

कविवर क्षेमेन्द्र की रचनाओं पर गीता का भी प्रबल प्रभाव है । गीता के अनेक श्लोकों के अंशों को भी क्षेमेन्द्र ने अपने काव्यों में उद्धृत किया है । गीता के ऐसे कुछ प्रसङ्ग उद्धृत हैं ।[3] गीता में पण्डित को विद्याविनय सम्पन्न ब्राह्मण, गाय,

---

1. अतथ्यान्यपि तथ्यानि दर्शयन्ति विचक्षणाः ।
   समे निम्नोन्नतानीव चित्रकर्मविदो जनाः ॥ कविकण्ठाभरणम् 5/55.

2. न कदर्यतया रक्षेल्लक्ष्मीं क्षिप्रपलायिनीम् ।
   युक्त्याव्याडीन्द्रदत्ताभ्यां हृताश्रीर्नन्दभूभृतः ॥ चारुचर्या, श्लोक 46.

3. अ. विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
   शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताःसमदर्शिनः ॥ श्रीमद्भगवद्गीता 5/18.

   ब. विद्यावति विप्रजने गवि हस्तिनि कुक्कुरे श्वपाके च ।
   मद्यमदः समदर्शी स्वपरविभागं न जानाति ॥ कलाविलास 6/16.

हाथी, कुत्ता व चाण्डाल में समदर्शी बताया गया है । इन्हीं भावों पर आधारित क्षेमेन्द्र ने भी शराबी पर व्यङ्ग्य करते हुए उसे भी समदर्शी बताया है, वह भी स्व व पर ज्ञान से रहित होता हुआ समान भाव रखता है ।

गीता के श्लोक की पूरी एक पंक्ति को ही अपनी रचना में कवि द्वारा सम्मिलित किया गया है । इससे उनकी गीता के श्लोकों के प्रति गहन रुचि व इन पर उसके गहन प्रभाव का द्योतक है । गीता के श्लोकों का सर्वाधिक प्रभाव देशोपदेश पर दृष्टिगोचर होता है । इसमें कविवर ने गीता की कई पंक्तियों को उद्धृत किया है । कतिपय उद्धरण प्रस्तुत हैं ।[1]

---

1. अ. समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
   शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥ गीता 12/18.

   ब. समः शत्रौ च मित्रे च तथामानापमानयोः ।
   वृत्तिच्छेदकृताभ्यासः खलो निर्वाणदीक्षितः ॥ देशोपदेशः 1/6.

   स. या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
   यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ गीता 2/69.

   द. या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
   यस्यां जाग्रति भूतानि सा रात्रिर्लुब्धचेतसः ॥ देशोपदेशः 3/35

महाकवि कालिदास की अमर लेखनी से प्रसूत मेघदूतम् का भी प्रभाव कविवर क्षेमेन्द्र की रचनाओं पर पड़ा है । इन्होंने सुवृत्ततिलकम् नामक रचना में मेघदूतम् के तीन श्लोकों का उद्धरण दिया है ।[1]

क्षेमेन्द्र की रचना कविकण्ठाभरण में भी सगुण के उदाहरण के रूप में मेघदूतम् का श्लोक[2] उद्धृत है ।

औचित्यविचारचर्चा में भी एक श्लोक[3] उद्धृत है ।

महाकाव्य रघुवंश का भी प्रभाव इनकी रचनाओं पर है । रघुवंश के एक श्लोक[4] को कविवर ने 'औचित्यविचारचर्चा' में कुलौचित्य के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है ।

---

1. सुवृत्ततिलकम् में श्लोक संख्या 64, 65 व 89 जो मेघदूतम् के क्रमशः श्लोक संख्या 51, 1 व 2 से उद्धृत हैं ।

2. श्यामास्वङ्गं चकितहरिणी प्रेक्षणे दृष्टिपातं
   गण्डच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान् ।
   उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
   हन्तैकस्थं क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥ कविकण्ठाभरण 30 जो कुमारसम्भवम् 101 है।

3. औचित्यविचारचर्चा श्लोक संख्या 9 जो मेघदूतम् में श्लोक संख्या 6 है ।

4. औचित्यविचारचर्चा श्लोक संख्या 82 जो रघुवंश में 3/70 है ।

रघुवंश के एक श्लोक को तो थोड़े वर्ण भेद से पूरा ही कविवर क्षेमेन्द्र ने अपनी रचना में समाहित किया है। रघुवंश के श्लोक से इनके द्वारा उद्धृत श्लोक पूर्णत. प्रभावित है।[1] एक ही श्लोक[2] का उद्धरण सुवृत्ततिलकम् में दिया गया है। कविकण्ठाभरण में भी दो श्लोकों[3] को उद्धृत किया गया है।

महाकवि कालिदास द्वारा ही विरचित विक्रमोर्वशीयम् के भी एक श्लोक का उद्धरण कविवर क्षेमेन्द्र ने अपनी रचना औचित्यविचारचर्चा में दिया है।[4]

महाकविकालिदासप्रणीत अभिज्ञानशाकुन्तलम् का भी प्रभाव कविवर क्षेमेन्द्र की रचनाओं पर है। सुवृत्ततिलकम् में इस ग्रन्थ का एक श्लोक[5] उद्धृत किया गया है।

महाकवि कालिदास की रचना मालविकाग्निमित्रम् द्वारा भी कविवर क्षेमेन्द्र की रचना प्रभावित है। कविवर क्षेमेन्द्र को विद्या भेद के भी विवेचन के सम्बन्ध में

---

1. वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
   जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥ — रघुवंश 1/1.

   वाण्यर्थाविव संयुक्तौ वाण्यर्थप्रतिपत्तये।
   जगतो जनकौ वन्दे शर्वाणीशशिशेखरौ॥ — कविकण्ठाभरण में परावृत्ति पदों के उदाहरण के रूप में

2. तदन्वये शुद्धिमति प्रसूतः शुद्धिमत्तरः।
   दिलीप इति राजेन्दुरिन्दुःक्षीरनिधाविव॥ — औचित्यविचारचर्चा श्लोक संख्या 27 व रघुवंश 1/12

3. कविकण्ठाभरणम् श्लोक संख्या 2 व 52 जो रघुवंश में क्रमशः 1/1 व 1/53 है।

4. औचित्यविचारचर्चा श्लोक 102 जो विक्रमोर्वशीय में 2/6 का है।

5. सुवृत्ततिलकम् श्लोक 71 जो शाकुन्तल में 2/6 का है।

प्रेरणा सम्भवत: कालिदास से ही प्राप्त हुई है । महाकवि कालिदास और आचार्य क्षेमेन्द्र के पण्य विद्या सम्बन्धी विचार द्रष्टव्य हैं ।[1] इसी तरह पुरूरवा के कथानक की प्रस्तावना में उर्वशी के स्वरूप का वर्णन करते हुए महाकवि ने उर्वशी के मुख में चन्द्र और पद्म की एक साथ उपस्थिति की ओर सङ्केत किया है । इस स्थल[2] से उन पर कालिदास की स्पष्ट छाप दृष्टिगत होती है ।

कवि कुमारदास की रचना जानकीहरण के भी एक श्लोक[3] को कविवर क्षेमेन्द्र ने अपनी रचना औचित्यविचारचर्चा में उद्धृत किया है ।

---

1. अ. यस्यागम: केवल जीविकायै ।
   तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति ॥ मालविकाग्निमित्रम्

   ब. परोत्कर्षं समाच्छाद्य विक्रयाय प्रसार्यते ।
   या मुहुर्धनिनामग्रे किं तया पण्यविद्यया ॥ दर्पदलनम् 3/33

2. अ. उर्वशीस्वमुखे मैत्रीं वदन्तीवेन्दुपद्मयो: । वही, 4/19.

   ब. चन्द्रं गता पद्मगुणान् न भुङ्क्ते
   पद्माश्रिता चान्द्रमसीं अभिख्याम् ।
   उमामुखं तु प्रतिपद्य लोला–
   द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मी: ॥ कुमारसम्भवम् 5

3. अयि विजहीहि दृढोपगूहनं त्यज नवसंगमभीरु वल्लभम् ।
   अरुणकरोद्गम एष वर्तते वरतनु संप्रवदन्ति कुक्कुटा: ॥
   – औचित्यविचारचर्चा 73 महाभाष्य में 1-3-48 की संख्या द्वारा उदाहृत है किन्तु जानकीहरण में नहीं मिलता है ।

प्रसिद्ध कवि राजशेखर द्वारा रचित कई ग्रन्थों का भी प्रभाव कविवर क्षेमेन्द्र की रचनाओं पर पड़ा है । राजशेखर की प्रसिद्ध रचना कर्पूरमञ्जरी के एक श्लोक[1] का उदाहरण क्षेमेन्द्र ने अपनी रचना औचित्यविचारचर्चा में दिया है । इनकी अन्य रचना प्रचण्डपाण्डवम् का भी प्रभाव क्षेमेन्द्र की रचना पर पड़ा है । इन्होंने औचित्य-विचारचर्चा में प्रचण्डपाण्डव के श्लोक[2] को उद्धृत किया है ।

राजशेखर द्वारा रचित बालरामायणम् के अनेक श्लोकों को कविवर क्षेमेन्द्र द्वारा कई रचनाओं में उद्धृत किया गया है । औचित्य-विचार-चर्चा में बालरामायण के पाँच श्लोको[3] को उद्धृत किया गया है । सुवृत्ततिलक में भी एक श्लोक[4] को उदाहृत किया गया है ।

---

1. माणं मुंचध देह वल्लहजणे दिट्ठिं तरंगुत्तरं
   तारुण्णं दिअहाइं पंच दह वा पीणत्थणत्थंभणं ।
   इत्थं कोहलिमंजुसिंजिणमिसा छिवस्स पचेसुणो
   दिण्णा चित्तमहूसवेण सहसा आणव्व सव्वंकसा ॥
   - औचित्यविचारचर्चा श्लोक 51, कर्पूरमञ्जरी 1/18.

2. औचित्यविचारचर्चा श्लोक 8 जो प्रचण्डपाण्डवम् में 2/11 है ।

3. औचित्यविचारचर्चा श्लोक संख्या क्रमशः 7, 12, 17, 61 व 91 जो बालरामायणम् में क्रमशः 10/41, 1/39, 5/21, 2/28 व 4/3 है ।

4. सुवृत्ततिलकम् श्लोक 73,
   बालरामायण 1/63.

राजशेखर द्वारा रचित विद्धशालभञ्जिका का भी क्षेमेन्द्र की रचनाओं पर प्रभाव स्पष्ट है । इन्होंने अपनी रचना में कई श्लोकों[1] को उद्धृत किया है ।

श्रीहर्ष द्वारा रचित रत्नावली का भी व्यापक प्रभाव क्षेमेन्द्र की रचनाओं पर पड़ा है । इस ग्रन्थ के कई श्लोकों का उद्धरण इनकी रचना औचित्यविचारचर्चा में प्राप्त होता है ।[2]

कविकण्ठाभरण[3] व सुवृत्ततिलक[4] नामक रचनाओं में भी इस ग्रन्थ के एक-एक श्लोक उद्धृत हैं । नीतिभर्तृहरि की भी रचनाओं का कविवर क्षेमेन्द्र की रचनाओं पर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । भर्तृहरि के सुभाषित संग्रह के ही दो श्लोकों[5] का सुवृत्ततिलक में उद्धरण है । इनकी रचना का प्रभाव क्षेमेन्द्र की अन्य रचनाओं चतुर्वर्ग-संग्रह व दर्पदलनम् आदि पर पड़ा है । भर्तृहरि के श्लोक की एक पंक्ति को ही

---

1. अ. औचित्यविचारचर्चा श्लोक 21, 34, 81.
   ब. सुवृत्ततिलकम् श्लोक 50.
   स. कविकण्ठाभरणम् श्लोक संख्या 74.
2. औचित्यविचारचर्चा श्लोक संख्या 4, 18, 23, 36 व 37 जो रत्नावली के क्रमशः 2/13, 2/4, 2/2 व 2/3, 1/8 हैं ।
3. कविकण्ठाभरणम् श्लोक 54, रत्नावली 4/21.
4. सुवृत्ततिलकम् श्लोक संख्या 43, रत्नावली 2/7.
5. सुवृत्ततिलकम् श्लोक संख्या 86 व 87, सुभाषितसंग्रह 287 व 162.

कविवर क्षेमेन्द्र ने अपने श्लोक में जोड़ा है । यह साम्य द्रष्टव्य है ।[1]

कविवर भवभूति की भी रचनाओं का व्यापक प्रभाव क्षेमेन्द्र की रचनाओं पर पड़ा है । इनकी प्रसिद्ध रचना उत्तररामचरितम् का क्षेमेन्द्र की औचित्यविचारचर्चा में कई स्थानों पर उल्लेख है । उत्तररामचरित के कई श्लोक[2] इस ग्रन्थ में उद्धृत हैं ।

भवभूति की अन्य रचना मालतीमाधवम् के दो श्लोक[3] क्षेमेन्द्र की रचना सुवृत्ततिलकम् में उद्धृत हैं । महाकवि बाणभट्ट की भी रचनाओं का क्षेमेन्द्र की रचनाओं पर प्रभाव स्पष्ट है । इनकी प्रसिद्ध रचना कादम्बरी की प्रस्तावना में उल्लिखित तीन श्लोक[4] औचित्यविचारचर्चा में उद्धृत हैं । इस ग्रन्थ के दो श्लोक[5] सुवृत्ततिलकम् में उदाहृत हैं ।

---

1. अ. विद्या विवादाय धनं मदाय, शक्तिः परेषां परिपीडनाय ।
   खलस्य साधोर्विपरीतमेतद् ज्ञानाय, दानाय च रक्षणाय ।। नीतिशतक

   ब. विद्या विवादाय धनंमदाय प्रज्ञाप्रकर्षः परवञ्चनाय ।
   अत्युन्नतिर्लोकपराभवाय येषां प्रकाशस्तिमिरं हि तेषाम् ।। दर्पदलनम् 2/9.

2. औचित्यविचारचर्चा श्लोक संख्या 10, 11, 35 व 80 जो उत्तररामचरितम् में 4/27, 4/29, 5/34 व 2/27 है ।

3. सुवृत्ततिलकम् श्लोक संख्या 63 व 69

4. औचित्यविचारचर्चा श्लोक संख्या 15, 57 व 59 जो कादम्बरी प्रस्तावना में श्लोक संख्या 10 व 2 है ।

5. सुवृत्ततिलकम् श्लोक 39 व 40 जो कादम्बरी प्रस्तावना में श्लोक संख्या 5 व 4 है।

महाकवि बाणभट्ट की अन्य रचना हर्षचरितम् के कई श्लोकों का क्षेमेन्द्र की रचना पर बहुत ही प्रभाव है । क्षेमेन्द्र पर बाण की छाया के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं । इनमें कुछ प्रस्तुत[1] हैं ।

अमरुक द्वारा रचित अमरुकशतक के एक-एक श्लोक[2] का उद्धरण औचित्यविचारचर्चा व कविकण्ठाभरण में दिया गया है ।

---

1. जटाक्षसूत्राजिनयोगपट्टकन्थादृढग्रन्थिनिपीड्यमानम् ।
   विवेकहीनं विरतप्रकाशं व्रतं वृहद्बन्धनमामनन्ति ॥ दर्पदलनम् 7/12.

   ब. पिंगलिम्न: जटाकलापस्य - ग्रथनन्ग्रंथिमन्यथा
   कृष्णाजिनस्य - अक्षमालां । हर्षचरितम् पृष्ठ 14.

   स. शापक्षरैर्भ्रमद्भि. - । दर्पदलनम् 7/59.

   द. शापाक्षरैरिव षट्चरणचक्रैराकृष्यमाणा । हर्षचरितम्, पृष्ठ 19.

2. अ. आलोलामलकावलीं विलुलितां बिभ्रच्चलत्कुण्डलं
   किञ्चिन्मृष्टविशेषकं तनुतरै: स्वेदाम्भसां सीकरै: ।
   तन्वङ्ग्या सुतरां रतान्तसमये वक्त्रं रतिव्यत्यये
   तत् त्वां पातु चिराय किं हरिहरस्कन्दादिभिर्दैवतै: ॥
   - औचित्यविचारचर्चा श्लोक 107, अमरुकशतक श्लोक 3.

   ब गन्तव्यं यदि नाम निश्चितमहो गन्तासि केयं त्वरा
   द्वित्राण्येवदिनानि तिष्ठतु भवान् पश्यामि यावन् मुखम् ।
   संसारे घटिकाप्रणालिविगलद्वारा समे जीविते
   को जानाति पुनस्त्वया सह मम स्याद् वा न वा संगम: ॥
   - कविकण्ठाभरणम् श्लोक 8.

अमरुकशतक के एक पद्य के चौथे चरण का तो कविवर क्षेमेन्द्र द्वारा कविकण्ठाभरण के एक पद्य में पूर्णतः समावेश है ।[1]

कविगण अभिनन्द, कलशक, गन्दिनक, चन्द्रक, दीपक, परिमल, भर्तृमेण्ठ, रिल्लु, लाटडिण्डीरू, वाग्भट व साहिल के एक-एक श्लोक क्षेमेन्द्ररचित सुवृत्ततिलकम् में उद्धृत हैं ।

आर्यभट्ट, उपाध्यायगङ्गक, चन्द्रक, भीमसाहि, इन्द्रभानु, चक्रपाल, मालवरुद्र, मुक्तिकलश, यशोवर्मा व विद्यानन्द नामक कवियों के एक-एक श्लोक क्षेमेन्द्ररचित कविकण्ठाभरण में उद्धृत है । इस प्रकार इन कवियों की भी रचनाओं का क्षेमेन्द्र की रचनाओं पर व्यापक प्रभाव है ।

---

1. अ. गन्तव्यं यदि नाम निश्चितमहो गन्तासि केयं त्वरा
द्वित्राण्येव दिनानि तिष्ठतु भवान् पश्यामि यावन्मुखम् ।
संसारे घटिकाप्रणालविगलद्धारा समे जीविते
को जानाति पुनस्त्वया सह मम स्याद् वा न वा सङ्गमः ॥

– अमरुकशतक श्लोक 163.

ब. हंहो स्निग्धसखे ! विवेक ! बहुभिः प्राप्तोऽसि पुण्यैर्मया
गन्तव्यं कतिचिद् दिनानि भवता नास्मत्सकाशात् क्वचित् ।
त्वत्सङ्गेन करोमि जन्ममरणोच्छेदं गृहीतत्वरः
को जानाति पुनस्त्वया सह मम स्याद् वा न वा सङ्गमः ॥

– कविकण्ठाभरण 2/9.

कविगण कार्पटिक, गौडकुम्भकार, तुञ्जीर, धर्मकीर्ति, परिव्राजक, भट्टप्रभाकर, माघ, मातृगुप्त, मालवकुवलय, यशोवर्मा, राजमुक्तापीड, वराहमिहिर, श्यामल, श्रीचक्र व श्रीमदुत्पलराज के एक-एक श्लोक का उद्धरण कविवर क्षेमेन्द्र द्वारा अपनी रचना औचित्यविचारचर्चा में दिया गया है ।

आनन्दवर्धन की प्रसिद्ध रचना ध्वन्यालोक का भी क्षेमेन्द्र की रचना पर प्रभाव है । क्षेमेन्द्र ने इस ग्रन्थ के एक श्लोक[1] का उद्धरण दिया है ।

कविचक्र मुक्ताकण, यशोवर्मा, रत्नाकर, वीरदेव, श्यामल के दो-दो श्लोकों का उद्धरण कविवर क्षेमेन्द्र द्वारा सुवृत्ततिलकम् में दिया गया है ।

कवि दामोदरगुप्त की प्रसिद्ध रचना कुट्टनीमतम् के एक श्लोक[2] का उद्धरण कविवर क्षेमेन्द्र द्वारा कविकण्ठाभरण में किया गया है ।

कवि प्रवरसेन द्वारा रचित सेतुबन्ध नामक ग्रन्थ का भी कविवर क्षेमेन्द्र की रचना पर प्रभाव है । इन्होंने इस ग्रन्थ के दो श्लोकों[3] का उद्धरण अपनी रचना औचित्यविचारचर्चा में दिया है ।

---

1. औचित्यविचारचर्चा श्लोक 50, ध्वन्यालोक 3/87.
2. अधरे बिन्दुः कण्ठे मणिमाला कुचयुगे शशप्लुतकम् । कविकण्ठाभरणम् 39,
   तव सूचयन्ति सुन्दरि कुसुमायुधशास्त्रपण्डितं रमणम् ॥ कुट्टनीमतम् 402.
3. औचित्यविचारचर्चा श्लोक संख्या 32 व 53 जो सेतुबन्ध में क्रमशः 1/20 व 4/20 है ।

कवि चन्द्रक, दीपक, परिमल व मालवरुद्र द्वारा रचित क्रमशः चार, तीन, चार व दो श्लोकों का उद्धरण कविवर क्षेमेन्द्र द्वारा रचित औचित्यविचारचर्चा में दिया गया है ।

कवि भट्टनारायण द्वारा वेणीसंहार का भी प्रभाव क्षेमेन्द्ररचित औचित्यविचारचर्चा पर पड़ा है । इन्होंने इस ग्रन्थ के दो श्लोकों को अपनी रचना में उद्धृत किया है ।[1]

कवि विद्यानन्द की रचना का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । इनके द्वारा रचित एक श्लोक[2] कविकण्ठाभरण में मिलता है ।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने शिष्य कवि भट्टोदयसिंह द्वारा रचित ग्रन्थ भक्तिभवमहाकाव्यम् का भी अध्ययन कर उसके एक श्लोक[3] को अपनी रचना कविकण्ठाभरण में समाहृत किया है ।

---

1. औचित्यविचारचर्चा श्लोक 14 व 24 जो वेणीसंहार में क्रमशः 3/4 व 3/12 है ।

2. यामालोकयतां कलाः कलयतां छायाः समाचिन्वतां
   क्लेशः केवलमङ्गुलीर्गणयतां मौहूर्तिकानामयम् ।
   धन्या सा रजनी तदेव सुदिनं पुण्यः स एव क्षणो
   यत्राज्ञातचरः प्रियानयनयोः सीमानमेति प्रियः ॥ कविकण्ठाभरणम् 47.

3. कविकण्ठाभरणम् श्लोक 61.

शिष्य कवि की ही अन्य रचना ललिताभिधान के भी एक श्लोक[1] को कविकण्ठाभरण में क्षेमेन्द्र ने उद्धृत किया है ।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने शिष्यों मे प्रमुख कवि राजपुत्र लक्ष्मणादित्य द्वारा रचित एक श्लोक[2] को सुवृत्ततिलकम् में उद्धृत किया है ।

कवि भट्टेन्दुराज की भी रचनाओं का कविवर क्षेमेन्द्र की रचनाओं पर प्रभाव पड़ा है । क्षेमेन्द्र ने इनके द्वारा रचित तीन श्लोकों को सुवृत्ततिलक[3] में तथा दो श्लोकों को औचित्यविचारचर्चा[4] नामक ग्रन्थ में समाहृत किया है ।

कवि भट्टभल्लट द्वारा रचित भल्लटशतक का भी प्रभाव कविवर क्षेमेन्द्र की रचनाओं पर पड़ाहै । कविवर क्षेमेन्द्र ने भल्लटशतक के एक श्लोक[5] को औचित्य-विचारचर्चा तथा दो श्लोकों[6] को कविकण्ठाभरण में उद्धृत किया है ।

महाकवि भारवि द्वारा रचित अर्थगौरवपूर्ण महाकाव्य किरातार्जुनीयम् से

---

1. कविकण्ठाभरम् श्लोक 59.
2. सुवृत्ततिलकम् श्लोक 61.
3. वही, श्लोक 54, 59 व 60.
4. औचित्यविचारचर्चा, श्लोक 63 व 89.
5. वही, श्लोक 78, जो भल्लटशतक में श्लोक 5 है ।
6. कविकण्ठाभरण श्लोक 4 व 45 जो भल्लटशतक में क्रमशः श्लोक 4 व 5 है ।

भी कविवर क्षेमेन्द्र की रचना प्रभावित हुई है । किरातार्जुनीयम् के एक श्लोक[1] को कविवर क्षेमेन्द्र ने अपनी रचना सुवृत्ततिलकम् से उद्धृत किया है ।

विष्णुशर्मा रचित प्रसिद्ध कथा-ग्रन्थ पञ्चतन्त्र का भी प्रभाव कविवर क्षेमेन्द्र की रचना पर है । पञ्चतन्त्र की सिंह-शशक कथा का उद्धरण क्षेमेन्द्र ने अपनी रचना दर्पदलनम्[2] में दिया है ।

कविवर क्षेमेन्द्र की रचनाओं पर पुराणों का भी व्यापक प्रभाव है । इनकी रचना दर्पदलन में पद्मपुराण की भी कथाओं का प्रभाव है । चन्द्रमा व बुध का प्रसंग, जो पद्म-पुराण में वर्णित है, को दर्पदलनम्[3] में उद्धृत किया गया है ।

कविवर क्षेमेन्द्र की रचनायें वैदिक मन्त्रों से भी प्रभावित हैं । गायत्री-मन्त्र के शब्दों को कविवर ने चतुर्वर्गसंग्रह के एक श्लोक[4] में उद्धृत किया है ।

---

1. श्रियः कुरूणामधिपस्य पालनीं
   प्रजासु वृत्तिंयमयुङ्क्त वेदितुम् ।
   स वर्णिलिङ्गी विदितः समाययौ
   युधिष्ठिरं द्वैतवने वनेचरः ॥ सुवृत्ततिलकम् श्लोक 83, किरातार्जुनीयम् 1/1.

2. न कश्चिद् बुद्धिहीनस्य शौर्येण क्रियते गुणः ।
   पर्जन्यगर्जितामर्षी श्वभ्रे पततिकेसरी ॥ दर्पदलनम् 5/24.

3. भूभुजां सोमवंश्यानां यः पूर्वपुरुषो बुधः ।
   गुरुतल्पे स चन्द्रस्य जातो जगति विश्रुतः ॥ वही, 1/18.

4. चतुर्वर्गसङ्ग्रहः 1/14.

बुद्धचरित का भी इनका रचना पर व्यापक प्रभाव है । इनकी प्रसिद्ध रचना बुद्धावदानकल्पलता इससे पूर्णतः प्रभावित है । चतुर्वर्गसङ्ग्रह के श्लोक पर बुद्धवाद का पूर्णतः प्रभाव है । सोमदेवकृत कथासरित्सागर का प्रभाव चारुचर्या पर है ।

शूद्रकप्रणीत मृच्छकटिकम् का भी व्यापक प्रभाव क्षेमेन्द्र के काव्य पर पड़ा है । मृच्छकटिकम् की व्यङ्ग्यात्मक शैली से क्षेमेन्द्र पूर्णतः प्रभावित हैं । जिस प्रकार इस नाटक में विभिन्न वर्गों पर व्यङ्ग्यपूर्ण उपहास हैं, उन्हीं भावों से साम्य रखता हुआ भाव देशोपदेश, नर्ममाला व कलाविलास इत्यादि ग्रन्थों में दर्शनीय है ।

दामोदर गुप्त की वेश्या सम्बन्धी वर्णन से युक्त रचना 'कुट्टनीमत' से भी क्षेमेन्द्ररचित समयमातृका प्रभावित है । इसमें क्षेमेन्द्र ने वेश्याओं से सम्बन्धित श्रृंगारिक एवं हेय व्यापारों का विस्तृत वर्णन मिलता है जो कुट्टनीमत के वेश्यावर्णन से पूर्णतः मिलता जुलता है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कविवर क्षेमेन्द्र के काव्यों पर इनके पूर्ववर्ती काव्यों पर व्यापक प्रभाव पड़ा है । इनके काव्यों पर इनके पूर्ववर्ती अधिकाधिक काव्यों का प्रभाव है । इनकी सर्वग्राह्यता का गुण इनके काव्यों से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। यहाँ तक कि इनके काव्य इनके ही शिष्यकवियों के काव्यों से प्रभावित हैं ।

<u>परवर्ती काव्यों पर क्षेमेन्द्र के काव्यों का प्रभाव</u>

अन्य कवियों के भावों एवं काव्य के पदों तथा पादों आदि का ग्रहण कवि-वर क्षेमेन्द्र ने ही नहीं किया, वरन् इनके भावों तथा शब्दों का प्रयोग इनके परवर्ती

कवियों ने भी किया । कविवर के परवर्ती कवियों में इनकी छाया किसी न किसी रूप में अवश्य परिलक्षित होती है ।

क्षेमेन्द्र बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न महाकवि थे । इन्होंने विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित रचनायें कीं । इनकी रचनायें काव्यशास्त्रीय, कवि-शिक्षा सम्बन्धी, समाजोपयोगी व शिक्षाप्रद हैं । इन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से संस्कृत-साहित्य-कोष को गुरुतर बनाने में अहम् भूमिका का निर्वाह किया है । परिणामतः इतने विशाल व विस्तृत काव्यग्रन्थों के रहते इनका परवर्ती काव्यों पर प्रभाव स्वाभाविक है ।

औचित्यविचारचर्चा नामक ग्रन्थ कविवर क्षेमेन्द्र को आचार्य सिद्ध करता है तथा इसमें वर्णित सिद्धान्तों का अर्वाचीन काव्यों पर व्यापक प्रभाव पड़ा । इनके सिद्धान्त समस्त काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में प्राप्य हैं । प्रायः सभी परवर्ती काव्यशास्त्रीय कवियों, लेखकों व विचारकों ने अपनी रचनाओं में इनके औचित्य सिद्धान्त को समाविष्ट किया है । इस प्रकार यह पूर्णतः स्पष्ट है कि इनके इस ग्रन्थ का प्रभाव व्यापक व विस्तृत है । वस्तुतः इनके औचित्य का भी विस्तार है । इस ग्रन्थ में इन्होंने सत्ताईस शीर्षकों पर औचित्य की चर्चा की है ।

इस ग्रन्थ के समस्त उद्धरणों का संग्रह तथा उसकी विवेचना 'जर्नल ऑफ दि बम्बई ब्रान्च ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी' में उद्धृत है ।[1]

---

1. Journal of The Bombay Branch of Royal Asiatic Society XVI, on pages 167-180.

कविवरण क्षेमेन्द्र की कवि-शिक्षा से सम्बन्धित काव्य कविकण्ठाभरण का भी परवर्ती काव्यों पर व्यापक प्रभाव पड़ा है । इस ग्रन्थ पर विश्लेषणात्मक निबन्ध व जर्मन अनुवाद प्राप्त होते हैं ।[1]

बौद्धावदानों पर आधृत बौद्धावदानकल्पलता नामक क्षेमेन्द्ररचित काव्य भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है । इसकी रचना के 150 वर्ष मात्र के ही अन्तर्गत इसका अनुवाद तिब्बती भाषा में हुआ । शरत् चन्द्र दास द्वारा संकलित तिब्बती संस्करण इस रचना द्वारा प्रभावित है ।[2]

लोकप्रकाश नामक ग्रन्थ का भी परवर्ती काव्यों पर अच्छा प्रभाव है । इसका अनुवाद और टिप्पणी भी प्रकाशित है ।[3]

इनके वात्स्यायनसूत्रसार का प्रभाव पञ्चसायक नामक ग्रन्थ पर पड़ा है । इस ग्रन्थ में वात्स्यायन सूत्रसार में वर्णित काम सम्बन्धी वर्णन उल्लिखित है ।

कविवर क्षेमेन्द्र रचित महाकाव्य भारतमञ्जरी के अन्तर्गत व्यासाष्टक स्तोत्र का उल्लेख काश्मीर रिपोर्ट में प्राप्त होता है ।[4]

---

1. जे० शोनवर्ग (J.Schonberg) व विएन (Wien) 1884 (Sb.derwicner Akad) के अन्तर्गत ।
2. बिब्लियोग्राफिक का इण्डिका ।1888-1918। सं० शरत् चन्द्रदास ।
3. अनुवाद और टिप्पणी, जे०ब्लॉच, पी० गवनर, पेरिस, 1914.
4. Kashmir Report (1877) - Buhler, on page 45-46.

कला-विलास, जो क्षेमेन्द्र की व्यङ्ग्यप्रधान रचना है, का जर्मन अनुवाद जो आर श्मिट द्वारा किया गया है[1], कला-विलास का क्षेमेन्द्र के परवर्ती काव्यों पर प्रभाव का द्योतक है ।

दर्पदलन, जो व्यङ्ग्यपूर्ण उपदेशात्मक काव्य की दृष्टि में संस्कृत-साहित्य की सर्वोत्तम कृति है, के कई अनुवाद के संस्करण प्राप्त होते हैं -

आर. श्मिट द्वारा इस ग्रन्थ का जर्मन अनुवाद प्राप्त होता है ।[2]

बी0ए0 हिर्सबैंट के द्वारा भी इस ग्रन्थ का जर्मन अनुवाद सेण्ट पीटर्सबर्ग में प्राप्त होता है[3] और भी अन्य काव्य के आलोचनात्मक ग्रन्थों में दर्पदलन से सम्बन्धित लेख प्राप्त होते हैं । विभिन्न पाश्चात्य विद्वानों कीथ, डे व अन्य विद्वानों द्वारा लिखी गई संस्कृत-साहित्य के इतिहास सम्बन्धी पुस्तकों में भी दर्पदलनम् से सम्बन्धित लेख प्राप्त होते हैं । इन साहित्य सम्बन्धी ऐतिहासिक काव्यों में दर्पदलन व्यंग्यपूर्ण उपदेशात्मक काव्य की परम्परा का सर्वोत्तम काव्य माना गया है ।

समयमातृका नामक श्रृंगारप्रधान प्रबन्ध का अनुवाद जे0जे0 मेयर (J.J.Mayer), लाइपजिग (1903) (जर्मनी में) ने किया है ।

---

1. WZKM XVIII, 1914 - R. Schmidt - on page 406-35.

2. ZDMG LXIX, 1915 - R. Schmidt - on page 1-51.

3. सेंटपीटर्सबर्ग 1892- B.A. Hirsbant.

कविवर क्षेमेन्द्र की गुणाढ्य कृति बृहत्कथा पर आधृत, बृहत्कथामञ्जरी के अंशों का अनुवाद सिल्वाँ लेवी (Sylvain Levi) ने [प्रथम लम्भक, पाठ रोमन लिपि में] जर्नल एशियाटिक में किया है तथा लियो वी० मकोवस्की (Leo V. Mangowaski) [पञ्चतन्त्र पाठ, रोमन लिपि में][2] किया है । इस प्रकार स्पष्ट है कि बृहत्कथामञ्जरी का भी व्यापक प्रभाव क्षेमेन्द्र के परवर्ती काव्यों पर पड़ा है ।

आदर्श व्यवहार के निर्देश से युक्त अनुष्टुभ् छन्द में रचित शतक चारुचर्या नामक कविवर क्षेमेन्द्र के काव्य ने परवर्ती काव्यों को विशेषतः प्रभावित किया है ।

इस आदर्श काव्य का प्रभाव द्या द्विवेदी [1494 ई०] द्वारा रचित नीतिमञ्जरी पर पड़ा है । जिस तरह कविवर क्षेमेन्द्र नें रामायण, महाभारत, बृहत्कथा व कथासरित्सागर के निदर्शन पर चारुचर्या की रचना किया है । उसी तरह द्या द्विवेदी ने भी अपनी रचना में नीतिपरक दो सौ पद्यों के निदर्शन ऋग्वेद पर सायण के भाष्य से संगृहीत कथाओं के आधार पर दिया है । इसकी पुष्टि प्रो० कीथ ने भी की है ।[3]

---

1. Journal Asiatic VI 1885, on page 397-479
2. पंचतन्त्र पाठ रोमन लिपि में - Leo V. Mangowaski - लाइपजिग, 189
3. History of Sanskrit Literature - Prof. A.B. Keith, on page 239.

'चारुचर्या' का प्रभाव जल्हणविरचित 'मुग्धोपदेश' पर भी पड़ा है। यह छाछठ पद्यों की संक्षिप्त रचना है जिसमें वेश्याओं के कापटिक व्यवहार के प्रति चेतावनी दी गयी है। इनकी बृहत्कथामञ्जरी का प्रभाव हर्ष के 'नागानन्द' नाटक पर पड़ा है। यह मत प्रो0 दासगुप्ता ने व्यक्त किया है।

कविवर क्षेमेन्द्र के काव्यों का प्रभाव उन्नीसवीं शताब्दी में देखने को मिलता है। उनकी उपदेशात्मक शैली से अनेक कवि प्रभावित हुए हैं। द्या द्विवेदी एवं जल्हण का उल्लेख किया ही जा चुका है। उपदेशप्रधान काव्यों में प्रमुख रूप से प्रसिद्ध इनकी चारुचर्या की उपदेशात्मक शैली से आकृष्ट उन्नीसवीं शताब्दी में उत्पन्न कुमायूँ के सुप्रसिद्ध कवि लोकरत्न शर्मा 'गुमानी' ने 'उपदेशशतक' की रचना की। इसमें इन्होंने क्षेमेन्द्र की भाँति अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग न कर आर्या छन्द में अपनी रचना की है। इन्होंने आर्या के प्रथम तीन चरणों में रामायण, महाभारत, शिशुपालवध, रघुवंश, श्रीमद्भागवत, कथासरित्सागर एवं हरिवंश आदि की कथाओं का तथा चतुर्थ चरण में उपदेश वाक्य का निबन्धन किया है, जबकि क्षेमेन्द्र पूर्व पंक्ति में उपदेश करते हैं और दूसरी पंक्ति में रामायण, महाभारत, बृहत्कथा एवं हरिवंश आदि के कथानकों द्वारा स्वकथन की पुष्टि करते हैं। यदा कदा गुमानी कवि क्षेमेन्द्र के ही पौराणिक समर्थक वाक्य को उदाहृत करते हैं। इनके अधिकांश श्लोकों में क्षेमेन्द्र-सदृश भाव विद्यमान हैं। वे जिस प्रसङ्ग को उदाहृत कर उपदेश करते हैं अधिकांशतः उन्हीं प्रसङ्गों को गुमानी कवि भी उदाहृत करते हुए उपदेश करते हैं। इससे निस्सन्देह स्पष्ट होता है कि गुमानी कवि क्षेमेन्द्ररचित चारुचर्या की उपदेशात्मक शैली से पूर्णतः प्रभावित हैं। कतिपय

उदाहरण इस कथन को पुष्ट करते हैं[1]।

इस प्रकार स्पष्ट है कि कविवर क्षेमेन्द्र की विभिन्न विस्तृत रचनाओं का उनके परवर्ती काव्यों पर व्यापक प्रभाव पड़ा है तथा इनकी अद्वितीय काव्य-प्रतिभा सतत् सराहनीय रहेगी ।

---------::0::---------

---

1. अ. विश्रब्ध-चटुवचनैः कैकेय्यै दशरथो वरं दत्त्वा ।
   सङ्कटमाप दुरन्तं स्त्रीषु न कुर्वीत विश्वासम्॥ - उपदेशशतक, श्लोक 10.

   ब. न कुर्यात् परदारेच्छां विश्वासं स्त्रीषु वर्जयेत् ।
   हतो दशास्यः सीतार्थे हतः पत्न्या विदूरथः॥ - चारुचर्या, श्लोक 10.

   स. मुनिरपि विश्वामित्र श्वा भूत्वा गूढमुर्वशीविरागः ।
   अन्वव्रजत् स्मरार्तो भेतव्यं दुर्जयात् कामात् ॥ -उपदेशशतक, श्लोक 63.

   द. तीव्रे तपसि लीनानामिन्द्रियाणां न विश्वसेत् ।
   विश्वामित्रोऽपि सोत्कण्ठः कण्ठे जग्राह मेनकाम् ॥ - चारुचर्या, श्लोक 39.

अध्याय - अष्टम

क्षेमेन्द्रप्रतिपादित अधिक्षेपात्मक विषयों पर अन्य कवियों के विचार

कविवर क्षेमेन्द्र का काव्य प्रस्तुत: समाज के लिए है, जिसमें वे समाज के गुण दोषों का विवेचन करते हुए गुण की प्रशंसा एवं दोष की निन्दा करते हैं। संस्कृत साहित्य के अनेक कवियों एवं विचारकों ने भी समाज के सत्पक्ष की प्रशंसा एवं दुष्पक्ष की निष्पक्ष भाव से निन्दा की है। संस्कृत के अनेक कवियों ने विद्या, धन, दान, विनय, सत्य एवं सन्मित्र की प्रशंसा के विषय में विचार व्यक्त किये हैं तथा कुकवि, कुपण्डित, कुवैद्य, कुगणक, कायस्थ, दुर्जन, कृपण, कुमित्र एवं स्त्री स्वभाव आदि विषयों की कटु शब्दों में निन्दा की है। इन्हीं निन्दा एवं प्रशंसा के रूप में वर्णित विषयों का निम्नलिखित प्रकार से विवेचन किया जा सकता है -

कुवैद्य निन्दा

ऐसे वैद्य, जो रोगी के हित का ध्यान न रखते हुए स्वधनप्राप्ति का विशेष ध्यान देते थे, निन्दा के पात्र हैं तथा विभिन्न रचनाकारों द्वारा समाज के दूषित पक्ष के रूप में वर्णित हैं। उनके प्रच्छन्न प्रयोजन को भी प्रकाशित किया गया है। ऐसे वैद्य को यमराज या उसके सम्बन्धी आदि से सम्बन्धित बताया गया है, जो प्राण एवं धन दोनों को हरण करने मे समर्थ हैं। कविवर क्षेमेन्द्र ने भी ऐसे वैद्याधम को यम, धर्मराज, मृत्यु एवं अन्तक आदि शब्दों से विभूषित करते हुए उसे व्याधि का चिकित्सक नहीं, अपितु अर्थ एवं प्राणों का चिकित्सक बताया है। क्षेमेन्द्र ने ऐसे वैद्याधम को व्यङ्ग्यात्मक प्रणाम किया है, जो विद्याविहीन होते हुए मिथ्यौषधि से लोगों के प्राणों का हरण करता रहता है।[1] इसी भाव के सदृश अन्यत्र भी भाव प्राप्त होता

---

1. क. यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च।
   वैवस्वताय कालाय सर्वप्राणहराय च ॥ समयमातृका 1/39.

क्षेमेन्द्रप्रतिपादित अधिक्षेपात्मक विषयों पर अन्य कवियों के विचार

कविवर क्षेमेन्द्र का काव्य वस्तुत: समाज के लिए है, जिसमें वे समाज के गुण दोषों का विवेचन करते हुए गुण की प्रशंसा एवं दोष की निन्दा करते हैं । संस्कृत साहित्य के अनेक कवियों एवं विचारकों ने भी समाज के सत्पक्ष की प्रशंसा एवं दुष्पक्ष की निष्पक्ष भाव से निन्दा की है । संस्कृत के अनेक कवियों ने विद्या, धन, दान, विनय, सत्य एवं सन्मित्र की प्रशंसा के विषय में विचार व्यक्त किये हैं तथा कुकवि, कुपण्डित, कुवैद्य, कुगणक, कायस्थ, दुर्जन, कृपण, कुमित्र एवं स्त्री स्वभाव आदि विषयों की कटु शब्दों में निन्दा की है । इन्हीं निन्दा एवं प्रशंसा के रूप में वर्णित विषयों का निम्नलिखित प्रकार से विवेचन किया जा सकता है -

कुवैद्यनिन्दा

ऐसे वैद्य, जो रोगी के हित का ध्यान न रखते हुए स्वधनप्राप्ति का विशेष ध्यान देते थे, निन्दा के पात्र हैं तथा विभिन्न रचनाकारों द्वारा समाज के दूषित पक्ष के रूप में वर्णित हैं । उनके प्रच्छन्न प्रयोजन को भी प्रकाशित किया गया है । ऐसे वैद्य को यमराज या उसके सम्बन्धी आदि से सम्बन्धित बताया गया है, जो प्राण एवं धन दोनों को हरण करने मे समर्थ हैं । कविवर क्षेमेन्द्र ने भी ऐसे वैद्याधम को यम, धर्मराज, मृत्यु एवं अन्तक आदि शब्दों से विभूषित करते हुए उसे व्याधि का चिकित्सक नहीं, अपितु अर्थ एवं प्राणों का चिकित्सक बताया है । क्षेमेन्द्र ने ऐसे वैद्याधम को व्यङ्ग्यात्मक प्रणाम किया है, जो विद्याविहीन होते हुए मिथ्यौषधि से लोगों के प्राणों का हरण करता रहता है ।[1] इसी भाव के सदृश अन्यत्र भी भाव प्राप्त होता

---

1. क. यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ।
   वैवस्वताय कालाय सर्वप्राणहराय च ॥ नर्ममाला(?) 1/39.

है । जिसमें उसे शास्त्र एवं सद्भाव से रहित बताया गया है तथा कुत्सित औषधि का प्रयोग करने वाला बताया गया है ।[1] दूसरे किसी कवि ने भी इसी तरह कहा है कि वह धातुविज्ञान के अन्तर्गत पारदादि, वैद्यक, रोगों का तत्त्व तथा वस्तु व गुणादि से अनभिज्ञ होता हुआ भी वैद्य रोगियों के प्राणों एवं धन का हरण करता है ।[2] कुवैद्यों द्वारा रोगियों के धन एवं प्राणों के हरण के साथ ही उनके द्वारा स्त्रीरोगियों के साथ किये गये दुराचारों का भी वर्णन है ।

--- ख. नमो विद्याविहीनाय वैद्यायावद्यकारिणे ।
निहतानेकलोकाय सपर्यैवापमृत्यवे ॥ नर्ममाला 2/68.

1. क. अज्ञातशास्त्र सद्भावा शस्त्रमात्रपरायणान् । सुभाषितरत्नभाण्डागारम्
त्यजेद्दूरादिभषक्पाशान्पाशान्वैवस्वतानि व॥ कुवैद्यनिन्दा, श्लोक 5.

ख. मिथ्यौषधैर्हन्तमृषाकषायैरसह्यलेह्यैरयथार्थतैलैः ।
वैद्या इमे वञ्चितरुग्णवर्गाः पिचण्डभाण्डं परिपूरयन्ति ॥ वही, श्लोक 6.

2. न धातोर्विज्ञानं न च परिचयो वैद्यकनये
न रोगाणां तत्त्वावगतिरपि नो वस्तुगुणधीः ।
तथाप्येते वैद्या इति तरलयन्तो जडजनानसून्मृत्यो-
र्भृत्या इव वसु हरन्ते गदजुषाम् ॥
- वही, श्लोक 8.

कविवर क्षेमेन्द्र ने चिकित्सा के ब्याज से स्तन एवं गुह्याङ्ग स्पर्श जैसे वैद्याधम प्रच्छन्न प्रयोजन को भी प्रकाशित किया है, जो अध्याय पाँच में उल्लिखित किया गया है। इसी तरह शार्ङ्गधरपद्धति में भी कवि ने अङ्गस्पर्श की बात कही है।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कुवैद्य धोखाधड़ी एवं कलुषित विचारधारा युक्त कार्यों को करने से चूकता न था और विभिन्न कालों में हुए रचनाकार भी उनके प्रच्छन्न प्रयोजन को भी उजागर करने से चूके नहीं हैं।

कुगणक निन्दा

ऐसे गणकों (ज्योतिषियों) की भी निन्दा की गयी है, जो अल्पज्ञान व झूठे ज्ञान से लोगों को ठगने का कार्य करते रहे हैं। क्षेमेन्द्र ने कहा है कि ज्योतिषी चन्द्र और विशाखा, जो आकाशस्थित हैं, के समागम को कहता है किन्तु अनेक लोगों के साथ अपनी पत्नी के समागम को नहीं जानता। वह स्त्रियों को भूत-पिशाच की बाधा बताकर उन्हें उनसे मुक्त करने हेतु नग्न करता है तथा झूठे राशिचक्र के माध्यम से लोगों को भ्रम में डालकर उनके धन का शोषण करता है।[2] इन भावों को हम इस

---

1. सत्कोणं लोलनेत्रं कुलयुवतिमुखं दृश्यते सानुकम्पै
   रण्डानामर्धलज्जाञ्चितमधिपुलकं स्पृश्यते पीनमङ्गम् ।
   क्लीबानां खाद्यतेऽन्तश्चिरनिहितधनं कष्ठमूलाग्नितोयैः
   पूर्वा सिद्धा कलानां सकलगुणनिधिर्वैद्यविद्याभिधन्या ॥ शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 4039

2. क. विन्यस्य राशिचक्रं ग्रहचिन्तां नाटयन् मुखविकारैः ।
   अनुवदति चिकाद् गणको यद् किंचिद् प्राश्निकेनोक्तम्॥ कलाविलास 9/5.

शोध-प्रबन्ध के पाँचवे अध्याय में कह चुके हैं । इसी तरह अन्य रचनाकारों ने भी कुगणक के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं । वह कुदैवज्ञ सदसद् जन्मपत्र के माध्यम से लोगों को ठगता है ।[1] अन्यत्र भी पुत्र को दीर्घायु होने व धनवृद्धि आदि की भविष्य-वाणी करके कुगणक घर-घर जाकर धनी लोगों के धन का हरण करने का कार्य करता है।[2]

कुगणक को गणिका के समान बताते हुए श्लेष के माध्यम से पञ्चाङ्ग दिखाकर धन-हरण करने के प्रवृत्ति की निन्दा की गयी है ।[3] इस प्रकार विभिन्न कवियों के कुगणक सम्बन्धी विचारों की तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि क्षेमेन्द्र और अन्य कथनों में साम्य होते हुए भी क्षेमेन्द्र के वर्णन उत्कृष्ट एवं चरम सीमा तक हैं ।

--- ख. गणयति गगने गणकश्चन्द्रेण समागमं विशाखायाः ।
विविधभुजंगक्रीडासक्तां गृहिणीं न जानाति ।। कलाविलास 9/6.

1. विलिखति सदसद्वा जन्मपत्रं जनानां
फलति यदि तदानीं दर्शयत्यात्मदाक्ष्यम् ।
न फलति यदि लग्नद्रष्टरेवाह मोहं
हरति धनमिहैवं हन्त दैवज्ञपाशः ।।

2. ज्योतिःशास्त्रमहोदधौ बहुतरोत्सर्गापवादात्मभिः
कल्लोलैर्निबिडै कणान्कतिपयाँल्लब्ध्वा कृतार्था इव ।
दीर्घायुः सुतसंपदादिकथनैर्दैवज्ञपाशा
इमे गेह गेहमनुप्रविश्य धनिनां मोहं मुहुः कुर्वते ।।

3. गणिकागणकौ समानधर्मौ निजपञ्चाङ्गनिदर्शकावुभौ ।
जनमानमोहकारिणौ तौ विधिना वित्तहरौ विनिर्मितौ ।।

<u>कृपण निन्दा</u>

कृपण की स्थिति बहुत ही अपवादस्वरूप होती है। वह धनसंचय में सुखानुभव करता है। वह न तो स्वतः उपभोग करता है और न ही उसका खर्च देखना चाहता है, ऐसी परिस्थिति धनोपभोग से वंचित रहता हुआ विभिन्न कालों में विभिन्न विद्वानों द्वारा निन्दित एवं उपहसनीय रहा है। क्षेमेन्द्र से मिलता जुलता भाव व्यक्त किया गया है जिसमें कहा गया है कि कृपण के समान कोई दाता नहीं है।[1] वस्तुतः उसका धन नहीं वह तो कृपण के हृदय में व्याधि है, वह उसकी पीडा है, क्योंकि उस संचय से उसे अस्वस्थता, क्लेश, तृष्णा एवं मोह ही उत्पन्न कर कष्ट प्रदान करता है।[2] भोजप्रबन्ध में भी कृपण के धन को न देय व अभोग्य बताते हुए उसके स्पर्श को भी नपुंसक द्वारा स्त्री स्पर्श की भाँति निष्फल ही बताया गया है।[3] हितोपदेशकार

---

1. क कृपणेन समो दाता न भूतो न भविष्यति।
   अस्पृशन्नेव वित्तानि यः परेभ्यः प्रयच्छति॥ कवितामृतकूप, श्लोक 29.

   ख. कोऽन्यः कदर्यसदृशो दाता जगति जायते।
   नाश्नात्यदत्त्वा योऽर्थिभ्यो गलेहस्तं गृहेर्गलम्॥ देशोपदेश 2/12.

2. यत्करोत्यरतिं क्लेशं तृष्णां मोहं प्रजागरम्।
   न तद्धनं कदर्याणां हृदये व्याधिरेव सः॥ गुणरत्न, श्लोक 2.

3. न दातुं नोपभोक्तुं च शक्नोति कृपणः श्रियम्।
   किं तु स्पृशति हस्तेन नपुंसक इव स्त्रियम्॥ भोजप्रबन्ध, श्लोक 70.

ने भी कृपण को श्वास लेता हुआ भी मृतक बताया है, क्योंकि वह दानोपभोग रहित धनयुक्त दु:खी जीवन व्यतीत करता है ।[1] सुभाषितावली में भी कृपण को विरागी द्वारा स्त्रीस्पर्शी सदृश ही बताया गया है जो धनस्पर्शी करता हुआ भी उसका उपभोग नहीं करता है ।[2] शार्ङ्गधरपद्धति में कहा गया है कि कृपण समृद्ध होता हुआ भी उसके उपभोग से वञ्चित रहता है जिस प्रकार फलयुक्त किंशुक पर स्थित शुक भूखा ही रहता है ।[3] इस प्रकार सभी विद्वानों द्वारा कृपण की समृद्धि होते हुए उसके उपयोग से वञ्चित ही बताया गया है । क्षेमेन्द्र ने भी कहा है कि जिस प्रकार श्रोत्रहीन के लिए वीणा, चक्षुहीन के लिए चञ्चल नेत्रों वाली स्त्री, प्राणहीन व्यक्ति के लिए फूलों की माला निष्फल है, उसी प्रकार कृपण व्यक्ति के लिए उसका धन निष्फल है ।[4] अन्यत्र

---

1. दानोपभोगरहिता दिवसा यस्य यान्ति वै ।
   स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥ हितोपदेश 2/11.

2. नोपभुक्तमपि क्लीबो जानात्युपचितां श्रियम् ।
   ग्राम्यो विरागयत्येव रमयन्नपि कामिनीम् ॥ सुभाषितावलि, श्लोक 2676.

3. किंशुके किं शुक: कुर्यात्फलितेऽपि बुभुक्षित: ।
   अदातरि समृद्धेऽपि किं कुर्युरुपजीविन: ॥ शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 1372.

4. वीणेव श्रोत्रहीनस्य लोलाक्षीव विचक्षुष: ।
   व्यसो: कुसुममालेव श्री: कदर्यस्य निष्फला ॥ दर्पदलन 3/51.

भी कृपण द्वारा घर में भोग करते हुए संचित धन को कन्यासदृश बताया गया है, जो घर में दूसरे के लिए रक्षित होती है ।[1] वस्तुत: कृपण को धन के अर्जन, रक्षण एवं खर्च होने पर तीनों परिस्थितियों में कष्ट ही प्राप्त होता है ।[2] क्षेमेन्द्र भी कहते हैं कि धनसञ्चय, भोग एवं खर्च-तीनों परिस्थितियों में कष्टदायक ही है, जिसे कृपण प्राप्त करता है ।[3] वह कृपण द्रव्य व्यय के भय से सुहृदों से प्रीति नहीं प्रकट करता है तथा तरह-तरह के व्याज कर उनसे मुक्त होने का प्रयास करता है ।[4] इसी तरह

---

1. उपभोगकातराणां पुरुषाणामर्थसंचयपराणाम् ।
   कन्यामणिरिव सदने तिष्ठत्यर्थः परस्यार्थे ॥ सुभाषितावलि, श्लोक 482.

2. ते मूर्खतरा लोके येषां धनमस्ति नास्ति च त्यागः ।
   केवलमर्जनरक्षणवियोगदु:खान्यनुभवन्ति ॥ वही, श्लोक 483.

3. यदर्जितं परिक्लेशैरर्जितं यन्न भुज्यते ।
   विभज्यते यदन्तेऽन्यैः कस्यचिन् मास्तु तद् धनम् ॥ दर्पदलन 2/8.

4. प्रीतिं न प्रकटीकरोति सुहृदि द्रव्यव्ययशङ्कया
   भीत: प्रत्युपकारकारभयान्नाकृष्यते सेवया ।
   मिथ्या जल्पति वित्तमार्गणभयात्तत्तुत्यापि न प्रीतये
   कीनाशो विभवव्ययव्यतिकरत्रस्त: कथं प्रीणिति ॥

   - सुभाषितावलि, श्लोक 493.

क्षेमेन्द्र ने भी उत्तम भाव प्रकट किया है । कृपण स्वजनों को अपने घर आया देखकर पत्नी से कलह का बहाना कर अनशन रहकर रात व्यतीत करता है । वह सायं नवागत से कुशल प्रश्न न करता है न सुनता है रात्रि भोजन मात्र के भय से ।[1] वह स्वपत्नी के साथ समागम भी इस भय से नहीं करता है कि यदि उसके पुत्र हो गया तो वह उसके धन का हरण कर लेगा ।[2] अन्यत्र उसकी वञ्चना चातुरी का वर्णन किया गया है ।[3] क्षेमेन्द्र भी तत्सम्बन्धी न्यूनता का वर्णन करते हैं ।[4] कृपण निन्दा वस्तुत:

---

1. कदर्य: स्वजनं दृष्ट्वा यदृच्छोपनतं गृहे ।
   करोति दारकलहव्याजेनानशनव्रतम् ॥
   कदर्य: कुशलप्रश्नं न करोति शृणोति वा ।
   अभ्यागतस्य सायाह्ने पश्चाद्भोजनशङ्कया ॥ देशोपदेश 2/18-19.

2. कृपण: स्ववधूसङ्गं न करोति भयादिह । सुभाषितरत्नभाण्डागारम्,
   भविता यदि मे पुत्र: स मे वित्तं हरेदिति ॥ कृपणनिन्दा, श्लोक 16.

3. जहाति सहसाननं झटिति पृच्छति स्वागतं
   नमस्यति कृताञ्जलि: श्रुतिमनोहरं भाषते ।
   ददाति कुसुमं फलं शिथिलयत्यभीष्टां
   क्रियामहो न परिचीयते कृपणवञ्चनाचातुरी ॥ वही, श्लोक 57.

4. भ्रष्टव्ययं विनिर्यैव व्ययभीरो करोत्यलम् ।
   पुत्रकार्ये कदर्यस्य भार्या जारोत्सवव्ययम् ॥ देशोपदेश 2/23.

प्रेरणादायक है, जिससे धन के उपभोग में ही उसकी उपयोगिता, कृपण की मूर्खता एवं सत्क्रियाशीलता का ज्ञान होता है । उपर्युक्त कृपणविषयक विवेचन से स्पष्ट है कि इसका प्राण संचित धन पर निर्भर करता है । वह प्राण देकर भी धन की रक्षा करता है । एक जगह कवि ने कहा है कि लौहचणक का चर्वण, सर्प के फण की मणि का कर्षण, हाथ से गिरितोलन तथा पैरों से समुद्र का लङ्घन, निद्रित सिंह को जगाना तथा तीक्ष्ण खड्ग का स्पर्श - ये सभी असम्भव व दुष्कर कार्य हो सकते हैं, किन्तु शठ कृपण से धन नहीं लिया जा सकता है ।[1] वस्तुत. उससे नहीं लिया जा सकता क्योंकि निष्ठुर, निरपेक्ष, शठ, आर्जवरहित आदि दोषों से युक्त व्यक्ति ही कृपण के लक्षण से युक्त होता है ।[2]

---

1. अयश्चणकचर्वणं फणिफणामणेः कर्षणं
   करेण गिरितोलनं जलनिधेःपदा लङ्घनम् ।
   प्रसुप्तहरिबोधनं निशितखड्गसंस्पर्शनं
   कदाचिदखिलं भवेन्न च शठाद्धनस्यार्जनम् ॥

   - सुभाषितरत्नभाण्डागारम् , कृपणनिन्दा, श्लोक 58.

2. नैष्ठुर्यं नैरपेक्ष्यं च शाठ्यं क्रौर्यमनार्जवम् ।
   कृतविस्मरणं यच्च तत् कदर्यस्य लक्षणम् ॥ - देशोपदेश 2/26.

<u>दुर्जन-निन्दा</u>

दुर्जन भी समाज का ऐसा तत्त्व है, जो सदैव समाज में रहकर सुधीजनों को कष्ट पहुँचाने का कार्य करता रहा है। दुर्जनों से सज्जन सदैव भयभीत व संत्रस्त भी रहे हैं। कवि समाज-सुधारक भी होता है। वह साहित्य के माध्यम से समाज के सत्पक्ष एवं कुत्सित पक्ष दोनों का यथार्थ दर्शन कराने में समर्थ होता है। दुष्टों की दुष्टता पर प्रायः सभी कवियों ने अधिक्षेप किया है। वैसे दुर्जनों का बरबस सम्पर्क सज्जनों से रहा है, क्योंकि उनकी दुष्टता का सफल प्रयोग सज्जनों पर ही सम्भव है। इसीलिए कवि ने दुर्जन की वन्दना सज्जन से पहले करने की बात यह कहते हुए की है कि मुखप्रक्षालन के पूर्व गुदा प्रक्षालन किया जाता है।[1] सूकर द्वारा दुर्गन्ध ग्रहण की भाँति दुर्जन दोष ग्रहण करता है जबकि सज्जन हंसवत गुणग्राही होता है।[2] मन एवं वाणी में भिन्नता दुरात्मा का तथा मन और वाणीका एक समान होना महात्माओं के लक्षण हैं।[3] सज्जन और अभिमानी दुर्जन में स्पर्धा नहीं हो सकती क्योंकि भाषण

---

1. दुर्जनं प्रथमं वन्दे सज्जनं तदनन्तरम् ।
   मुखप्रक्षालनात्पूर्वं गुदप्रक्षालनं यथा ॥ सुभाषितरत्नभाण्डागारम्, दुर्जननिन्दा, श्लोक 34.

2. दुर्जनो दोषमादत्ते दुर्गन्धिमिव सूकरः ।
   सज्जनश्च गुणग्राही हंसक्षीरमिवाम्भसः ॥ वही, श्लोक 46.

3. मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्कार्ये चान्यद्दुरात्मनाम् ।
   मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम् ॥ (वृद्ध) चाणक्यशतक, 2/60.

एवं दूषण दोनों विपरीत भूषण क्रमशः सज्जन एवं दुर्जन के हैं ।[1] सज्जन तो नित्य परोपकाररत रहता है किन्तु दुर्जन तो सर्वदा परापकार में ही लिप्त है ।[2] इसीलिये कहा गया है कि पाषाण, वज्र, सर्प आदि क्रमशः टङ्क (छेनी), वज्र व मन्त्रों से परास्त किये जा सकते हैं किन्तु दुष्टात्मा नहीं परास्त किया जा सकता है ।[3] अन्यत्र भी कहा गया है कि कोटि यत्न के बाद भी दुष्ट सज्जन नहीं हो सकता जिस प्रकार लहसुन कस्तूरी में मृदित होने पर भी सुगन्धित नहीं हो सकता ।[4] खल साधु सज्जनों द्वारा बोधित होने पर भी साधुता नहीं ग्रहण कर सकते जिस प्रकार क्षार मधुर नहीं हो सकता ।[5] अन्यत्र भी अनेक उपायों के बावजूद खल साधु नहीं हो सकता -

---

1. का खलेन सह स्पर्धा सज्जनस्याभिमानिनः ।
   भाषणं भूषणं साधुदूषणं यस्य भूषणः ॥ (वृद्ध) चाणक्यशतक, 4/35.

2. यथा परोपकारेषु नित्यं जागर्ति सज्जनः । सुभाषितरत्नभाण्डागारम्,
   तथा परापकारेषु जागर्ति सततं खलः ॥ दुर्जननिन्दा, श्लोक 107.

3. पाषाणो भिद्यते टङ्कैर्वज्रं वज्रेण भिद्यते ।
   सर्पोऽपि भिद्यते मन्त्रैर्दुष्टात्मा नैव भिद्यते ॥ वही, श्लोक 45.

4. न यत्नकोटिशतकैरपि दुष्टः सुधीर्भवेत् ।
   किं मर्दितोऽपि कस्तूर्यां लशुनो याति सौरभम् ॥ वही, श्लोक 44.

5. खलो न साधुतां याति सद्भिः संबोधितोऽपि सन् ।
   सरित्पूरप्रपूर्णोऽपि क्षारो न मधुरायते ॥ वही, श्लोक 29.

ऐसा मत व्यक्त किया गया है ।[1] वस्तुतः खल व्यक्ति दुष्टता में ही आनन्द समझता है । वह कभी सज्जनता स्वीकार नहीं कर सकता - इस तथ्य को कविवर क्षेमेन्द्र ने भी स्वीकार करते हुए कहा है कि अगर दैवयोग से खल सज्जनता अपनाता है तो मानो वन में दोनों हाथ उठाकर बन्दर तप करता है ।[2] दुर्जन वस्तुतः सहजद्वेषी होता है । वह दूसरों के अल्प दोष को देखता है किन्तु अपने द्वारा किये जा रहे केवल दोषपूर्ण कार्यों पर ध्यान ही नहीं देता है ।[3] परेष्या में लौह-पिण्ड की भाँति जलते हुए खल के हृदय पर गुणरूपी जलबिन्दु निष्प्रभावी रहते हैं ।[4] सज्जन सबके दोषों को ध्यान नहीं देता है, किन्तु दुष्ट भले लोगों की बुराई में चारों तरफ आँखें गड़ाये और मुँह बनाये रहता

---

1. अ. दुर्जनः सुजनो न स्यादुपायानां शतैरपि । सुभाषितरत्नभाण्डागारम्,
   अपानं मृत्सहस्रेण धौतं चास्यं कथं भवेत् ॥ दुर्जननिन्दा, श्लोक 35.

   ब. दुर्जनः कृतशिक्षोऽपि सज्जनो नैव जायते ।
   अपि गङ्गाजलस्नानान्नाधःकेशाः कुशायते ॥ - वही, श्लोक 24.

   स. दुर्जनो नार्जवं याति सेव्यमानोऽपि नित्यशः ।
   स्वेदनाभ्य जनोपायैः श्वपुच्छमिव नामितम् ॥ - हितोपदेश 3/23.

2. खलः प्रववृते दैवादार्जवे सुजनस्य यत् ।
   दुर्मदो विधुद्वेषी पुरस्तादः खलःखलः ॥ - देशोपदेश 1/20.

3. खलः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति ।
   आत्मनो विल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति ॥ - महाभारत 1/3069.

4. अयः पिण्ड इवोत्तप्ते खलानां हृदये क्षणात् ।
   पतिता अपि नेक्ष्यन्ते गुणास्तोपकणा इव ॥ - शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 21.

है ।[1] क्षेमेन्द्र कहते हैं कि ईष्यारूपी गले के रोगी दुष्ट की जीभ संडसी [कंकमुख] से पकड़कर खींचने पर भी उससे भले की प्रशंसा नहीं निकल सकती है ।[2] इसीलिये हितोपदेशकार ने विद्यालंकृत दुर्जन को भी छोड देने के लिये यह तर्क देते हुए कहा है कि मणि से भूषित सर्प भी भयङ्कर होता है ।[3] उसके साथ किया हुआ उपकार भी उसकी दृष्टि में अपकार ही हो जाता है जिस प्रकार सर्प को दूध पिलाने पर उसका विष ही बढ़ता है ।[4] काव्यप्रकाश में दुर्जन के दुर्वचन व उसके अहङ्कार कथन का विवेचन करते हुए कहा गया है कि वह स्वतः को तीव्र विषशाली लोगों का गुण कहता है तथा अहङ्काराभिभूत होकर सज्जनों को दुर्वचन कहता है ।[5] भर्तृहरि भी दुरात्मा के स्वाभाविक कार्यों का

---

1. खलः सुजनपैशुन्ये सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ।
   सर्वतः श्रुतिमान् लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ देशोपदेश 1/10.

2. सत्साधुवादे मूर्खस्य मात्सर्यगलरोगिणः ।
   जिह्वा कङ्कमुखेनापि कृष्टा नैव प्रवर्तते॥ वही, 1/11.

3. दुर्जनः परिहर्त्तव्यो विद्ययालंकृतोऽपि सन् ।
   मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः॥ हितोपदेश 1/89.

4. उपकारोऽपि नीचानामपकारो हि जायते । सुभाषितरत्नभाण्डागारम्,
   पयःपानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम् ॥ दुर्जननिन्दा, श्लोक 10.

5. अहमेव गुरुः सुदारुणानामिति हालाहल मास्म तात दृप्यः ।
   ननु सन्ति भवादृशानि भूयो भुवनेऽस्मिन्वचनानि दुर्जनानाम् ॥ - काव्यप्रदीप 10/5

वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह करूणारहित, अकारण विवाद करने वाला, दूसरे के धन एवं स्त्री की आकांक्षा रखने वाला, सज्जनों के साथ असहिष्णुता का व्यवहार करने वाला होता है ।[1] सज्जन एवं दुर्जन के व्यवहारों में ठीक विपरीतावस्था होती है । बुद्धिमान् सज्जन लोग गुण की भाँति परदोषकथन में सक्षम होते भी नहीं कहते हैं, किन्तु खल व्यक्ति स्वगुणवर्णन की भाँति परदोषकथन में भी निपुण होता है ।[2] वह वन्दनीय की निन्दा करता है, दुःखी लोगों पर हँसता है, बान्धवों को पीड़ित करता है, शूरों से द्वेष करता है, धनहीनों का निरादर करता है, आश्रितों को अनुशासित करता है तथा गुह्य पर दोषों को प्रकट करता है - इस प्रकार वह गुण को छोडकर दोषों को ही ग्रहण करता है ।[3] अन्यत्र किसी कवि ने कष्टकारी विशिख ।बाण। एवं व्याल।सर्प। के अन्तिम वर्णों अर्थात् 'ख' एवं 'ल' से निर्मित जो 'खल' व्यक्ति है, वह अपनी अनुचित पीडादायक कार्यों से दूसरों के प्राणों को हरता है ।[4] विषधर सर्प सदृश विषम

---

1. अकरूणात्मकारणविग्रहः परधने परयोषिति च स्पृहा । भर्तृहरिसुभाषितसङ्ग्रह,
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ॥ श्लोक 61.

2. स्वगुणानिव परदोषान्वक्तुं न सतोऽपि शक्नुवन्ति बुधाः।
स्वगुणानिव परदोषान् सतोऽपि खलास्तु कथयन्ति ॥ सुभाषितावलि, श्लोक 4

3. वन्द्यान्निन्दति दुःखितानुपहसत्याबाधते बान्धवा-
ञ्छूरान्द्वेष्टि धनच्युतान्परिभवत्याज्ञापयत्याश्रितान् ।
गुह्यानि प्रकटीकरोति घटयन् यत्नेव वैराशयं व्रते
शीघ्रमवाच्यमुज्झति गुणान् गृह्णाति दोषान्खलः ॥ वही, श्लोक 459.

4. विशिखव्यालयोरन्त्यवर्णाभ्यां यो विनिर्मितः । सुभाषितरत्नभाण्डागारम्,
परस्य हरति प्राणान्नैतच्चित्रं कुलोचितम् ॥ दुर्जन-निन्दा, श्लोक 3.

आचरण करने वाला मलिन आत्मा वाला दुष्ट व्यक्ति नित्य लोगों को कष्ट पहुँचाता हुआ सबका उद्वेजक होता है - ऐसा शार्ङ्गधरपद्धति में भी वर्णित है ।[1] चाणक्य ने अपने नीति-दर्पण में कहा है कि जितने भी विषधर जीव सर्प, मक्षिका, बिच्छू आदि के एक अङ्ग विशेष क्रमशः दन्त, शिर एवं पूँछ में विष होता है, किन्तु दुर्जन का तो सर्वाङ्ग विषयुक्त होता है ।[2] अन्यत्र किसी कवि का कथन है ऐसा हो सकता है कि सर्प मित्रता का आचरण करे, किन्तु दुर्जन कभी मित्रता का आचरण नहीं कर सकता है। भगवान् विष्णु शेषनाग की शय्या पर शयन किये, किन्तु दुर्योधन भगवान् के पक्ष में नहीं था ।[3] इसीलिये भर्तृहरि ने कहा कि सर्प एवं दुर्जन के मध्य सर्प ही अच्छा है, दुर्जन नहीं, क्योंकि सर्प तो समय पर ही डसता है किन्तु दुर्जन तो हर पग पर संत्रस्त करता है ।[4] अन्यत्र भी उन्होंने कहा है कि सर्प भी क्रूर तथा खल भी क्रूर होता है, किन्तु सर्प से खल अधिक क्रूर होता है । मन्त्रप्रयोग से तो सर्प शान्त भी हो जाता है, किन्तु

---

1. विषमा मलिनात्मानो द्विजिह्वा जिह्मगा इव ।
   जगत्प्राणहरा नित्यं कस्य नोद्वेजका: खला: ॥ शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 353.

2. तक्षकस्य विषं दन्ते मक्षिकाया विषं शिर: ।
   वृश्चिकस्य विषं पुच्छं सर्वाङ्गे दुर्जनो विषम्॥ चाणक्यनीतिदर्पण 17/8.

3. क्वचित्सर्पोऽपि मित्रत्वमियान्नैव खल: क्वचित् । सुभाषितरत्नभाण्डागारम्,
   न शेषशायिनोऽप्यस्य वशे दुर्योधनो हरे: ॥ दुर्जननिन्दा, श्लोक 9.

4. सर्पदुर्जनयोर्मध्ये वरं सर्पो न दुर्जन: ।
   सर्पो दशति कालेन दुर्जनस्तु पदे पदे ॥ वही, श्लोक 784.

दुर्जन कभी शान्त ही नहीं होता है ।[1] अन्यत्र भी कहा गया है कि जिस प्रकार सर्प को दूध पिलाने पर विषवर्धन ही होता है और सिंह का पालन करने पर भी बलशाली होकर वह सिंह पालक को मार ही डालता है, उसी प्रकार दुष्टों के साथ उपकार करना भी अनर्थकारी ही रहता है, इसलिए विद्वान् को कभी भी इन पर विश्वास नहीं करना चाहिये ।[2] इस प्रकार स्पष्ट है कि दुष्ट समाज का सदैव विध्वंसक तत्त्व होने के कारण विद्वानों द्वारा निन्दित रहा है ।

स्त्री-स्वभाव-निन्दा

काम-वर्णन के प्रसङ्ग में क्षेमेन्द्र द्वारा वर्णित स्त्री-स्वभाव सम्बन्धी नीतियों का वर्णन किया जा चुका है । स्त्रियों की चञ्चलता, माया, अशौच, साहस एवं असत्य भाषण आदि दोषों की विभिन्न कालों में विभिन्न विद्वानों द्वारा निन्दा की गयी है । नीतिदर्पणकार चाणक्य में स्त्रीस्वभावजन्य दोषों अनृत, साहस, माया, मूर्खता, लोभ, अशौच और निर्दयता आदि को बताते हुए कहा है कि स्त्रियाँ दूसरे से

---

1. सर्प. क्रूर: खल: क्रूर: सर्पात्क्रूरतर: खल: ।
   मन्त्रेण शाम्यते सर्पो न खल: शाम्यते कदा।। भर्तृहरिसुभाषितसङ्ग्रह, श्लोक 785.

2. संवर्धितोऽपि भुजग: पयसा न वश्यस्-
   तत्पालकानपि निहन्ति बलेन सिंह: ।
   दुष्टै: परैरुपकृतस्तदनिष्टकारी
   विश्वासलेश इह नैव बुधैर्विधेय: ।। – संस्कृतपाठोपकारकतत्त्वबोधिनी, श्लोक

वार्ता करती हैं तो किसी दूसरे को देखती हैं और किसी दूसरे को हृदय में चिन्तन करती हैं। इस प्रकार स्त्रियों के लिए कौन प्रिय है?[1] महाभारत में भी कहा गया है कि जो स्त्रियाँ सत्य को असत्य तथा असत्य को सत्य कहती हैं, वे धीर पुरुषों द्वारा कैसे संरक्ष्य हैं?[2] पञ्चतन्त्रकार विष्णु शर्मा ने स्त्रियों को गुञ्जाफल के समान बताते हुए अन्तः विषमय एवं बाह्य रूप से मनोरमा कहा है।[3] वे तो स्त्रियों में सतीत्व को असम्भव बताते हुए कहते हैं कि यदि अग्नि शीतल, चन्द्रमा उष्ण तथा दुर्जन हितकारी हो जाय तब स्त्रियों में सतीत्व हो सकता है।[4]

---

1. अनृतं साहसं मायामूर्खत्वमतिलोभता ।
   अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः ॥ चाणक्यनीति 2/1.

   जल्पन्ति सार्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमम् ।
   हृदये चिन्तयन्त्यन्यं प्रियः को नाम योषिताम् ॥ वही, 16/2

2. अनृतं सत्यमित्याहुः सत्यं चापि तथानृतम् ।
   इति यास्ताः कथं धीरैः संरक्ष्याः पुरुषैरिह ॥ महाभारत 13/224

3. अन्तर्विषमया ह्येता बहिश्चैव मनोरमाः ।
   गुञ्जाफलसमाकारा योषितः केन निर्मिताः ॥ पञ्चतन्त्र 1/211.

4. यदि स्यात्पावकः शीतः प्रोष्णो वा शशलाञ्छनः ।
   स्त्रीणां तदा स्याद्यदि स्याद्दुर्जनो हितः ॥ वही, 3/193

इसी तरह उन्होंने दूसरे श्लोक में भी कहा है कि यदि अग्नि शीतल, चन्द्रमा दाहक और सागर सुस्वादयुक्त हो जाय तब स्त्रियों में सतीत्व हो सकता है ।[1] चाणक्य की भाँति शूद्रक ने भी कहा है कि चञ्चल स्त्रियाँ हृदय में अन्य पुरुष को रखकर उससे भिन्न पुरुष को दृष्टियों से बुलाती हैं, यौवन का हाव-भाव किसी दूसरे पर फेंकती हैं और शरीर से किसी और को ही चाहती हैं ।[2] भर्तृहरि का कथन है कि जो स्त्री स्मरण से सन्ताप पहुँचाती हैं, जिसके दिखने मात्र से उन्माद बढ़ जाता है, और जिसके छू लेने भर से मोह उत्पन्न हो जाता है और जिसके छू लेने भर से मोह उत्पन्न हो जाता है, उसे न जाने क्यों दयिता अर्थात् प्राणवल्लभा कहा गया है ।[3] स्त्रियाँ न दान, न मान, न आर्जव, न सेवा, न शस्त्र एवं न शास्त्र ही से अर्थात् सब प्रकार से विषम बतायी गयी हैं ।[4] इसीलिये उन्हें पुरुष के निधन, कलह, व्यसन एवं नरक का मूल कहा गया है अर्थात् वे ही इन दोषों की जननी हैं ।[5]

---

1. यदि स्याच्छीतलो वह्निश्चन्द्रमा दहनात्मकः ।
   सुस्वादः सागरः स्त्रीणां तत्सतीत्वं प्रजायते ॥ पञ्चतन्त्र 1/287.
2. अन्यं मनुष्यं हृदयेन कृत्वा ह्यन्यं ततो दृष्टिभिराह्वयन्ति ।
   अन्यत्र मुञ्चन्ति मदप्रसेकमन्यं शरीरेण च कामयन्ते ॥ मृच्छकटिक 4/16.
3. स्मृता भवति तापाय दृष्टा चोन्मादकारिणी ।
   स्पृष्टा भवति मोहाय सा नाम दयिता कथम् ॥ भर्तृहरिशृंगारशतक, श्लोक 73.
4. न दानेन न मानेन नार्जवेन न सेवया ।
   न शस्त्रेण न शास्त्रेण सर्वथा विषमाः स्त्रियः ॥ गरुडपुराण, श्लोक 109.
5. स्त्रियो हि मूलं निधनस्य पुंसः स्त्रियो हि मूलं व्यसनस्य पुंसः । सुभाषितरत्नभाण्डागारम्, स्त्रीस्वभाव-
   स्त्रियो हि मूलं नरकस्य पुंसः, स्त्रियो हि मूलं कलहस्य पुंसः ॥ निन्दा, श्लोक 64.

स्त्री को वश में नहीं किया जा सकता - ऐसा अन्यत्र भी कहा गया है । वे दण्ड से ताडित होने पर शस्त्रों से विखण्डित होने पर अथवा दानादि से भी नहीं वश में की जा सकती हैं ।[1] स्त्रियों को अविश्वासपात्र ही बताया गया है । यद्यपि पति नीतिशास्त्रनिपुण, विद्वान्, कुलीन, युवा, कर्णसमान दाता, वैभवसम्पन्न तथा अपने प्राणों से भी अधिक अपनी पत्नी को प्रेम करने वाला हो, तदपि वह युवती जारपति को ही चाहती है - ऐसा भर्तृहरि ने कहा है ।[2] उन्होंने तो स्त्री को विविध प्रकार के संशयों का भँवर, अविनय का घर, साहस का नगर, दोषों का भण्डार, सैकड़ों प्रकार के कष्ट एवं अविश्वासों का क्षेत्र, स्वर्ग-द्वार का विघ्न, नरकपुर का सुख, समस्त प्रकार की माया का पिटारा, अमृत के रूप में विष और पुरुषों को मोह जाल में फँसाने वाली बताया है । इतने पर भी मनुष्य इसके हाथों में ऐसे नाचता है, जैसे यह कोई यन्त्र है और मनुष्य उसके द्वारा नचाया जा रहा है ।[3] शार्ङ्गधरपद्धति में भी चाणक्य एवं शूद्रक की

---

1. ताडिता अपि दण्डेन शस्त्रैरपि विखण्डिताः ।
   न वशं योषितो यान्ति न दानैर्न च संस्तवैः ॥ पञ्चतन्त्र 4/56

2. भर्ता यद्यपि नीतिशास्त्रनिपुणो विद्वान्कुलीनो युवा
   दाता कर्णसमः प्रसिद्धविभवः शृङ्गारदीक्षागुरुः ।
   स्वप्राणाधिककल्पिता स्ववनिता स्नेहेन संलालिता
   तं कान्तं प्रविहाय सैव युवती जारं पतिं वाञ्छति ॥ भर्तृहरिसुभाषितसंग्रह, श्लोक 625.

3. आवर्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानां
   दोषाणां संन्निधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानाम् ।
   स्वर्गद्वारस्यविघ्नो नरकपुरसुखं सर्वमायाकरण्डं
   स्त्रीयन्त्रं केन लोके विषममृतमयं प्राणिनां मोहपाशः ॥ भर्तृहरि, शृंगारशतक, श्लोक 76.

भाँति स्त्री को नयन विकार, वचन एवं चेष्टा द्वारा भिन्न-भिन्न व्यक्ति से अनुरक्त बताते हुए शार्ङ्गधर पद्धतिकार ने उन्हें किसी अन्य व्यक्ति के ही साथ ही रमण करने वाली बहुरूपा कहा है ।[1] भर्तृहरि द्वारा अन्यप्रसक्ता स्त्री के विवेचन की भाँति हितोपदेशकार ने भी कहा है कि स्त्रियाँ सहजानुरक्ता होती हैं । वे गुणाश्रय, कीर्तियुक्त, धनी एवं रतिज्ञ आदि गुणी पति को छोडकर दूसरे शीलगुणादि हीन पुरुष का भी वरण कर लेती हैं ।[2] उनकी सहजानुरक्ति एवं क्षणिकवत्ता तो चलता के ही कारण होती है । शूद्रक ने कहा है कि समुद्रतरङ्ग की भाँति चञ्चल स्वभाव वाली, सन्ध्या की मेघ पंक्ति की भाँति क्षणिक राग वाली स्त्रियाँ पराभूत किये हुए पुरुष को निष्पीडित लाक्षारस सदृश त्याग देती हैं ।[3] भागवत पुराण में उन्हें करुणारहित, क्रूर, ईर्ष्यालु एवं साहसी बताते हुए यह कहा गया है कि वे विश्रब्ध पति व भाई का भी अल्पार्थ में हनन कर देती है ।[4] इसीलिये हितोपदेश में कहा गया है कि स्त्रियों को कोई न प्रिय होता है और न अप्रिय, बल्कि वे जंगल में गायों द्वारा नये-नये घासों को चरने की भाँति

---

1. नयनविकारैरन्यं वचनैरन्यं विचेष्टितैरन्यम् ।
   रमयति सुरतेनान्यं स्त्री बहुरूपा निजा कस्य ॥ शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 3765
2. गुणाश्रयं कीर्तियुतं च कान्तं पतिं विधेयं सधनं रतिज्ञम् ।
   विहाय शीघ्रं वनिता व्रजन्ति नरान्तरं शीलगुणादिहीनम् ॥ हितोपदेश 2/117.
3. समुद्रवीचीव चलस्वभावाः संध्याभ्रलेखेव मुहूर्तरागाः ।
   स्त्रियोहृतार्थाः पुरुषं निरर्थं निष्पीडितालक्तकवत्यजन्ति ॥ मृच्छकटिक 4/15.
4. स्त्रियो ह्यकरुणाः क्रूरा दुर्मर्षाः प्रियसाहसाः ।
   घ्नन्त्यल्पार्थेऽपि विश्रब्धं पतिं भ्रातरमप्युत ॥ भागवतपुराण 9.14.37

नवीन पुरुष की आकांक्षा वाली होती हैं ।[1] भर्तृहरि वामनयना शब्द से प्रतिकूल आचरण कर वामता अर्थात् वैपरीत्य सिद्ध करने वाली स्त्री के लिए संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं बताया गया है, जिसे वह न कर सके । सुन्दरियाँ अनेक प्रकार की चेष्टायें करके रसिक जनों के हृदयों में प्रवेश कर जाती हैं । कभी तो वे पुरुषों को सम्मिलित करती हैं, कभी मदोन्मत्त । कभी तरह-तरह के हास-परिहास द्वारा उसे छलती हैं, कभी झिड़कियाँ देकर नचाती हैं, कभी उसके साथ रमण करती हैं और कभी उससे दूर रहकर उसे दु:ख पहुँचाती हैं । विरहाकुलता में पुरुष स्त्री के प्रति और भी अधिक आसक्त एवं आग्रहशील हो जाता है ।[2] पञ्चतन्त्र में भार्गव कथन है कि जिस घर में स्त्री एवं बालक का शासन होता है, वह घर निर्मूलता को प्राप्त हो जाता है ।[3]

उपर्युक्त विवेचनों से स्पष्ट है कि कविवर क्षेमेन्द्रवर्णित भावों की ही तरह अन्य कवियों ने भी स्त्रीस्वभाव की तीखी आलोचना की है । इससे एक तथ्य और

---

1. न स्त्रीणामप्रिय: कश्चित्प्रियो वापि न विद्यते ।
   गावस्तृणमिवारण्ये प्रार्थयन्ति नवं नवम् ॥ हितोपदेश 1/117.

2. संमोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति ।
   निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति ।
   एता: प्रविश्य सदयं हृदयं नराणां
   किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ॥ भर्तृहरि, श्रृंगारशतक, श्लोक 21.

3. यत्र स्त्री यत्र कितवो बालो यत्र प्रशासिता ।
   राजन्निर्मूलतां याति तद्गृहं भार्गवो ब्रवीद् ॥ पञ्चतन्त्र 5/61.

स्पष्ट होता है कि क्षेमेन्द्रवर्णित तथ्य कोई पक्षपातपूर्ण नहीं है तथा उनके द्वारा किया गया अधिक्षेप उनके निन्दा करने के स्वभाव को नहीं, बल्कि समाज-सुधार एवं सर्जनात्मक भावना का द्योतक है ।

लोभ निन्दा

कविवर क्षेमेन्द्र मनुष्य के प्रबल शत्रु लोभ की कटु शब्दों में निन्दा की है, जो धन सम्बन्धी नीति के अन्तर्गत वर्णित है तथा वेश्या, कायस्थ आदि के पतन व दुष्कर्म में भी लोभ को ही कारण बताते हुए उनकी तीखी आलोचना की गयी है । हितोपदेश, भोजप्रबन्ध, महाभारत एवं शार्ङ्गधरपद्धति आदि काव्यों के रचनाकारों ने भी लोभ-निन्दक बातें कहीं हैं । भोजप्रबन्ध में लोभ पाप का कारण तथा द्वेष क्रोधादि का जनक बताया गया है । लोभ से ही क्रोध, काम, मोह एवं नाश होता है क्योंकि लोभ ही पाप का कारण है । लोभ से युक्त लोभी व्यक्ति माता, पिता, पुत्र, भाई अथवा मित्र की तथा स्वामी व सहोदर जैसे निकटस्थ प्रिय लोगों का भी हनन करता है ।[1] महाभारत में भी यह उल्लिखित है कि लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से

---

1. अ. लोभः प्रतिष्ठा पापस्य प्रसूतिर्लोभ एव च ।
 द्वेषक्रोधादिजनको लोभः पापस्य कारणम् ॥

 ब. लोभात्क्रोधः प्रभवति लोभात्कामः प्रजायते ।
 लोभान्मोहश्च नाशश्च लोभः पापस्य कारणम् ॥

 स. मातरं पितरं पुत्रं भ्रातरं वा सुहृत्तमम् ।
 लोभाविष्टो नरो हन्ति स्वामिनं वा सहोदरम् ॥ **भोजप्रबन्ध, श्लोक 1-3.**

द्रोह उत्पन्न होता है तथा द्रोह से ही शास्त्रज्ञ विद्वान् भी नरकगामी होते हैं ।[1] हितोपदेशकार ने कहा है कि लोभ से बुद्धि चंचल होकर तृष्णा उत्पन्न करती है तथा तृष्णा से आर्त्त मनुष्य इहलोक और परलोक - दोनों में दु.ख ही प्राप्त करता है ।[2] लोभी सदा चिन्तामग्न होकर सब ओर से भयभीत रहता है । लोभ से विमूढ व्यक्ति अपना विवेक खो देता है । उसे कार्याकार्य विचार नहीं रह जाता है[3] - ऐसा शार्ङ्गधरपद्धति में कहा गया है । लोभाविष्ट मनुष्य वित्त ही देखता है, किन्तु उस वित्त-प्राप्ति में उत्पन्न आपत्ति को नहीं देखता है, जिस प्रकार बिल्ली स्वाहार दूध को ही देखती है किन्तु जाल में फँसने की आपत्ति को नहीं सोचती है ।[4]

इस प्रकार स्पष्ट है कि लोभ से व्यक्ति मोहान्ध होकर दुष्कर्म में प्रवृत्त होता है तथा तज्जन्य ताप में जलकर भस्म हो जाता है । इस तरह के भाव सभी कालों में विचारकों द्वारा व्यक्त किये गये हैं ।

---

1. लोभात्क्रोधः प्रभवति क्रोधाद्द्रोहः प्रवर्तते ।
   द्रोहेण नरकं याति शास्त्रज्ञोऽपि विचक्षणः ॥ महाभारत 12/5880.

2. लोभेन बुद्धिश्चलति लोभो जनयते तृषाम् ।
   तृषार्तो दुःखमाप्नोति परत्रेह च मानवः॥ हितोपदेश 1/142.

3. लोभः सदा विचिन्त्यो लुब्धेभ्यः सर्वतो भयं दृष्टम् ।
   कार्याकार्य विचारो लोभविमूढस्य नास्त्येव ॥ शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 428.

4. लोभाविष्टो नरो वित्तं वीक्षते न स चापदम् । सुभाषितरत्नभाण्डागारम्,
   दुग्धं पश्यति मार्जारो न तथा लगुडाहतिम् ॥ लोभनिन्दा, श्लोक 6.

क्षेमेन्द्र-प्रतिपादित नीत्युपदेशपरक विषयों पर अन्य कवियों के विचार

कविवर क्षेमेन्द्र ने अनेक नीतियों एव प्रशंसात्मक तथ्यों की विवेचना की है, जिसका विवेचन किया जा चुका है। इसी परिप्रेक्ष्य में तत्सम्बन्धी कुछ शीर्षकों पर अन्य कवियों के विचारों का विवेचन कर लेना प्रासङ्गिक ही होगा। कुछ विषयों पर अन्य कवियों के विचार निम्नलिखित हैं।

विद्या-प्रशंसा -

वस्तुत: विद्या के महत्त्व से अनेक ग्रन्थ भरे पड़े हैं, जिसमें इसे सभी उपलब्धियों से सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है। यह अनेक संशयों को दूर कर परोक्ष-ज्ञान भी प्रदान करता है। शास्त्र ही सभी के नेत्र हैं। जिसके पास विद्या नहीं है, वह अन्धा ही है।[1] विद्याविहीन व्यक्ति तो कुत्ते की उस पूँछ की तरह व्यर्थ है, जो न तो गुह्यगोपन में समर्थ है और न तो दंशनिवारण में ही।[2] भोजप्रबन्धकार ने विद्या को सर्वार्थसाधिनी कल्पलता बताते हुए कहा है कि विद्या मातासदृश रक्षा, पिता की तरह हित, खेद को दूरकर कान्ता की भाँति आनन्द प्रदान तथा धन-वृद्धि एवं दिशाओं में यश का विस्तार करने वाली हैं।[3]

---

1. अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम्।
   सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध: एव स:॥ हितोपदेश श्लोक 10.

2. शुन: पुच्छमिव व्यर्थं जीवितं विद्यया विना।
   न गुह्यागोपने शक्तं न च दंशनिवारणे ॥ चाणक्यशतकम् 7/19.

3. मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते
   कान्तेव चाभिरमयत्यपनीय खेदम्।
   लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्तिं
   किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या॥ भोजप्रबन्ध, श्लोक 5.

धन-वृद्धि, आपत्ति-हरण, यश-विस्तार, मलिनता का नाश और पवित्र संस्कार से परम पवित्रता इत्यादि लाभ कामधेनु सदृश शुद्ध बुद्धि से ही सम्भव है ।[1] सद्विद्या के होने पर व्यक्ति चिन्तामुक्त हो जाता है तथा उदरपूर्ति की स्थिति में कोई श्रेष्ठ थोडी होती है । भोजन तो शुक भी राम-राम बोलता हुआ प्राप्त कर लेता है ।[2] विद्या को सभी धनों में प्रधान बताते हुए कहा गया है कि यह चोर, राजा, भाई द्वारा क्रमशः न तो चुराया जा सकता है, न हरण किया जा सकता है और न ही विभाजित किया जा सके । यह अन्य धन की तरह भारकारी भी नहीं होता तथा अन्य धनों के अपवाद-स्वरूप यह व्यय करने पर नित्य वृद्धि को ही प्राप्त होती है ।[3] मत्स्यपुराणकार ने भी विद्या को उसकी अहार्य, अनर्घ्य एवं अक्षय आदि

---

1. श्रियः प्रदुग्धे विपदो रुणद्धि,
   यशांसि सूते मलिनं प्रमार्ष्टि ।
   संस्कारशौचेन परं पुनीते
   शुद्धा हि बुद्धिः किल कामधेनुः ॥ विद्धशालभञ्जिका 1/8.

2. सद्विद्या यदि का चिन्ता वराकोदरपूरणे ।
   शुकोऽप्यशनमाप्नोति रामरामेति च ब्रुवन् ॥ शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 473.

3. न चौरहार्यं न च राजहार्यं
   न च भ्रातृभाज्यं न च भारकारि ।
   व्यये कृते वर्धत एव नित्यं
   विद्याधनं सर्वधनं प्रधानम् ॥ प्रसङ्गाभरण, श्लोक 8.

गुणों के कारण सभी द्रव्यों में श्रेष्ठता प्रदान की है ।[1] भर्तृहरि सभी विषयों की उपेक्षा कर विद्याधिकार करने का सदुपदेश देते हुए कहते हैं कि विद्या पुरुष की अतुल कीर्ति, भाग्यक्षय में आश्रय, कामधेनु, विरह में रति और तृतीय नेत्र का नाम है अर्थात् सभी को प्रदान करने वाली है । यह सत्कारायतन, कुल की महिमा एवं रत्नों के विना आभूषण भी है ।[2] विद्या गुरुवचन की अपेक्षा नहीं करती, सभी ग्रन्थियों का सम्यक् विभेद करती है, पररहस्य को प्रकट करती है तथा विमर्शशक्ति भी उत्पन्न करती है ।[3]

इस प्रकार स्पष्ट है कि विद्या के भी विषय में अनेक मनीषियों ने प्रशंसात्मक बातें कहते हुए उसे अद्वितीय, सर्वोत्तम एवं सर्वप्रधान बताया है । क्षेमेन्द्र ने भी सद्विद्या पर विशेष महत्त्व दिया है, क्योंकि विद्या तो दुर्जन भी प्राप्त कर लेता है, किन्तु उसका दुरुपयोग करता है । क्षेमेन्द्र ने विद्या की सार्थकता तब स्वीकार की है जब वह मद का हरण कर सद्विचार प्रदान करे ।

---

1. सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् ।
   अहार्यत्वादनर्घ्यत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा ॥ मत्स्यपुराण, श्लोक 189.

2. विद्या नाम नरस्य कीर्तिरतुला भाग्यक्षये चाश्रयो
   धेनुः कामदुधा रतिश्च विरहे नेत्रं तृतीयं च सा ।
   सत्कारायतनं कुलस्य महिमा रत्नैर्विना भूषणं
   तस्मादन्यमुपेक्ष्य सर्वविषयं विद्याधिकारं कुरु ॥ भर्तृहरिसुभाषितसंग्रह श्लोक 70.

3. अनपेक्षितगुरुवचनासर्वान्ग्रन्थीन्विभेदयति सम्यक् ।
   प्रकटयति पररहस्यं विमर्शशक्तिर्निजा जयति ॥ सुभाषितावलि, श्लोक 2.

धन-प्रशंसा

धन तो मनुष्य के जीवन का अपरिहार्य अङ्ग है जिसके विना कोई भी कार्य सम्भव नहीं नहीं है । धन के भी महत्त्व से हमारे काव्य भरे हैं । इसीलिये शार्ङ्गधरपद्धति में कहा गया है कि धन के महत्त्व को कहने में कोई समर्थ नहीं है । कवि आश्चर्य व्यक्त करता है कि नाम साम्य से मद प्रदान करने वाला है ।[1] प्रसङ्गाभरण में तो इस जगत को धन मूल मानते हुए धनार्जन के लिए कहा गया है । कवि को निर्धन और मृत में अन्तर नहीं दिखायी देता ।[2] जिस तरह वैभव लोक में पूज्य है उस तरह शरीर नहीं । विपुल धन से युक्त चाण्डाल भी पूज्य हो जाता है - ऐसा किसी कवि का कथन है ।[3] नीतिसार में भी कवि ने धनार्जन के लिए जोर देकर कहा है कि धन से ही अकुलीन, कुलीन हो जाते हैं और धन से ही लोग आपत्तियों का निराकरण कर देते हैं इसलिए धन से परे इस लोक में कोई भी बन्धु बान्धव नहीं है ।[4]

---

1. अहो कनकमाहात्म्यं वक्तुं केनापि शक्यते ।
   नामसाम्यादहो चित्रं धत्तूरो पि मदप्रद: ॥ शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 4.
2. धनमर्जय काकुत्स्थ धनमूलमिदं जगत् ।
   अन्तरं नैव पश्यामि निर्धनस्य मृतस्य च ॥ प्रसङ्गाभरण, श्लोक 4
3. विभवो हि यथा लोके न शरीराणि देहिनाम् । सुभाषितरत्नभाण्डागारम्
   चाण्डालोऽपि नर: पूज्यो यस्यास्ति विपुलं धनम् ॥ धनप्रशंसा श्लोक 8.
4. धनैर्निष्कुलीना: कुलीना भवन्ति
   धनैरापदं मानवा निस्तरन्ति ।
   धनेभ्य: परो बान्धवो नास्ति लोके
   धनान्यर्जयध्वं धनान्यर्जयध्वम् ॥ नीतिसार, श्लोक 3.

नीतिसार में अन्यत्र भी द्रव्योपार्जन का सदुपदेश दिया गया है, क्योंकि द्रव्य से वश में हो जाते हैं, किन्तु धनाभाव में माता निन्दा करती है, पिता अभिनन्दन नहीं करते, भाई भी प्रेम से नहीं बोलता, नौकर भी क्रोध करता है, पुत्र अनुसरण नहीं करता तथा पत्नी आलिङ्गन नहीं करती और सुहृद भी धन माँगे जाने के डर से नहीं बोलते हैं।[1] धन में आकर्षण शक्ति का प्राबल्य होता है। इसीलिये विष्णु शर्मा कहते हैं कि प्राज्ञ व्यक्ति को किसी को स्वल्प धन भी नहीं दिखाना चाहिये, क्योंकि उसे देखने से मुनि का भी मन चलायमान हो जाता है।[2] चाणक्य भी नीतिसार के कथन की भाँति कहते हैं कि धनहीन व्यक्ति को मित्र, पुत्र, स्त्री एवं सुहृज्जन सभी छोड़ देते हैं, किन्तु जब वह धनवान हो जाता है तो वही पुनः आश्रय की अपेक्षा करते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि धन ही लोक में पुरुष का बन्धु है। हितोपदेशकार ने गौरव एवं

---

1. माता निन्दति नाभिनन्दति पिता भ्राता न सम्भाषते।
   भृत्यः कुप्यति नानुगच्छति सुतः कान्ता च नालिङ्गते।
   अर्थप्रार्थनशङ्कया न कुरुते सभाषणं वै सुहृद -
   तस्माद्द्रव्यमुपार्जयस्व सुमते द्रव्येण सर्वे वशाः॥ नीतिसार, श्लोक 2.

2. न वित्तं दर्शयेत्प्राज्ञः कस्यचित्स्वल्पमप्यहो।
   मुनेरपि यतस्तस्य दर्शनाच्चलते मनः॥ पंचतन्त्र 1/433.

3. त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं
   पुत्राश्च दाराश्च सुहृज्जनाश्च।
   तमर्थवन्तं पुनराश्रयन्ति
   ह्यर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः॥ (वृद्ध) चाणक्यशतक 15/5.

लघुता धन व धनाभाव के आधार पर माना है। मनुष्य मनुष्य का दास नहीं होता अपितु अर्थ व धनी भूपति का दास व्यक्ति होता है।[1] भूखा व्यक्ति व्याकरण नहीं ग्रहण करता तथा प्यासा काव्यरस का पान नहीं करता और नही छन्द से किसी के द्वारा कुलोद्धार होता है। इसीलिए धनार्जन करो, जिसके अभाव में सभी गुण निष्फल हो जाते हैं - ऐसा भर्तृहरि का मन्तव्य है।[2] स्त्री के मोहक रूप पर युवक तत्क्षण मोहित हो जाता है किन्तु कनक अर्थात् धन से तो स्त्री, बालक व वृद्धादि सभी सदा मोहित रहते हैं।[3] वस्तुत: व्यावहारिक जगत धन की उपादेयता को देखते हुए यह पूर्णत: स्पष्ट है कि इस लोक में सभी उपलब्धियों का आधार धन ही है तथा धन में दोषों को समाविष्ट करने की क्षमता भी विद्यमान है। इसीलिये चाणक्य कहते हैं कि यदि ब्रह्महत्या करने वाला मनुष्य विपुल वैभव सम्पन्न है तो वह पूज्य होगा, किन्तु

---

1. न नरस्य नरो दासो, दासश्चार्थस्य भूपते।
   गौरवं लाघवं वापि धनाधननिबन्धनम् ॥ हितोपदेश 3/78.

2. बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते
   पिपासितै: काव्यरसो न पीयते।
   नच्छन्दसा केनचिदुद्धृतं कुलं
   हिरण्यमेवार्जय निष्फला गुणा: ॥ भर्तृहरिसुभाषितसंग्रह, श्लोक 621.

3. स्त्रीरूपं मोहकं पुंसो यून एव भवेत्क्षणम्।
   कनकं स्त्रीबालवृद्धषण्ढानामपि सर्वदा ॥
   - शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 4192.

चन्द्रसदृश विमल वंशोत्पन्न व्यक्ति यदि निर्धन है तो पराभव को ही प्राप्त होगा ।[1] धनप्राप्ति के लिए युवा व्यक्ति में अपनी विलासयोग्या पत्नी को छोडकर विदेशों मे निवास करता हुआ रात में उसका. स्मरण करता हुआ सोचता है कि कान्ताश्रम से यह अर्थश्रम ही श्रेष्ठ है अर्थात् वह युवा धनप्राप्ति को ज्यादा महत्त्व देता है ।[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि धन-महिमा से हमारा संस्कृत साहित्य भरा है, जिसमें लौकिक जगत् में धन को अपरिहार्य माना गया है तथा धन से ही सभी प्राप्त गुणों में विशिष्टता आ जाती है । कविवर क्षेमेन्द्र ने भी धन को जीवन का अनिवार्य अङ्ग मानते हुए भी सन्तोष को ही सुख का मूल बताया है ।

<u>सत्यप्रशंसा</u>

सत्य को तो हमारे मनीषियों ने खूब सराहा है । सराहें भी क्यों न ? क्योंकि सत्य ही इहलोक एवं परलोक में भी सर्वोच्च स्थान प्राप्त है । सत्य ही सबको वाणी को उसी तरह भूषित करता है, जिस प्रकार कुलस्त्रियों को लज्जा ।[3] मनुस्मृति

---

1. ब्रह्मघ्नोऽपि नरः पूज्यो यस्यास्ति विपुलं धनम् ।
   शशिना तुल्यवंशोऽपि निर्धनः परिभूयते ॥ चाणक्यनीतिसार श्लोक 82.

2. त्यक्त्वा युवा स्वयुवतिं सुविलासयोग्या
   दूरं विदेशवसतौ निवसन्धनार्थी ।
   रात्र्यागमे स्मरति तां न समेति तस्माद् — सुभाषितरत्नभाण्डागारम्
   कान्ताश्रमादपि वरः कनकश्रमोऽयम् ॥ — धनप्रशंसा, श्लोक 14.

3. सूनृतं सर्वशास्त्रार्थनिश्चितज्ञानशोभितम् ।
   भूषणं सर्ववचसां लज्जेव कुलयोषिताम् ॥ — प्रसंगाभरण, श्लोक 15.

में भी सत्य की महिमा का गान किया गया है । सत्य को अतुलनीय ही कहा गया है । यदि सहस्र अश्वमेध यज्ञ एवं सत्यभाषण के फल को तुला के पलड़ों पर रखा जाय, तो सहस्र अश्वमेध यज्ञ से सत्य ही विशिष्ट स्थान प्राप्त करेगा ।[1] यह कथन लोकप्रसिद्ध है कि पृथ्वी सत्यवादियों के ही बल पर टिकी है । इसी तथ्य को पुष्ट करते हुए किसी कवि ने कहा है कि गाय, विप्र, वेद, सती, सत्यवादी, अलोभी एवं दानशूर-इन सातों द्वारा ही पृथ्वी धारण की जाती है ।[2] सत्य की सराहना कविवर क्षेमेन्द्र ने भी की है, जो धर्म सम्बन्धी नीति के अन्तर्गत वर्णित है ।

दानप्रशंसा

धन की सदुपयोगिता तो देने व सदुपयोग करने में ही है । इसीलिये भोज-प्रबन्धकार ने कहा है कि जो दान करता है और उपभोग करता वही धनी के धन का उचित प्रयोग है । अन्य तो मृतकतुल्य व्यक्ति के स्त्रियों एवं धन से लोग क्रीडा करते हैं ।[3] हितोपदेशकार ने भी उसी को धन की संज्ञा देना स्वीकार किया है, जो

---

1. अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥ मनुस्मृति 1/3095

2. गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः ।
अलुब्धैर्दानशूरैश्च सप्तभिर्धार्यते मही ॥ सुभाषितरत्नभाण्डागारम्, सत्यप्रशंसा, श्लोक 3.

3. यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनो धनम् ।
अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि ॥ भोजप्रबन्ध, श्लोक 63.

विशिष्ट को दिया जाय व प्रतिदिन उपभुक्त हो ।[1] अन्यत्र भी दान को सर्वोत्तम बताते हुए कहा गया है कि पाप से नरक की प्राप्ति होती है और पाप दरिद्रता से सम्भव है इसलिये दरिद्रता से वंचित रहकर व्यक्ति को दान-प्रवृत्त होना चाहिये ।[2] सूक्तिमुक्तावली में भी वित्त को गौरव की प्राप्ति दान से ही माना है, न कि संचय से । जल देने वाला बादल ऊँचे रहता है, किन्तु जल संचय प्रवृत्त सागर अथाह जलराशि से युक्त नीचे रहता है - ऐसा कवि ने उदाहृत कर स्वकथन की पुष्टि की है ।[3]

हितोपदेशकार ने अन्यत्र भी धन सम्बन्धी उचितानुचित प्रयोग का विवेचन किया है ।[4] श्रीमद्भगवद्गीता में भी दान के महत्त्व को बताकर सात्त्विक दान की विशिष्टता को दर्शाया गया है । दान देना ही कर्त्तव्य है - ऐसे भाव से जो दान देश, काल और पात्र के प्राप्त होने पर उपकार न करने वाले के प्रति दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है ।[5] इसी सात्त्विक दान का उल्लेख क्षेमेन्द्र ने भी

---

1. यद्ददासि विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नासि दिने दिने ।
   तत्ते वित्तमहं मन्ये शेषमन्यस्य रक्षसि ॥ हितोपदेश 1/169.
2. भवन्ति नरकाः पापात्पापं दारिद्र्यसंभवम् ।
   दारिद्यमप्रदानेन तस्माद्दानपरो भवेत ॥ कुवलयानन्द, श्लोक 104.
3. गौरवं प्राप्यते दानान्न तु वित्तस्य संचयात् ।
   स्थितिरुच्चैः पयोदानां पयोधीनामधःस्थितिः ॥ सूक्तिमुक्तावलि, 116/3.
4. दरिद्रान्भर कौन्तेयं मा प्रयच्छेश्वरे धनम् ।
   व्याधितस्यौषधं पथ्यं नीरुजस्य किमौषधैः ॥ हितोपदेश 1/15.
5. दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
   देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥ गीता 17/20.

किया है । पंचतन्त्रकार विष्णुशर्मा ने भी उपार्जित वित्त के त्याग को ही रक्षा बताते हुए तडागोदर जल से उपमित कर धन के सदुपयोग एवं उपभोग पर बल दिया है ।[1] शार्ङ्गधरपद्धति में ऐसे धन को निष्प्रयोजन ही माना है, जो वधू की भाँति घर में ही रहे । उसमें धन को सर्वोपभोग्य बताते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार वेश्या सभी पथिकों द्वारा योग्या होती है, उसी प्रकार धन को भी सर्वोपभोग्य होने पर बल दिया है ।[2] पद्यसंग्रह में तो अन्नदान की विशेष महत्ता का गुणगान किया गया है । सैकड़ों घोड़े, हजारों गायें, लाखों हाथी, स्वर्ण व रजतनिर्मित पात्र, सागरपर्यन्त पृथ्वी और विमल कुलवधुओं की करोड़ों कन्यायें दान में दी जायँ, तब भी प्रधान अन्नदान की समानता नहीं हो सकती है ।[3] दान से हो सभी प्राणी वश में होते हैं, दान से ही

---

1. उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम् ।
   तडागोदरसंस्थानां परीवाह इवाम्भसाम् ॥ पंचतन्त्र 2/157.

2. किं तया क्रियते लक्ष्म्या या वधूरिव केवला ।
   या न वेश्येव सामान्या पथिकैरुपभुज्यते ॥ शार्ङ्गधरपद्धति पं0 2/141.

3 तुरगशतसहस्रं गोगजानां च लक्षं
  कनकरजतपात्रं मेदिनीं सागरान्ताम् ।
  विमलकुलवधूनां कोटिकन्याश्च दद्या-
  न्नहि नहि सममेतैरन्नदानं प्रधानम् ॥

  - पद्यसंग्रह, श्लोक 14.

सभी प्राणी वश मे होते हैं, दान से ही वैरी भी मित्र हो जाते हैं और दान से ही पराये भी अपने हो जाते हैं। वस्तुत. दान ही सभी व्यसनों का विनाश भी करता है।[1] पंचतन्त्र का यह पद्य बहुत ही प्रसिद्ध है जिसमें धन की तीन गतियों दान, भोग एवं नाश का उल्लेख है। जो न दान करता है और न उपभोग करता है, उसके धन की तृतीय गति होती है अर्थात् वह धन नष्ट हो जाता है।[2] कविवर क्षेमेन्द्र ने भी धन की तीन गतियों का उल्लेख करते हुए प्रथम गति को सर्वोपरि बताया है। शार्ङ्गधर-पद्धति में भी कहा गया है कि जो धन के रहते हुए भी न दान करता है और न ही उपभोग करता है, वह खेत में बने तृणमय कृत्रिमपुरुष की तरह अन्य के धन फसल की रक्षा करता है।[3] धन होने पर उसका दान करना चाहिये व उसका उपभोग करना चाहिये, उसका संचय नहीं करना चाहिये। मधुमक्खियों द्वारा संचित उनके अर्थ ।मधु। का हरण कर दूसरे ही उपभोग करते हैं।[4]

---

1. दानेन भूतानि वशीभवन्ति, दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्। सुभाषितरत्नभाण्डा-
   परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानैर्दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति॥ गारम्, श्लोक 25.

2. दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
   यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥ पंचतन्त्र 2/157.

3. यो न ददाति न भुङ्क्ते सति विभवे नैव तस्य तद्द्रव्यम्।
   तृणमयकृत्रिमपुरुषो रक्षति सस्यं परस्यार्थे॥ - शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 387.

4. दातव्यं भोक्तव्यं सति विभवे सञ्चयो न कर्त्तव्यः।
   पश्येह मधुकरीणां संचितमर्थं हरन्त्यन्ये॥ वही, श्लोक 469.

इस प्रकार दान-प्रशंसा में विभिन्न कवियों के विचारों के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि दान ऐसा गुण है जिसकी सराहना वैदिक युग से आज तक हो रही है किन्तु पालकों की संख्या में उत्तरोत्तर अभाव ही है। अन्य कवियों की भाँति क्षेमेन्द्र ने भी इस विषय पर अपने मन्तव्य प्रकट किये हैं, जो अन्य कवियों की विचारधारा से साम्य रखते हैं।

परोपकार प्रशंसा

परोपकार भी ऐसा गुण है, जिसकी प्रशंसा मनीषियों ने की है। प्राणों एवं धन से परोपकार करना चाहिये। परोपकारजन्य पुण्य सौ यज्ञों द्वारा उत्पन्न पुण्य से नहीं हो सकता है।[1] अन्यत्र भी किसी कवि ने कहा है कि सूर्य, चन्द्र, बादल, वृक्ष, नदी, गाय एवं सज्जन - ये सभी परोपकार के ही लिए देवनिर्मित हैं।[2] कवि अनुपकारी व्यक्ति से श्रेष्ठ तो तृण को मानता है क्योंकि घास तो पशुओं को पालता है तथा रणस्थल में भीरुओं की रक्षा करता है।[3] वस्तुत. इस लोक में हर व्यक्ति अपने लिए तो

---

1. परोपकार: कर्त्तव्य: प्राणैरपि धनैरपि।
   परोपकारजं पुण्यं न स्यात्क्रतुशतैरपि ॥ पाद्म०उ०, श्लोक 22.

2. रविचन्द्रौ घना वृक्षा नदी गावश्च सज्जना:।
   एते परोपकाराय युगे देवेन निर्मिता: ॥ सुभाषितरत्नभाण्डागारम्,
   परोपकारप्रशंसा, श्लोक 3.

3. तृणं चाहं वरं मन्ये नरादनुपकारिण: ।
   घासो भूत्वा पशून्पातिभीरून्पाति रणाङ्गणे ॥ - वही, श्लोक 4.

कार्य में तत्पर रहकर स्वहितकारी करता है, किन्तु परमार्थ के कार्यों में प्रवृत्त होने वाले विरले ही होते हैं। कवि उसी व्यक्ति के जीवन को सार्थक मानता है, जो परोपकार के ही लिए जीवित रहता है क्योंकि इस जीवलोक में सभी आत्मार्थ जीवित हैं।[1] शार्ङ्गधरपद्धति में भी कहा गया है कि परोपकारशून्य मनुष्य के जीवन को धिक्कार है। पशु का जीवित रहना सार्थक कहा गया है, जिनके चर्म द्वारा भी परोपकार होता है।[2] वृक्ष परोपकार के ही लिये फलते हैं, नदियाँ परोपकारार्थ बहती हैं, गायें परोपकार हेतु ही दूध प्रदान करती हैं और यह शरीर भी परोपकारार्थ ही निर्मित है।[3] सूर्य कमल समूहों को विकसित करता है तथा चन्द्रमा कुमुदिनी को विकसित करता है एवं बादल परोपकारार्थ ही वर्षा करते हैं, उसी तरह सन्त भी परहित में सभी कार्य करते हैं।[4]

---

1. आत्मार्थं जीवलोकेऽस्मिन्को न जीवति मानवः। सुभाषितरत्नभाण्डागारम्,
   परं परोपकारार्थं यो जीवति स जीवति ॥ परोपकारप्रशंसा, श्लोक 6.

2. परोपकारशून्यस्य धिङ्मनुष्यस्य जीवितम् ।
   जीवन्तु पशवो येषां चर्माप्युपकरिष्यति ॥ शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 1478.

3. परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकाराय वहन्ति नद्यः ।
   परोपकाराय दुहान्ति गावः परोपकारार्थमिदं शरीरम् ॥ विक्रम0, श्लोक 66.

4. पद्माकरं दिनकरो विकचं करोति
   चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम् ।
   नाभ्यर्थितो जलधरो पि जलं ददाति
   सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः ॥ भर्तृहरिशतकत्रय, 2/65.

सत्संगति प्रशंसा

सत्संगति की भी महिमा का वर्णन क्षेमेन्द्र ने भूयशः किया है। अन्य कवियों ने भी सत्संगति के महत्त्व की प्रशंसा की है। पंचतन्त्रकार विष्णुशर्मा ने कहा है कि महापुरुष का सम्पर्क किसे उन्नति नहीं प्रदान करता। कमलपत्र पर स्थित जल मुक्ताफल की भाँति सुशोभित होता है।[1] अन्यत्र भी कहा गया है कि महानुभाव के संसर्ग से सभी उन्नति को प्राप्त करते हैं। भगवान् द्वारा शंख को हाथ में लेने से वह पृथ्वी पर पवित्र माना गया।[2] मलयाचल के गन्ध से ईन्धन की लकड़ी भी सुगन्धित हो जाती है।[3] इस लोक में चन्दन शीतल माना गया है और चन्दन से शीतल चन्द्रमा है, किन्तु चन्द्रमा एवं चन्दन दोनों के मध्य शीतल सत्सङ्गति है।[4] साधुजनों का दर्शन पुण्यप्रद

---

1. महाजनस्य संसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः।
   पद्मपत्रस्थितं वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम्॥ पञ्चतन्त्र, 3/59.

2. महानुभावसंसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः।
   हरिहस्तगतःशङ्खःपवित्रःप्रथितो भुवि॥ सुभाषितरत्नभाण्डागारम्, सत्सङ्गतिप्रशंसा, श्लोक 3,

3. मलयाचलगन्धेन त्विन्धनं चन्दनायते।
   तथा सज्जनसङ्गेन दुर्जनः सज्जनायते॥ वही, श्लोक 4.

4. चन्दनं शीतलं लोके चन्दनादपि चन्द्रमाः।
   चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये शीतला साधुसङ्गतिः॥ वही, श्लोक 6.

होता है, क्योंकि साधु तीर्थभूत होते हैं। तीर्थ का फल समय आने पर प्राप्त होता है, किन्तु साधुसम्पर्क तो तुरन्त फल प्रदान करने वाला है।[1] जलबिन्दु तो सीपी के सम्पर्क से मुक्ता के रूप में परिवर्तित हो जाता है।[2] इसीलिये सज्जन-सम्पर्क के लिए मनीषियों ने बल दिया है। पुष्प के सम्पर्क में रहने के कारण कीट भी सज्जनों के सिर पर चढ़ जाता है, जिस प्रकार पत्थर महान् लोगों द्वारा सुप्रतिष्ठित करने पर देवत्व को प्राप्त करता है।[3] सुभाषितावली में किसी कवि ने कहा है कि यदि व्यक्ति सत्संग करेगा तो उसके सृजनात्मक कार्य होगा, किन्तु यदि वह दुर्जनसंसर्ग करता है तो पतन को प्राप्त होगा।[4] भर्तृहरि का यह कथन तो बहुत ही प्रसिद्ध है कि सत्संग जन्म बुद्धि की जडता का हरण करता है, सत्य वाणी का सेचन करता है, मानोन्नति को बढ़ाता है, पाप को दूर करता है तथा समस्त दिशाओं में कीर्ति का विस्तार करता

---

1. साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
   कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः॥ शुकसप्तति, 68/1.

2. करोति निर्मलाधारस्तुच्छस्यापि महार्घताम्।
   अम्बुनो बिन्दुरल्पोऽपि शुक्तौ मुक्ताफलं भवेत्॥ शा०प०प्र०, श्लोक 15.

3. कीटोऽपि सुमनःसङ्गादारोहति सतां शिरः।
   अश्मापि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः॥ हि०प्र०, श्लोक 46.

4. यदि सत्संगनिरतो भविष्यसि भविष्यसि।
   अथ दुर्जनसंसर्गे पतिष्यसि पतिष्यसि॥ सुभाषितावलि, श्लोक 461.

है - इस प्रकार सत्संग से मनुष्य क्या नहीं प्राप्त करता है ? अर्थात् सभी उपलब्धियाँ सम्भव है ।[1]

सन्तोष प्रशंसा

क्षेमेन्द्र ने सन्तोष को ही परम सुख माना है । इसी तथ्य का प्रतिपादन इनके पूर्वापर मनीषियों ने भी की है । जिस प्रकार मनुष्यों को बिना सोचे अचानक दु:ख एवं सुख की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार दीनता भी की वृद्धि भी सम्भव है ।[2] विष्णुशर्मा कहते हैं कि सर्प पवन का पान करते हैं फिर भी दुर्बल नहीं होते हैं, सूखे तृण पत्तों से हाथी बलवान् होते हैं, कन्दमूल एवं फल इत्यादि के सेवन से मुनि लोग अधिक समय व्यतीत करते हैं अर्थात् अधिक आयु वाले होते हैं । इसलिये स्पष्ट है कि सन्तोष ही पुरुष का परम सुख है ।[3] धन चाहने वाला दीनता दिखाता है, अर्थ प्राप्त करने

---

1. जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
   मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
   चेत: प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
   सत्संगति: कथय किं न करोति पुंसाम् ॥ भर्तृहरिसुभाषितसंग्रह, श्लोक 42.

2. अचिन्तितानि दु:खानि यथैवायान्ति देहिनाम् ।
   सुखान्यपि तथा मन्ये दैन्यमत्रातिरिच्यते ॥ शा०प०सं०, श्लोक 7.

3. सर्पा: पिबन्ति पवनं न च दुर्बलास्ते
   शुष्कैस्तृणैर्वनगजा बलिनो भवन्ति ।
   कन्दै: फलैर्मुनिवरा: क्षपयन्ति कालं
   संतोष एव पुरुषस्य परं निधानम् ॥ पंचतन्त्र 2/159.

वाला धनी गर्वयुक्त एवं असन्तुष्ट होता है और धन के नष्ट हो जाने पर वह शोकाकुल हो जाता है। वस्तुतः सुख तो वही व्यक्ति प्राप्त करता है जो निःस्पृह रहता है।[1] भले ही वारिचर पाँचवें या छठें दिन घर में शाकमात्र बनाकर भोजन करे किन्तु वह ऋणमुक्त होकर प्रवास न करता हुए प्रसन्न ही होता है।[2] कवि ने कहा है कि संन्यासी वल्कलों से सन्तुष्ट है और धनी धन से सन्तुष्ट है। दोनों तोष समान हैं, उनमें कोई विशेष विशेषता नहीं है। वस्तुतः दरिद्र तो वह है जिसकी तृष्णा अधिक होती है। मन से सन्तुष्ट होने पर न कोई धनी है और न कोई दरिद्र ही।[3] भर्तृहरि ने भी सन्तोष में सुख की अनुभूति करते हुए कहा है कि अकिंचन, दान्त, शान्त, समबुद्धि वाले तथा सदा सन्तुष्ट मन वालों के लिए तो सभी दिशायें सुखमय ही होती हैं।[4]

---

1. अर्थी करोति दैन्यं लब्धार्थो गर्वमपरितोषं च।
   नष्टधनश्च स शोकं सुखमास्ते निःस्पृहः पुरुषः॥ शार्ङ्गधरपद्धति, श्लोक 319

2. पञ्चमेऽहनि षष्ठे वा शाकं पचति यो गृहे।
   अनृणे चाप्रवासी च स वारिचर मोदते॥ वही, श्लोक 314.

3. वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या
   सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः।
   स हि भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला
   मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः॥ वही, श्लोक 308.

4. अकिंचनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः।
   सदा संतुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः॥ भर्तृहरिशतकत्रय 3/100.

<u>क्षमाप्रशंसा</u>

क्षमा को भी सज्जनों का परम गुण बताया गया है। चाणक्य का कथन है कि जिस प्रकार तृणविहीन वस्तु पर अग्नि के गिरने पर वह स्वतः बुझ जाता है, उसी प्रकार यदि व्यक्ति के पास क्षमा रूपी शस्त्र है तो दुर्जन उसका कुछ नहीं कर सकता है।[1] उन्होंने अन्यत्र भी कहा है कि असमर्थ व्यक्ति के लिए क्षमा बल है तथा शक्तिशाली के लिए भूषण है। क्षमा तो लोक में वशीकरण भी है - इस प्रकार क्षमा से सभी कार्य सम्भव हैं।[2] मनुष्य का आभूषण रूप है, रूप का आभूषण गुण है, गुण का ज्ञान तथा ज्ञान का भूषण क्षमा ही है[3] - ऐसा नीति के विद्वान् चाणक्य का मन्तव्य है।

---------::0::---------

---

1. क्षमा शस्त्रं करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति।
   अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति ॥ (वृद्ध) चाणक्यनीति 3/30.

2. क्षमा बलमशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा।
   क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमया किं न सिध्यति ॥ वही, 13/22.

3. नरस्याभरणं रूपं रूपस्याभरणं गुणः।
   गुणस्याभरणं ज्ञानं ज्ञानस्याभरणं क्षमा ॥ - (लघु) चाणक्यशतक, श्लोक 43.

उपसंहार

काव्यरचनाकारों की संख्या अधिक न होकर कम ही होती है, क्योंकि काव्यरचना के योग्य शक्ति दुर्लभ होती है । अग्निपुराणकार ने नरत्व, विद्या, कवित्व एवं शक्ति को उत्तरोत्तर दुर्लभ माना है ।[1] इसीलिए भामह भी कहते हैं कि काव्य का निर्माण सामान्य पुरुष का कार्य नहीं है, वह प्रतिभासम्पन्न पुरुष का ही कार्य है । चिरस्थायी एवं सरस काव्य का निर्माण तो कोई विरला प्रतिभा-सम्पन्न ही कर सकता है ।[2]

इसी असाधारण प्रतिभा से सम्पन्न एवं कवित्वशक्ति से युक्त कविवर क्षेमेन्द्र कवि ही नहीं, अपितु 'कवीन्द्र'[3] भी कहे गये हैं तथा इनके 'महाकवि'[4] होने का भी उल्लेख मिलता है ।

---

1. नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा ।
   कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा ॥ अग्निपुराण, 337.3

2. काव्यं तु जायते जातु कस्यचित्प्रतिभावतः । काव्यालङ्कार, 1.5

3. बोधिसत्त्वावदानकल्पलता, भूमिका, श्लोक संख्या 4.

4. The author of the work (Bodhisatvavadan Kalplata) was Kshemendra, who had the title of Mahakavi or 'the great Kavi (poet)'.

   – The Sanskrit Buddhist Literature of Nepal by Rajendra Lala Mittra, p. 57.

वे वस्तुत. विदग्धों के ही कवि न होकर साधारण जनता के भी कवि हैं। क्षेमेन्द्र सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न कवि हैं। वे गुणग्राही स्वभाव के हैं, इसीलिए वे 'सर्वमनी विशिष्य' होना स्वीकार करते हैं तथा सभी धर्मों के प्रति उदारता एवं आदरभाव रखते हुए भगवान् विष्णु में अटूट श्रद्धासम्पन्न हैं। इन विशेषताओं के साथ ही कवि काव्यानुकूल विषय का चिन्तन एवं मनन कर शब्दों एवं कल्पनाओं के पश्चात् काव्यसर्जना करता है। इसे क्षेमेन्द्र ने स्वतः स्वीकार करते हुए कहा है कि विविध रसों के आस्वादन में निमग्न और भिन्न-भिन्न गुणों से आकृष्ट कवि का मन विवेक के सिंचन के द्वारा परिपक्व होकर उछलता है तथा भीतर पक्वाङ्कुर के सदृश कवित्व का निर्माण करता है।[1] इसी विचारधारा से साम्य रखता हुआ भाव आंग्लसाहित्य के प्रकृति-कवि वर्ड्सवर्थ ने भी व्यक्त किया है।[2] यही कारण है कि क्षेमेन्द्र जिस विषयवस्तु पर लेखनी उठाते हैं उसे बहुविध वर्णनों से तद्विषयक भावों को स्पष्ट कर उसकी पुष्टि भी करते हैं।

---

1. रसे रसे तन्मयतां गतस्य गुणे गुणे हर्षवशीकृतस्य।
विवेकसेकस्वकपाकभिन्नं मनः प्रसूतेऽङ्कुरवत् कवित्वम्॥ कविकण्ठाभरण 1/18.

2. 'Poetry is a spontaneous overflow of powerful feelings taking its origin from the emotion recollected in tranquillity" -

- Wordsworth.

कविवर क्षेमेन्द्र रचना के भी क्षेत्र में बहुत धनी हैं । उन्होंने संस्कृतसाहित्य-कोष के संवर्धन में भी अहं भूमिका का निर्वाह किया है । उनकी रचनायें संख्या में अधिक होने के साथ ही गुणबहुल भी हैं तथा विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित हैं । वे आचार्य एवं कवि दोनों हैं । आचार्य के रूप में उनके तीन काव्यग्रन्थ - 'औचित्य-विचारचर्चा', 'सुवृत्ततिलक' एवं 'कविकण्ठाभरण' हैं, जबकि कवि के रूप में इनके अनेक काव्य हैं । 'कलाविलास', 'चतुर्वर्गसङ्ग्रह', 'चारुचर्या', 'दर्पदलन', 'समय-मातृका', 'नर्ममाला', 'देशोपदेश' एवं 'सेव्यसेवकोपदेश' - ये आठ काव्य प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के प्रतिपाद्य विषय हैं । रामायणमञ्जरी, भारतमञ्जरी व बृहत्कथा-मञ्जरी - ये मञ्जरीत्रय क्रमशः रामायण, महाभारत एवं गुणाढ्यकृत बृहत्कथा पर आधारित हैं । इसके अतिरिक्त भी अनेक काव्यग्रन्थ हैं । इतनी अधिक संख्या में काव्य-रचना करने के बाद भी क्षेमेन्द्र तीन ही शास्त्रीय ग्रन्थों के कारण आचार्य के रूप में अधिक ख्यातिलब्ध हैं । विभिन्न संस्कृत काव्यालोचकों के ग्रन्थों में भी क्षेमेन्द्र को आचार्य के रूप में ही स्थान मिला है । वे अपने 'औचित्यसिद्धान्त' के कारण प्रायः सभी काव्यालोचकों के ग्रन्थों में उद्धृत हैं, जबकि कवि के रूप में क्षेमेन्द्र को बहुत ही कम आलोचकों ने अपना विषय बनाया है । यह भी कहा जा सकता है कि क्षेमेन्द्र औचित्यसिद्धान्त के कारण इतना प्रसिद्ध हुए कि उस प्रसिद्धि में उनकी कवित्वविशेषता अभिभूत हो गयी । दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि उन्होंने समाज के सभी वर्गों के दूषित पक्षों को डटकर फटकार लगायी तथा भाषा की सरसता एवं कोमलता की परवाह न करते हुए कटु एवं हृदय पर शूलसदृश चुभने वाली भाषा के माध्यम से दूषित पक्षों पर व्यङ्ग्य किया । समाज के उच्च वर्ग ब्राह्मण, वैद्य, ज्योतिषी, गुरु

व्यवसायी, छात्र एवं कायस्थ आदि भी उनके व्यङ्ग्य एवं कटु तथा तीखे प्रहार से वंचित नहीं हैं। इसलिए यह भी उनके काव्यों को विशिष्ट स्थान न दिये जाने का कारण कहा जा सकता है।

वे कवित्व से अपेक्षाकृत कथासङ्ग्रह को प्राथमिकता देते हैं। क्षेमेन्द्र जो भी बात कहते हैं उसकी पुष्टि में या तो प्रामाण्य ग्रन्थों के कथन व कथाओं को उदाहृत करते हैं या फिर स्वयं कथा गढ़ते हैं, जो स्वाभाविक एवं मौलिक लगते हैं। उनके कथासङ्ग्रहों में कहीं भी शिथिलता एवं कृत्रिमता नहीं आभासित होती है। काव्य की सुकुमारता से वंचित होते हुए भी इनके व्यङ्ग्यप्रधान काव्य हास्य की सर्जना करने में सफल हैं। इनके व्यङ्ग्यप्रधान चित्रण पाठकों के हृदय में गुदगुदी उत्पन्न किये बिना नहीं रह सकते। इनके काव्यों में हास्य की सर्जना होती है किन्तु विस्फोटक नहीं, अपितु यह समाज व लोक-सुधार की भावना से अनुप्राणित हैं।

कविवर की रचनायें व्यङ्ग्यप्रधान व अधिक्षेपपूर्ण ही नहीं, अपितु नीति एवं उपदेशप्रधान भी हैं। उनके काव्यों की रचना का प्रमुख उद्देश्य सुधीजनों को आनन्द प्रदान करना था, जो उत्तमोद्देश्य है। वे शिष्यों के उपदेश एवं लोक-सुधार में सुधीजनों की अहं भूमिका को ध्यान में रखते हुए उनके ही निमित्त, नीतिपरक तथ्यों को अपने काव्य में स्थान देते हैं। 'चारुचर्या', 'चतुर्वर्गसङ्ग्रह' एवं 'दर्पदलन' आदि काव्य शुद्धोपदेश एवं नीतियों से युक्त हैं। इनके उपदेशप्रधान काव्यों की भाषा प्रसादगुणपूर्ण है। इनके इस कोटि के काव्य नीतिग्रन्थों एवं मनुस्मृति आदि के सदृश भावपूर्ण एवं उपदेशमय हैं। 'चारुचर्या' नामक सौ पद्यों का काव्य तो पूर्णतः उपदेश-

प्रधान है । इसमें क्षेमेन्द्र युक्तायुक्त कार्यों का बोध कराते हुए युक्त कर्मों को करने का तथा अयुक्त कर्मों को न करने का उपदेश करते हैं तथा साथ ही विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों रामायण, महाभारत आदि के कथानकों से स्वकथन को पुष्ट भी करते हैं । 'चतुर्वर्गसङ्ग्रह' में कवि ने पुरुषार्थचतुष्टय का बहुत विशद विवेचन किया है तथा 'दर्पदलन' में उन्होंने मद के सात हेतुओं कुल, वित्त, विद्या, रूप, शौर्य, दान एवं तप सम्बन्धी गुण-दोष का विवेचन किया है । वस्तुत: ये सभी तब तक गुणयुक्त आभासित होते हैं जब तक इससे युक्त व्यक्ति निरभिमानी रहता है । मद से सभी गुण दोषयुक्त एवं प्रभावरहित हो जाया करते हैं ।

कविवर क्षेमेन्द्र एक सफल आलोचक भी हैं । वे कालिदासप्रभृति महाकवियों के दोषों का विवेचन करने में भी नहीं चूकते । वे आलोचना निष्पक्ष करते हैं । वे इस कार्य में भी साहस, न्याय एवं निष्पक्षता का परिचय देते हैं । वे अपने भी काव्यों के दोषों का विवेचन नि:संकोच करते हैं । उनमें आलोचना की प्रवृत्ति अधिक होने के कारण ही उन्होंने नीत्युपदेशात्मक काव्यों को भी समाज की आलोचना के रूप में प्रस्तुत किया है । सम्भवत: उनकी आलोचना प्रवृत्ति इतनी तीव्र रही है कि कवित्व चेतना की कोमल तन्त्रियों को अधिक पनपने का अवसर नहीं मिला । काव्यालोचक वही हो सकता है जो स्वयं उच्चकोटि का कवि हो । आचार्यों का यह कथन सत्य ही है 'कविर्भावयति भावकश्च कवि:' अर्थात् कवि ही भावना करता है और भावक ही काव्य सृष्टि करता है । भावक (आलोचक) कवि की स्थिति कभी शोचनीय नहीं होती । उसकी प्रतिष्ठा सर्वत्र तथा सार्वकालिक होती है । कारयित्री एवं भावयित्री दोनों

तरह की प्रतिभाओं का संगम असम्भव नहीं तो दुर्लभ अवश्य है ।[1] अनेक कवि ऐसे हैं जो आलोचक नहीं हैं । वे काव्यरचना करने में सक्षम होते हुए आलोचना नहीं कर सकते हैं । वे अपनी ही रचना की भी आलोचना नहीं कर सकते हैं । इसीलिए भावक कभी कभी ऐसे भावों व गुणों को काव्य में खोज निकालता है, जिसका पता स्वयं कवि को भी नहीं होता । क्षेमेन्द्र विशुद्ध आलोचक होने के नाते अपनी साहित्यिक रचना की आत्मा पर प्रकाश डालते हैं, जिससे पाठक को भी उनके भावों को समझने में व्यर्थ प्रयास नहीं करना पड़ता है ।

कश्मीर अनेक कवियों के उत्पन्न होने का पुण्य प्रदेश है, जहाँ की प्राकृतिक सुषमा से आकृष्ट होकर अनेक कवियों ने सरस एवं कोमल काव्यों की सर्जना की, किन्तु क्षेमेन्द्र ने कश्मीर की तत्कालीन शोचनीय अवस्था से ही प्रभावित होकर समाज में प्रसृत बुराइयों, एवं उनमें लिप्त वर्गों को ही काव्य का प्रतिपाद्य विषय बनाया । वस्तुतः क्षेमेन्द्र ने ऐसे समय में जन्म लिया जब कश्मीर का वातावरण कोमल एवं कविता के लिए अनुपयुक्त था । कश्मीर के इतिहास में वह युग असन्तोष षड्यन्त्र, नैराश्य एवं रक्तपात का था । समाज में लोग एक-दूसरे का शोषण करने से चूकते न थे । वे

---

1. अ. प्रतिभातारतम्येन प्रतिष्ठा भुवि भूरिधा ।
   भावकस्तु कविः प्रायो, न भजत्यधमां दशाम् ॥ काव्यमीमांसा राजशेखर

   ब. न ह्येकस्मिन्नतिशयतां सन्निपातो गुणानाम् ।
   एकः सूते कनकमुपलस्तत्परीक्षाक्षमोऽन्यः ॥ काव्यमीमांसा

अपने युग के भ्रष्ट एवं अशान्त वातावरण से इतने असन्तुष्ट एवं मर्माहत हुए कि उन्होंने उसे सुधारने, दुष्टता के स्थान पर शिष्टता एवं कुविचारों के स्थान पर सद्विचारों की स्थापना के निमित्त भ्रष्ट लोगों पर प्रहार हेतु अपदेशप्रधान तथा सद्पुरुषों के मानसानन्द हेतु उपदेशप्रधान काव्यों की रचना की । सम्भवत: जनसमाज की नैतिक उन्नति के ही लिए रामायण एवं महाभारत के संक्षिप्त सार क्रमश: रामायणमञ्जरी एवं भारतमञ्जरी को प्रस्तुत किये गये । अत: पाठकों के समक्ष उन विस्तृत धर्मग्रन्थों को सुबोध एवं सुलभ रूप में प्रस्तुत करना ही मुख्य ध्येय रहा होगा । इनमें कवित्व का अंश कम ही माना गया है ।[1] इस प्रकार उन्होंने तत्कालीन समाज को काव्य-दर्पण में प्रतिबिम्बित करते हुए समाज-सुधार की दिशा में भी अप्रतिम योगदान दिया ।

वस्तुत: उनके काव्य उपदेश एवं अपदेशप्रधान ही हैं । जिस प्रकार वे आचार्य के रूप में काव्य-समीक्षा करते हुए औचित्य एवं अनौचित्य दोनों का उदाहरण देते हैं,

---

1. In the case of the two other extant epics of Kshemendra. Bharatmanjari and Ramayanmanjari, the contents of both of the epics have been made accessible to the readers in a convenient manner, but as remarked by S. Levi, the poems are deprived of all beauty.

   - History of Indian Literature, Vol. III, Part I, by Winternitz, p. 8.

इसी प्रकार वे उपदेशपरक रचनाओं के माध्यम से समाज के सत्पक्षों का तथा अपदेश-परक रचनाओं से समाज के दूषित पक्षों की कटु आलोचना करते हैं । इनकी काव्य-सर्जना में कश्मीर की तत्कालीन परिस्थिति की अहं भूमिका है । उनके काव्यों में तत्कालीन समाज शोषकों एवं दूषित कार्यों में लिप्त वर्गों पर अधिक्षेप एवं उनके दोषपूर्ण कार्यों का विवेचन प्राप्त होता है । इस प्रकार की रचनाओं में कविवर की समाज-सुधार, सद्वृत्ति, कवित्वशक्ति, अदम्य साहस एवं साहित्यिक सार्थकता का परिचय प्राप्त होता है । दूषित एवं समाज-शोषकों पर तीखा व्यङ्ग्य करते हुए कविवर कहीं कहीं तो इतने भावावेश में हो जाते हैं कि उनके द्वारा किया गया अधि-क्षेप अपनी चरमसीमा को लाँघने का प्रयास करता हुआ आभासित होता है । क्षेमेन्द्र द्वारा किये गये कहीं-कहीं अश्लील अधिक्षेप से यह स्पष्ट होता है कि वे तत्कालीन कश्मीर के दूषित वर्गों के दुष्कार्यों से बहुत ही खिन्न थे और वे उनके परिष्कार एवं उनके दुष्प्रवृत्तियों के विनाश हेतु कटिबद्ध थे । यही कारण है कि उनके अधिकांश काव्य के कोमल पक्ष की परवाह न करते हुए अधिक्षेपात्मक प्रसङ्गों का उल्लेख किया है । इनकी समाज-सुधार की प्रवृत्ति के प्राबल्य के कारण ही समाज में प्रसृत बुराइयों एवं भ्रष्टाचारों का सही रूप स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । कोमल पक्षों के अभाव के ही कारण भारतीय रसवादी आलोचकों ने बहुत कम ही स्थानों पर इन्हें कवि के रूप में उल्लिखित किया है । काव्य के कोमल पक्ष के रूप में इनके काव्य उपदेशपरक ही हैं, जिनमें इनकी उपदेशप्रियता ही स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है ।

पाश्चात्य आलोचकों ने कविवर क्षेमेन्द्र के काव्यों की आलोचना की है और प्रमुखता भी प्रदान की है किन्तु भारतीय रसवादी भावना से ओतप्रोत आलोचकों ने क्षेमेन्द्र को कवि के रूप में प्रमुखता नहीं दी है । क्षेमेन्द्र वस्तुतः एक विद्रोही कवि थे। काव्य के प्रयोजनों में उन्होंने समाज के सुधार को प्रमुखता दी । काव्य काव्य के लिए, समाज के लिए या जीवन के लिए आदि उद्देश्यों से युक्त होता है, किन्तु उन्होंने समाज में प्रसूत बुराइयों एवं दोषों पर कटाक्ष करते हुए सुधीजनों के लिए सदुपदेश एवं नीतिपरक काव्यों की रचना की । समाज पर किये गये कटाक्ष वस्तुतः बहुत ही तीखे शब्दों में वर्णित है, जो तत्कालीन समाज में फैले भ्रष्टाचार से युक्त लोगों के लिए उचित ही है ।

कविवर क्षेमेन्द्र वस्तुतः स्पष्टवादी थे । वे आदर्श एवं तर्क को प्रमुखता नहीं देते थे । वे जिस विचार को कहते हैं, उसका पालन करते हुए भी दृष्टिगोचर होते हैं । कविकण्ठाभरण में जिन शतशिक्षाओं का उपदेश वे देते हैं - ऐसा प्रतीत होता है कि वे व्यक्तिगत जीवन में पालन भी करते हैं । उदाहरणार्थ - समयमातृका, दर्पदलन, सेव्यसेवकोपदेश, चारुचर्या इत्यादि कृतियों में कवि ने लोकाचार परिज्ञान[1] एवं उपदेश विशेषोक्ति[2] का अनुकरण किया गया है, जिसका वे कविकण्ठाभरण में उपदेश करते हैं।

---

1. कविकण्ठाभरण 2/6.

2. वही, 2/16

दशावतारचरित में वे सभी देवताओं की समान स्तुति करते हैं और कविकण्ठाभरण में ऐसा करने के लिए कहते हैं ।[1]

कविगोष्ठी एवं सांस्कृतिक आयोजनों में क्षेमेन्द्र का अभिनिवेश था । उन्होंने अपनी स्पष्टवादिता के कारण तथा उनका व्यावहारिक जीवन में अनुसरण करने के कारण सभ्य समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त की थी । उनका अध्ययन विस्तार अधिक होने के कारण तथा कथा गढ़ने की भी कला में दक्षता प्राप्त करने के कारण वे व्यङ्ग्यपूर्ण काव्यों में कथानक लिखते हैं । उन कथानकों में ऐसे पात्रों, भावों एवं विचारों को सुस्पष्ट एवं औचित्यपूर्ण स्थान देते हैं कि उनकी इस समायोजन की कला को प्रशंसा करने के लिए बाध्य होना पड़ता है । उनके कथानक बहुत ही प्रभावयुक्त होते हैं, जो सहृदय पाठक के हृदय पर अपना अमिट स्थान बनाकर उन्हें तज्जन्य भावों से ओतप्रोत कर देते हैं । उपदेशपरक काव्यों में भी वे महारथ प्राप्त थे । इनके उपदेशपरक काव्यों में चारुचर्या ऐसा काव्य है जिसमें उपदेशात्मक तत्त्वों का आधिक्य है । इनके उपदेशात्मक तत्त्वों का स्वरूप सरल एवं ग्राह्य है ।

कविवर क्षेमेन्द्र के काव्य काव्यगत विशेषताओं से युक्त हैं । इन्होंने अलंकार, रस, छन्द एवं कवियों के लिए उपादेय शिक्षाओं का तो स्वतः विवेचन की है, जो काव्यशास्त्रों की भाँति सम्पूर्ण विद्वत्समाज में प्रतिष्ठित हैं । इन्होंने सभी छन्दों, रसों, अलंकारों आदि का प्रयोग अपने काव्यों में किया है, किन्तु अनुष्टुप् छन्द का बाहुल्य है । इसी तरह उपमा अलंकार का अधिकता से प्रयोग है । इनके काव्य

---

1. कविकण्ठाभरण 2/19.

रसप्रधान न होते हुए भी आह्लादक हैं । इनकी रचनायें स्वाभाविक एवं मौलिक हैं क्योंकि उनके काव्यों में कृत्रिमता के माध्यम से चमत्कार उत्पन्न करने का व्यर्थ प्रयास नहीं किया गया है । उनकी सर्वगुणग्राह्यता के कारण उनकी निरभिमानिता का भी सङ्केत प्राप्त होता है, जिसके कारण काव्यों में यथार्थ चित्रण का बाहुल्य है । सर्व-गुणग्राही के कारण ही क्षेमेन्द्र के काव्यों पर उनके पूर्ववर्ती काव्यों का व्यापक प्रभाव पड़ा है, जो स्वाभाविक भी है । व्यासजी को सर्वोपजीव्य एवं आदिकवि वाल्मीकि को भुवनोपजीव्य मानने वाले क्षेमेन्द्र ने उनके काव्यों एवं कविकुलगुण कालिदास, बाण-भट्ट, भारवि, भास, शूद्रक, दामोदरगुप्त एवं भर्तृहरि प्रभृति पूर्ववर्ती कवियों के काव्यों से प्रभावित होकर अपने काव्यों में गुणों का सङ्ग्रह किया है ।

इस प्रकार व्यासदास क्षेमेन्द्र एक कुशल कवि, आचार्य, उपदेशक एवं व्यङ्ग्य-कार भी हैं, जिनकी रचना का उद्देश्य आनन्द प्रदान करने के साथ जनता का सुधार व चरित्र निर्माण है और वे अपने उद्देश्यों की पूर्ति में पूर्णतः सफल भी हैं ।

ग्रन्थ का नाम	लेखक/प्रकाशक
20. किरातार्जुनीयम्	- भारवि
21. कुट्टनीमतम्	- दामोदरगुप्त
22. कुमारसम्भव	- चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी
23. कूर्मपुराण	- मनसुखरायमोर, कलकत्ता
24. चतुर्वर्गसंग्रह	- क्षेमेन्द्र
25. चाणक्यनीतिदर्पण	- चाणक्य
26. चारुचर्या	- क्षेमेन्द्र
27. छान्दोग्योपनिषद्	- गीताप्रेस, गोरखपुर
28. जानकी हरण	- कुमारदास
29. दर्पदलनम्	- काव्यमाला सीरीज, बम्बई
30. दशावतारचरितम्	- काव्यमाला सीरीज, बम्बई
31. देशोपदेश	- मधुसूदन कौल सम्पादित पूना
32. ध्वन्यालोक	- आनन्दवर्धन
33. नर्ममाला	- क्षेमेन्द्र
34. न्यायदर्शन	- चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी
35. नलचम्पू	- चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी
36. नाट्यशास्त्रम्	- भरतमुनि
37. नीतिशतकम्	- भर्तृहरि
38. पञ्चतन्त्र	- निर्णयसागर प्रेस, बम्बई

	ग्रन्थ का नाम		लेखक/प्रकाशक
39.	प्रबोधचन्द्रोदय	-	कृष्ण मिश्र
40.	बालरामायणम्	-	राजशेखर
41.	बौद्धावदानकल्पलता	-	एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल
42.	बृहदारण्यकोपनिषद्	-	गीताप्रेस, गोरखपुर
43.	बृहत्कथामञ्जरी	-	काव्यमाला, सीरीज, बम्बई ।
44.	भल्लटशतकम्	-	भल्लट
45.	भारतमञ्जरी	-	काव्यमाला सीरीज, बम्बई
46.	मनुस्मृति	-	चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी
47.	महाभारत	-	गीताप्रेस, गोरखपुर
48.	मालविकाग्निमित्रम्	-	महाकवि कालिदास
49.	मेघदूतम्	-	महाकवि कालिदास
50.	योगदर्शन	-	चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी
51.	योगभाष्य	-	
52.	रघुवंश	-	महाकवि कालिदास
53.	राजतरंगिणी	-	कल्हण
54.	वक्रोक्तिजीवित	-	कुन्तक/के0एल0 मुखोपाध्याय, कलकत्ता, 1961.
55.	संस्कृताभिधानम् (प्र0भा0)	-	वाचस्पति
56.	विक्रमाङ्कदेवचरितम्	-	भारतीय प्रकाशन, चौक, कानपुर
57.	विक्रमोर्वशीयम्	-	कालिदास/चौखम्बा संस्कृत सीरीज, 1953

ग्रन्थ का नाम	लेखक/प्रकाशक
58. वेदान्तदर्शन	- चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी
59. वेणीसंहार	- भट्टनारायण, साहित्य भण्डार, मेरठ, 160.
60. शार्ङ्गधरपद्धति	- काव्यमाला सीरीज, बम्बई
61. समयमातृका	- क्षेमेन्द्र/काव्यमाला सीरीज, बम्बई
62. साहित्यदर्पण षष्ठ परि०	- कलकत्ता संस्करण, 1950.
63. साहित्यदर्पण	- विश्वनाथ, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी
64. सेव्यसेवकोपदेश	- क्षेमेन्द्र
65. सेतुबन्ध	- प्रवरसेन
66. सुवृत्ततिलकम्	- काव्यमाला सीरीज, बम्बई
67. सुभाषितरत्नभाण्डागारम्	- निर्णयसागर प्रेस, बम्बई 2.
68. सांख्यदर्शन	- चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी
69. श्रृंगारशतकम्	- भर्तृहरि
70. हर्षचरितम्	- चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी
71. हितोपदेश	- नारायण पण्डित
72. क्षेमेन्द्र लघुकाव्यसंग्रह	- संस्कृत अकादमी उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

English Reference Books

1. A History of Sanskrit Literature : A.B. Keith

2. A Historical and Philosophical Study Banaras, 1935 - Abhinavgupta.

3. Cultural Heritage of Kashmir - Suresh Chandra Banerjee

4. Catalogue Catagorum - Theodor Aurocht.

5. History of Sanskrit Literature - Dr. S.N. Dasgupta

6. History of Sanskrit Poetics - P.V. Kane

7. Hindi-Sanskrit Dictionary - Vaman Shivram Apte

8. History of Indian Literature - Winternitz

9. Kane, Introduction.

10. The Kashmir Series of Texts and Studies -

11. Kashmir Report - Dr. Whuler

12. Sanskrit-English Dictionary - Vaman Shivram Apte

13. The Sanskrit Buddist Literature of Nepal - Rajendra Lala Mittra

14. The Study of Literature

15. Journal of the Bombay Branch of Royal Asiatic Society.

16. SaintpeetsBerg 1892 - B.A. Hersbant

17. WZKM XVIII, 1914 - R. Schmidt

18. ZDMG IXIX, 1915 - R. Schmidt.